इकाई 1 सामाजिक समस्याएँ एवम सामाजिक परिवर्तन: अर्थ, विशेषताएँ एवं प्रकार (Social problem and Social change: Meaning, Characteristics and Types)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 सामाजिक समस्या

1.4 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

1.5 सामाजिक समस्या के विकास में सम्मिलित विभिन्न चरण

1.6 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ

1.7 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ

1.8 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

1.9 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार

1.10 सारांश

1.11 शब्दावली

1.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक समस्या (Social Problem) से तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से होता है जिसमें समाज का एक खंड या एक बड़ा भाग प्रभावित होता है तथा जिसके ऐसे हानिकारक परिणाम होते हैं या हो सकते हैं जिनका मात्र सामूहिक रूप से ही समाधान संभव है जैसे भारत में व्याप्त बेरोजगारी की समस्या को ही लिया जाए यह एक सामाजिक समस्या है क्योंकि इससे समाज का एक बड़ा भाग या वर्ग विशेषकर युवा वर्ग प्रभावित है तथा इसका निदान किसी एक युवक के प्रयास से संभव ना हो कर युवकों, सरकार तथा अन्य गैर सरकारी संस्थानों के संयुक्त प्रयास से ही संभव है। निर्धनता, जनसंख्या विस्फोट, युद्ध, असंतोष, आतंकवाद आदि सामाजिक समस्या कुछ उदाहरण हैं। समय बीतने के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों में ही परिवर्तन होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। व्यक्ति और समाज दोनों में ही परिवर्तन होते रहे है और होते रहेंगे। व्यक्ति और उसके द्वारा बनाई गई वस्तुओं एवं मान्यताओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, फलस्वरूप व्यक्ति के विचार, मूल्यों, रहन-सहन, जीवन-शैली, आदत,फैशन,खान-पान आदि में भी परिवर्तन होते रहते हैं, परिवर्तन प्रकृति का नियम है, और सामाजिक व्यवस्था को गतिशील बनाएं रखने के लिए सामाजिक परिवर्तन भी आवश्यक है। अनेकों सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति में तथा व्यक्ति के कारण समाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन होते रहते हैं। आज से यदि हम लगभग 50 वर्ष पूर्व भारतीय समाज के लोंगों का अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि 50 वर्ष पूर्व व्यक्तियों की अपेक्षा आज के व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान,आदत,फैशन, आदि में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है आज समाज में आध्यापक की उतनी प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं है। जितना कि आज से पचास वर्ष पूर्व हुआ करता था। यू तो सामाजिक परिवर्तन समाजशास्त्र का मुख्य विषय है लेकिन आधुनिक युग में इस महत्वपूर्ण समस्या के अध्ययन की ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। समाजिक परिवर्तन प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की विशेषता रही है, इस परिवर्तन की गति कमी तीव्र हाती है तो कभी मन्द समूह के आकार में वृद्धि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, सामाजिक संरचना में परिवर्तन धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं का नवीन महत्व, विज्ञान का विकास, युद्ध और आपदा कुछ ऐसे तत्व है जो परिवर्तन सम्बन्धित है।

1.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक समस्या के बारे में जान सकेंगे।
- सामाजिक समस्याओं के प्रकार जान सकेंगे।
- सामाजिक समस्या के विकास में सम्मिलित विभिन्न चरण जान सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के अर्थ को समझ सकेंगें।

- ❖ सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन को समझ सकेंगे।
- ❖ सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- ❖ सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।

1.3 सामाजिक समस्या (Social Problem)

❖ सामाजिक समस्याओं को उसकी विशेषताओं के आधार पर अच्छी तरह से समझा जा सकता है जो इस प्रकार हैं:-

❖ सामाजिक समस्याएं आदर्श तथा सामाजिक मानक (Social Norms) से एक प्रकार का विचलन (Deviation) होती हैं।

❖ सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति का कोई समान आधार होता है।

❖ सभी सामाजिक समस्याएं कमोबेश एक दूसरे से अंतर संबंधित होती हैं।

❖ सभी सामाजिक समस्याओं का जड़ सामाजिक ही होता है।

❖ सभी सामाजिक समस्याओं का परिणाम भी सामाजिक ही होता है क्योंकि इसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से पूरे समाज पर ही पड़ता है।

❖ सामाजिक समस्याओं के समाधान का दायित्व वैयक्तिक (Individual) ना होकर सामाजिक ही होता है दूसरे शब्दों में किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान किसी एक व्यक्ति के प्रयास से संभव ना होकर पूरे समाज के प्रयास से ही संभव होता है।

1.4 सामाजिक समस्याओं के प्रकार (Types of social problems)

❖ सामाजिक समस्याओं के प्रकार के बारे में समाजशास्त्रीय एवं समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा जो विचार उपस्थित किए गए हैं, उनका विश्लेषण करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सामाजिक समस्याओं को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है

❖ प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक समस्याएं-ऐसी सामाजिक समस्या की उत्पत्ति प्राकृतिक कारणों से ही होती है जो सामाजिक तंत्र को अस्त-व्यस्त कर देती है अकाल, बाढ़, भूकंप आदि से उत्पन्न सामाजिक समस्याएं इस श्रेणी की समस्याएं हैं।

- ❖ सुधारात्मक समस्याएं-इस श्रेणी की समस्याओं का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि उसके कुप्रभावों के बारे में आम सहमति है परंतु उनके समाधान के बारे में आम सहमति नहीं होती है। जैसे गरीबी, अपराध, मादक पदार्थों का सेवन आदि से उत्पन्न समस्याएं इस श्रेणी के सामाजिक समस्याएं हैं।

- ❖ नैतिक समस्याएं-इस श्रेणी की सामाजिक समस्या कुछ ऐसी होती है जिनकी प्रकृति एवं कारणों के बारे में आम सहमति नहीं होती है जैसे तलाक, विधवा-विवाह, जुआ आदि की समस्या एवं इस श्रेणी की समस्या में आती हैं। स्पष्ट हुआ कि सामाजिक समस्या के कई प्रकार हैं।

1.5 सामाजिक समस्या के विकास में सम्मिलित विभिन्न चरण (Various stages involved in the development of a social problem)

स्पेक्टर तथा क्रिट्सयूस (Spector and Kitsues, 1977) ने सामाजिक समस्या के विकास में निम्नांकित चार कारकों को कार्यान्वित की स्थिति भी कहा जाता है-

1- आंदोलन की अवस्था (Stage of Agitation)
2- तर्कसंगत एवं सहयोग की अवस्था (Stage of Legitimation and cooperation)
3- अधिकारी तंत्र एवं उसकी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of bureaucratization & its reaction)
4- आंदोलन के पुनरुदभवन की अवस्था (Stage of re-emergence of movement)

इन चारों अवस्थाओं का वर्णन निम्नांकित है-

1- **आंदोलन की अवस्था (Stage of Agitation)-** इस अवस्था में व्यक्ति समाज में उत्पन्न में विशेष स्थिति से असंतुष्ट होकर उसके विरुद्ध आंदोलन करता है जिनका मूल उद्देश्य उस स्थिति के प्रति अधिक से अधिक लोगों का ध्यान आकृष्ट करना होता है ताकि स्थिति को सुधारने के लिए तुरंत कार्यवाही की जा सके इस तरह का आंदोलन पीड़ित व्यक्तियों द्वारा या उनके बदले सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा भी चलाया जा सकता है जैसे बाल अपराध बाढ़ अकाल से पीड़ित व्यक्तियों की सामाजिक समस्या से निबटने के लिए आंदोलन पीड़ित व्यक्तियों के बजाय सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा सुधारकों द्वारा ही अधिक चलाया जाता है कभी-कभी इस तरह का आंदोलन कुछ कारणों जैसे इनसे संबंधित दावों का स्पष्ट होना आंदोलन करने वाले समूह का निर्बल होना आदि में विफल भी हो जाता है।
2- **तर्कसंगत एवं सहयोग की अवस्था (Stage of bureaucratization & its reaction)** जब समाज के प्रबुद्ध व्यक्ति या सत्तारूढ़ व्यक्ति समस्या का समर्थन करते हैं या समस्या का होना

मान लेते हैं तो वह समस्या तर्कसंगत बन जाती है ऐसे व्यक्तियों को समस्या से पीड़ित व्यक्तियों का वैद्य अधिवक्ता माना जाता है शायद यही कारण है कि समस्या के समाधान पर आयोजित सभा में इन्हें बहस के लिए सम्मिलित कर लिया जाता है शायद यही कारण है कि किसी शैक्षिक समस्या का समाधान के लिए निर्मित शैक्षिक समितियों में छात्रों एवं शिक्षकों का प्रतिनिधित्व दे दिया जाता है।

3- **अधिकारी तंत्र एवं उसकी प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of bureaucratization & its reaction)-** सामाजिक समस्या के विकास की इस तीसरी अवस्था में समस्या समाधान से निबटने के लिए व्यक्तियों का ध्यान सरकारी तंत्र और उनकी कार्यकुशलता पर जाता है। यदि सरकारी तंत्र अकुशल साबित हुआ तो उन्हें सफलता नहीं मिल पाती है और समस्या एक आंदोलन का स्वरूप धारण कर सकती है तथा किसी सामाजिक समस्या का स्वरूप उपद्रवी होगा या नहीं यह इस बात पर आधारित होता है कि सरकारी तंत्र किस सीमा तक समस्या का समाधान करने में सफल हो पाते हैं तथा किस सीमा तक वे अपने निहित स्वार्थों को समस्याओं से अलग रख पाते हैं।

4- **आंदोलन के पुनः उद गमन की अवस्था (Stage of re-emergence of movement)-** इस अवस्था में पीड़ित लोग तथा उनके नेतागण को यह विश्वास होने लगता है कि अधिकारियों एवं समुचित निर्णय लेने वालों द्वारा समस्या की गंभीरता को ठीक ढंग से समझा नहीं जा रहा है। फल स्वरुप उनके भावनाएं पुनः जागृत हो उठती हैं तथा संबंध सामाजिक समस्या के समाधान के लिए वे आंदोलन करने के लिए बाध्य हो जाते हैं।

कुछ प्रमुख सामाजिक समस्याओं का वर्णन हम आने वाली इकाईयों में करेंगे।

1.6 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ (Meaning of social change)

सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में होने वाले परिवर्तनों से होता है और इन परिवर्तनों में केवल उन परिवर्तनों को सम्मिलित किया जाता है, जो महत्वपूर्णऔर विस्तृत प्रकृति के होते हैं एवं जो पूरे समाज में हाते है जैसे - यदि ज्यादातर तो परिवारों में पुत्र या पुत्री की शादी बिना दहेज के होने लगे, ओर लोग इसे सहर्ष स्वीकार कर ले तो इसे सामाजिक परिवर्तन माना जायेगा। फिशर (1983) ने सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए कहा है कि‘‘सामाज के सामाजिक संरचना में यानी समाज के प्रचलित मूल्यों, मानकों, भूमिकाओं तथा अन्य इसी तरह के तत्वों जिनसे होकर रहन-सहन के मूल अवस्था की अभिव्यक्ति हाती है परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। अतः सामाजिक परिवर्तनों का अर्थ सामाजिक क्षेत्र में परिवर्तन अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तनों के फलस्वरूप समाज में रहने वाले व्यक्यिों का व्यवहार परिवर्तीत हो जाता है निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं।

(1) सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप सामाजिक संरचना में परिवर्तन होता है।

(2) सामाजिक परिवर्तन से सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन होता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन में सामाजिक प्रक्रियाओं, अन्तर्क्रियाओं तथा संगठन में परिवर्तन प्रदार्शित होता है।

(4) सामाजिक परिवर्तन से लोगों की कार्य- शैली, एवं विचारों मैं परिवर्तन आता है।

(5) सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप जीवन के मूल्यों तथा भूमिकाओं में परिवर्तन होता है।

परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है समाज के किसी भी क्षेत्र में विचलन को सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक, आदि सभी क्षेत्रों में हाने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है परिवर्तन एक सर्वकालिक घटना है यह किसी न किसी रूप में हमेशा चलने वाली पक्रिया है।

1.7 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ (Characteristics of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन प्रायः समाज के मूल्यों भूमिकाओं तथा मानको में परिवर्तन से हाता है और समाज के ज्यादातर व्यक्तियों को मान्य होते हैं, अतः सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताएँ निम्न है।

- **सामाजिक परिवर्तन एक सर्वभौमिक प्रक्रिया है (Social change is a universal process)-** सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया संसार के सभी समाजों में देखी गई है सामाजिक परिवर्तन की ये गति किसी समाज में तीव्र हाती है और किसी समाज में धीमी होती है। भौतिकता के विकास के साथ-साथ संसार के सभी समाजों में ये परिवर्तन तीव्र गति से हुए है ग्रामीण जीवन हो या शहरी लोगों के मूल्यों विचारों अभिवृतियों, परम्पराओं, सम्बन्धों आदि में भी परिवर्तन हो रहे है

- **सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है (Social change is a complex process)-** प्रायः समाज भौतिक और अभौतिक दोनों प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं, भौतिक परिवर्तन प्रत्यक्ष होते हैं जो हमें दिखाई देते हैं और अभौतिक परिवर्तन अप्रत्यक्ष होते हैं जो हमें दिखाई नहीं देते हैं सामाजिक परिवर्तन का अर्थ अभौतिक परिवर्तन से होता है जो प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता है, समाज में रहने वाले लोगों के विचारों भावों अभिवृतियों, मान्यताओं तथा मूल्यों में परिवर्तन अप्रत्यक्ष रूप से होता है, उसका आभास नहीं हो पाता है।

- **सामाजिक परिवर्तन एक निश्चित प्रक्रिया है (Social change is a definite process)-** कोई भी ऐसा समाज या क्षेत्र नहीं है, जिसमें अभी तक किसी भी प्रकार का कोई सामाजिक

परिवर्तन न हुआ हापे समाज में होने वाले परिवर्तनों से न तो बचा जा सकता है और न ही उसे रोका जा सकता है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ लोगों के विचारों, मूल्यों, भावो, परम्पराओं अभिवृतियों में परिवर्तन आना एक स्वभाविक एवं निश्चित प्रक्रिया है।

- **सामाजिक परिवर्तन अपूर्वनुमेय होता है (Social change is unpredictable)-** सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कभी रूकती नहीं है लेकिन इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी करना कि सामाजिक परिवर्तन किस दिशा में होता व किस मात्रा में होगा, असम्भव है ज्यादा से ज्यादा हम ये कह सकते हैं, कि आने वाले समय में इस क्षेत्र में इस तरह का परिवर्तन निश्चित होगा, लेकिन ये परिवर्तन कब और कितनी मात्रा में होगा यह कहना मुश्किल होगा, जैसे भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा में काफी परिवर्तन हुए है और हो रहे है। परन्तु निश्चित रूप से हम ये नहीं कह सकते हैं कि इस तरह के परिवर्तन का स्वरूप आगे आने वाले समय में क्या होगा ?

- **सामाजिक परिवर्तनों की गति अनियमित होती है (The pace of social changes is irregular)-** सामाजिक परिवर्तन की गति नियमित न होकर अनियमित होती है कभी इनकी गति तीव्र हो जाती है तो कभी मन्द / किसी समाज में परिवर्तन की गति का अनुमान हम तुलना के आधार पर करते है विभिन्न समयों पर हुए परिवर्तन की तुलना करके इसकी गति का मापन करते है। जैसे - भारत में स्वतंत्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा व तकनीकी विकास के परिवर्तन की गतिकाफी धीमी थी लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात इनमें स्त्री शिक्षा व तकनीकी परिवर्तन में काफी तीव्र गति से हुए है।

- **सामाजिक परिवर्तन में क्रमिक प्रतिक्रिया श्रृंखला होती है (Social change has a gradual chain reaction)-** किसी भी समाज में कोई सामाजिक परिवर्तन अचानक नहीं होते हैं बल्कि प्रत्येक समाजिक परिवर्तन का काई न कोई परिप्रेक्ष्य होता है और ये परिवर्तन एक क्रमबद्ध श्रृंखला में होते हैं । समाज के मूल्यों मानको भूमिकाओं आदि के अनेक अंश होते हैं किसी एक अंश में परिवर्तन होने वह दूसरे अंश को परिवर्तित कर देता है। और ये प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि सामाजिक सम्बन्ध में पूर्ण रूप से परिवर्तन न हो जाए जैसे सरकार द्वारा स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देने के फलस्व्वरूप उनको अधिकारों के प्रति जागरूकता आई है, रोजगार के प्रति जागररूक हुई है फल स्वरूप उनमें आर्थिक स्वतंत्रता आई है अतः सामाजिक परिवर्तन में एक क्रमिक प्रतिक्रिया श्रृंखला होती है।

- **सामाजिक परिवर्तनों से समूह में महत्वपूर्ण परिवर्तन होता है (social changes lead to significant changes in the group)-** प्रसिद्ध समाजशास्त्री मूरें (1974) ने अपनी

पुस्तक सामाजिक परिवर्तन में लिखा है कि सामजिक परिवर्तन सामाजिक व्यवस्थ का अंग हे आपैर सामाजिक परिवर्तनों के कारण सामाजिक व्यवसथा के प्रत्येक पहलू में परिवर्तन हो सकता है। सामाजिक परिर्वन समूह के लिए इसलिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि सामाजिक परिर्वतनों के कारण न केवल सामाजिक सम्बन्धों व सामाजिक संरचना में परिवर्तन होते हैं, बल्कि लोगों की जीवन शैली कार्य-प्रणाली, सामजिक संगठन, सामाजिक अन्तः क्रियाओं में भी परिवर्तन होते हैं। इसीलिए सामाजिक परिवर्तनों को सामाजिक विरासत के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

- **सामाजिक परिर्वन में प्रतिरोध भी होता है (There is also resistance to social change)-** जब-जब सामाजिक परिवर्तन की आग समाज में सुलगती है कुछ लोग उस आग पर पानी फेकने के लिए तत्पर हो जाते हैं परिणाम स्वरूप सामाजिक परिर्वन की गति धीमी हो जाती है उदाहरण के लिए भारत सरकार द्वारा दलितों को सामाजिक न्याय एवं बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए मंडल कमीशन की सिफारिशे लागू करके महत्वपूर्ण सामाजिक परिर्वन लाना चाहती थी, जिसका व्यापक प्रतिरोध हुआ था। अतः सामाजिक परिवर्तन में प्रतिरोध का भी गुण पाया जाता है।

- **कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन में आकस्मिकता का गुण पाया जाता है (Sometimes social change has the quality of suddenness)-** प्रायः कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि सामाजिक परिवर्तन बहुत ही आकस्मिक ढंग से हो जाता है अर्थात कुछ सामाजिक परिवर्तन बहुत कम समय के प्रयास में हो जाते हैं। प्रायः ऐसे परिवर्तनों का सम्बन्ध उन मानको या मूल्यों के परिवर्तनों के लिए तत्पर रहते हैं और ऐसे स्थिति में लोगों को सिर्फ एक प्रभावशाली नेतृत्व का मात्र इन्तजार रहता है। जैसे पहले भारतीय समाज में सती प्रथा का चलन था और इस प्रथा के प्रति जनता में भी एक तरह की व्यग्रता और बेचैनी थी और राजा राम मोहन राय का नेतृत्व मिलते ही भारतीय समाज से सती प्रथा का प्रचलन समाप्त हो गया। और शायद यही कारण था कि इस तरह का सामाजिक परिवर्तन अन्य सामाजिक परिवर्तनों की तुलना में काफी आसानी से और बहुत जल्दी हो गया।

विलवर्ट मूरे के अनुसार''सामाजजिक परिवर्तन यद्यपि एक अनिवार्य नियम है लेकिन अतीत में होने वाले परिवर्तन की तुलना में वर्तमान से सम्बन्धित सामाजिक परिवर्तन कही अधिक स्पष्ट होते हैं क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे निजी अनुभवों से होता है, दूसरे जो परिवर्तन सामान्य गति से होते हैं वे हमारे सामाजिक जीवन को कही अधिक गहराई से प्रभावित करते है क्योंकि उनकी उपयोगित को समझकर उनहें जीवन के एक सामान्य ढंग के रूप में ग्रहण कर लिया जाता है''।

1.8 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया (Process of social change)

सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति से यह स्वष्ट हो जाता है कि विभिन्न समाजों में सामाजिक परिवर्तन का कोई निश्चित स्वरूप नहीं होता है, यद्यपि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई अवस्थाओं से होकर गुजरती है अधिकांश तीन अवस्थाओं को महत्वपूर्ण बताया है।

(i) **पिघलने की अवस्था-** सामाजिक परिवर्तन की यह पहली अवस्था है इस अवस्था में व्यक्यिों को पुराने घिसे-पिटे सामाजिक सम्बन्धों का त्याग करके उनकी जगह पर नये सम्बन्धों को विकसित करने के लिए एक तरह से पिघलाया जाता है उस अवस्था में वास्तव में नये मूल्यों एवं मानकों की आवश्यकताओं की पहचान लोगों में करायी जाती है ताकि वे उसकी आवश्यकताओं को समझें और उसके प्रति स्वयं भी आकर्षित हो महात्मा गॉधी ने छुआछूत जैसी सामाजिक समस्या को दूर करके एक क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन लाने के उद्देश्य से पहले लोगों को इसके दुष्कर एवं हानिकारक प्रभाव के प्रति जागरूक किया और फिर उसका परित्याग करने की आवश्यकता उत्पन्न की।

(ii) **परिवर्तन की अवस्था-** सामाजिक परिवर्तन की इस अवस्था में लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उन्हें अपने पुराने मूल्यों एवं मानकों का परित्याग कर देना चाहिए और उसवकी जगह पर नये मूल्यों एवं मानकों के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। इस तरह की अवस्था में लोग जैसे- बाल-विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, छूआछूत जैसी सामाजिक बुराई को हटाने का निश्चित रूप से निर्णय ले लेते हैं। और इस अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म होता है।

(iii) **पुनः ठोस करने की अवस्था-** इस आन्तिम अवस्था में लोगों द्वारा स्वीकृत किये गये नये मूल्यों एवं मानकों को सुदृढ़ किया जाता है जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग उसे व्यवहार में लाये और अमल करें। सती प्रथा, बाल-विवाह, हुआ-छूत जैसी सामाजिक बुराईयाँ अब ना के बराबर मिलती है। प्रायः सामाजिक परिवर्तन की पहली अवस्था में सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जाती है दूसरी अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म होता है और तीसरी अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का संपोषण कर उसे सुदृढ़ बनाया जाता है। डाल्टन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में निहित चरण निम्न है-

- **आत्मा सम्मान के प्रति प्रारंम्भिक खतरा-** इस अवस्था में समाज में प्रचालित मूल्यों तथा मानको के प्रति लोगों के मन में एक ओर तो खतरा उत्पन्न हो जाता है परन्तु वही दूसरी और वो उसे छोड़ने का साहस नहीं कर पाते है क्योंकि इससे उनके आत्मा - सम्मान एवं प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है जिस समय वाल- विवाह का चलन था उस समय जनता में इस प्रथा के प्रति असंतोष

व्याप्त था क्योंकि विवाह के बाद उनका बचपन छिन जाता था कभी-कभी पति की मृत्य के बाद उन्हें अनेक सामाजिक परेशानियों का सामना करना पड़ता था लेकिन इस प्रथा का विरोध करने का साहस कोई नहीं करता था क्योंकि इस प्रथा से सम्बन्धित सामाजिक मूल्यों के प्रति उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुॅचती थी। और धीर-धीरे लोगों ने इसका विरोध करना शुरू किया।

- **पुराने सामाजिक सम्बन्धों को तोड़ना-** इस अवस्था में लोग पुराने सामाजिक मूल्यों मानकों, आदि को तोड़ने का हढ निश्चय कर लेते हैं, और समाज उसकी जगह पर नए मूल्यों एवं मानकों को पूर्ण सहमति दे देते हैं और इस अवस्था में सामाजिक परिवर्तन का जन्म हो जाता है जैसे-समाज सती प्रथा को बन्द करने की पूर्ण स्वीकृत दे देता है।
- **परिवर्तन की सुदृढ़ता-**इस अवस्था में परिवर्तन की सुदृढता को और मजबूत किया जाता है और लोग समय हुए परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक मूल्यों एवं मानकों का निमार्ण करते है जिससे लोग उन नियमों मूल्यों एवं मानकों के अनुरूप चिन्तन कर सके और इसके अनुरूप व्यवहार कर सकें, उदाहरण के लिए भारतीय समाज में बाल- विवाह की जगह पर वयस्क विवाह का सामाजिक परिवर्तन सुदृढ़ हो चुका है। और अब हमारा चिन्तन भी उसी के अनुरूप है।
- **आत्म-विश्वास का निर्माण-**सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप उससे सम्बन्धित मूल्यों, मानकों, निमाणों के प्रति विश्वास का निर्माण होता है और उसी के अनुरूप कार्य करना वे अपना मान-सम्मान समझते है उदाहरण के लिए, भारतीय समाज में वयस्क विवाह के प्रति लोगों की पूर्ण आस्था हो गई है। स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया कई अवस्थाओं से होकर गुजरती है और सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए इन प्रक्रियाओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

1.9 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार (types of social change)

सामाजिक परिवर्तन के प्रकार प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक काज (1974) ने सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या सामाजिक मनोवैज्ञानिक आधार पर की हैः-

- **अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन-**अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य जिसमें मौजूदा सामाजिक संरचना में तो परिवर्तन हो जाता है परन्तु समाज के मूल सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक प्रबन्धों को कोई क्षति नहीं होती है इस ढंग का परिवर्तन मौजूदा सामाजिक संरचना को आर्थिक विस्तृत कर देता है या उसे एक नई दिशा में परिवर्तित कर देता है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के समाजिक कल्याण सम्बन्धी नीतियों से आने वाले सामाजिक परिवर्तन इस श्रेणी के परिवर्तन के अन्तर्गत आते है। भारतीय समाज में बाल-विवाह, सती प्रथा आदि के समाप्त हो जाने से उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन इस श्रेणी के परिवर्तन के अन्तर्गत आते है।

❖ **आमूल सामाजिक परिवर्तन-** आमूल सामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य ऐसे परिवर्तनों से है जिसमें सामाजिक संरचना में व्यवस्था ही बदल जाती है तथा जिसके परिणाम स्वरूप समाज के राजनैतिक एवं आर्थिक तन्त्र पहले से बिल्कुल परिवर्तित हो जाते हैं और परिणाम स्वरूप सामाजिक संरचना के कुछ तत्वों का नाश हो जाता है और उसकी जगह पर नये तत्वों का निर्माण हो जाता है अर्थात नई व्यवस्था लागू कर राजनैतिक कारक व भारतीय समाज में अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन उत्पन्न सामाजिक परिवर्तन इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

❖ **सांस्कृतिक परिवर्तन-**ऐसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें समाज के व्यक्तियों के वयवहारों, विचारों, मूल्यों, मनोवृत्तियों मान्यताओं आदि में परिवर्तन कहते है। इस तरह के सामाजिक परिवर्तन में सामाजिक संरचना परिवर्तन नहीं आता है परन्तु लोगों के सामान्य रहन सहन एवं उनके मूल्यों में एक पूर्वग्रहित बदलाव आता है।भारतीय समाज पर पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव का प्रभाव इसका उत्तम उदाहरण है।

तीन मुख्य परिवर्तनों के अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन को उसके विमा एवं दिशा के आधार पर निम्न चार वर्गो में भी विभाजित किया जा सकता है ।

❖ **चेतन सामाजिक परिवर्तन:-**इस श्रेणी में ऐसे परिवर्तनों को रखा जाता हे जिसमें समाज के मूल्यों एवं मानकों के लिए व्यक्तियों को तथा नेतृत्व करने वाले को काफी संघर्ष करना पड़ता है इस तरह का परिवर्तन योजनावद्ध होता है इसके लिए समाज में रहने वाले लोगों को आन्दोलन तथा क्रान्ति करके अपनी आवाज को बुलन्द करना पड़ता है भारतीय समाज में गॉधी जी ने अंग्रजों द्वारा बनाए गए नमक कानून को तोड़ने के लिए नमक सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर एक सामाजिक परिवर्तन लाना चेतन सामाजिक परिवर्तन का उदाहरण है।

❖ **अचेतन सामाजिक परिवर्तन:-**कुछ सामाजिक परिवर्तन ऐसे होते हैं जो सहज और स्वाभाविक रूप से अपने आप हो जाते हैं इसके लिए समाज के व्यक्यिों या नेताओं को कोई विशेष कोशिश नहीं करनी पड़ती है और न ही किसी विशेष आन्दोलन या अभियान का सहारा लेना पड़ता है जैसे - बाढ़, भूकम्प, महामारी, सूखा (अकाल) आदि के समय अपने आप ही सामाजिक संरचना में काफी परिवर्तन आ जाते हैं।

❖ **उर्ध्वगामी सामाजिक परिवर्तन:-** इसके अन्तर्गत ऐसे सामाजिक परिवर्तनों को रखा जाता जिसकी दिशा धनात्मक होती है तथा जिससे सामाजिक संरचना पहले से अधिक उन्नत हो जाती है इसमें सामाजिक मूल्यों एवे मानकों में परिपक्वता तथा वास्तविकता काफी बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार की सरकारी समाज, कल्याण नीतियों से शिक्षा पर बल,

जनसंख्या की वृद्धि पर रोक, पल्स पोलियों टीकाकरण अभियान से भारतीय समाज जो धनात्मक परिवर्तन आये है वे उर्ध्वगामी सामाजिक परिवर्तन के मुख्य उदाहरण है।

❖ **अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन:-**अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन के अर्न्तगत ऐसे परिवर्तनों को रखा जाता है जिससे वास्तव में सामाज में उन्नति न होकर अवनति होती है और वर्तमान सामाजिक मूल्यों एवं मानकों को टेस पहुँचती है सिसे वर्तमान सामाजिक संरचना अस्त व्यस्त हो जाती है।

1.10 सारांश (Summary)

सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र बहुत व्यापक है। समाज में हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते हैं हम अपने सामाजिक मूल्यों के अनुसार कुछ चीजों को अच्छा समझते है और कुछ को बुरा विभिन्न आयु लिंग और प्रतिष्ठा वाले व्यक्तियों से हमारे सम्बन्ध अलग-अलग तरह के होते हैं इस प्रकार जब कभी भी इन सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है परिवर्तन की इसी दशा को हम सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते हैं।

1.11 शब्दावली (Vocabulary)

- सार्वभौमिक:सभी में (सर्वव्याप्त)
- अपूर्वानुमेय:जिसका पहले से कोई अनुमान
- मूल्य:भावनाओं क्रियाओं या अभिवृत्ति की उपत्ति है
- अभिवृत्ति:विचारों की अभिव्यिक्ति
- प्रतिरोध:रूकावट

1.12 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-Assessment Questions)

सत्य / असत्य बताइये –

1. सामाजिक समस्याएं सामाजिक मानक से विचलन होती हैं।(सत्य/ असत्य)
2. नैतिक समस्याओं के बारे में आम सहमति नहीं होती है।(सत्य/ असत्य)
3. सामाजिक समस्याओं का हल पूरे समाज के प्रयास से ही संभव होता है।(सत्य/ असत्य)

4. सामाजिक समस्याओं का परिणाम भी सामाजिक ही होता है। (सत्य/ असत्य)
5. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ समाज में बदलाव से है (सत्य/ असत्य)
6. सामाजिक परिवर्तन का पारिवारिक व्यवस्था पर काफी कुप्रभाव पड़ा है। (सत्य / असत्य)
7. सामाजिक परिवर्तन के नाकारात्मक परिणाम भी है जैसे सामाजिक तनाव। (सत्य / असत्य)
8. सामाजिक परिवर्तनों के कारण लोगों में अधिकार के प्रति चेतना बढ़ी है। (सत्य / असत्य)
9. सामाजिक परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। (सत्य / असत्य)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (किसी एक पर सही का निशान लगाइये) -

(1) किसी समाज की सामाजिक संरचना में परिवर्तन को कहते है?

(i) विकास (ii) सामाजिक परिवर्तन

(iii) सामाजिक क्रान्ति (iv) सामाजिक विघटन

(2) निम्न में से किसे सामाजिक परिवर्तन कहा जायेगा

(i) वेश-भूषा में परिवर्तन (ii) पति द्वारा अपनी पत्नी का शोषण करना

(iii) आर्थिक नीतियों में परितर्वन (iv) केन्द्रक परिवारों की संख्या में वृद्धि

(3) निम्न में से कौन सी एक दशा सामाजिक परिवर्तन का स्रोत नहीं है-

(i) परम्परा (ii) शिक्षा

(iii) सामाजिक कानून (iv) औद्योगीकरण

(4) सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है?

(i) समाज में बदलाव (ii) समाज में अवनति होती है

(iii) जीवन पद्धतियों में परिवर्तन (iv) उपर्युक्त सभी

(5) अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन में

(i) समाज में उन्नति होती है (ii) समाज में अवनति होती है

(iii) उन्नति और अवनति दोनों होती है (iv) इनमें से कोई नहीं

1.13 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type question)

1. सामाजिक समस्याओं के प्रकार एवं चरण स्पष्ट कीजिए
2. अनुक्रमिक सामाजिक परिवर्तन से आप क्या समझते है?
3. अद्योगामी सामाजिक परिवर्तन क्या है ?
4. सांस्कृतिक परिवर्तन किसे कहते है ?
5. सामाजिक परिवर्तन की पहली अवस्था क्या है ?
6. डॉल्टन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन प्रक्रिया के कितने चरण होते हैं ?
7. सामाजिक पविर्तन के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

1.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- डा0 अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
- डा0 आर0 एन0 सिंह: आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
- डा0 रणजीत सिंह: सामाजिक मनोविज्ञान।

इकाई 2 निरक्षरता, गरीबी एवं बेरोजगारी (Illiteracy, Poverty and Unemployment)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 निरक्षरता

2.3.1 निरक्षरता का कारण

2.3.2 निरक्षरता दूर करने के उपाय

2.4 गरीबी

2.4.1 गरीबी का कारण

2.4.2 गरीबी के कारण उत्पन्न समस्याएँ

2.4.3 गरीबी को दूर करने के उपाय

2.4.4 गरीबी अन्मूलन हेतु कुछ योजनाएँ

2.5 बेरोगारी

2.5.1 बेरोजगारी के प्रकार

2.5.2 भारत में बेरोजगारी की स्थिति

2.5.3 भारत में बेरोजगारी के कारण

2.5.4 बेरोजगारी दूर करने हेतु सुझाव

2.5.5 बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकारी प्रयास

2. 5.6 बेरोजगारी के परिणाम

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक समाज कुछ ऐसे नियमों और मूल्यों पर आधारित होता है, जिसकी सहायता से समाज में रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे से सीख सकें और अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन की स्थिति में एक समाज के सदस्यों की आवश्यकताएं और आकांक्षाऐं तो बदल जाती है। लेकिन सामाजिक ढ़ांचे में इसके अनुरूप परिवर्तन नहीं हो पाता है फलस्वरूप कुछ अवरोध या तनाव उत्पन्न हो जाते हैं और सामाजिक असन्तुलन पैदा करते हैं। सामाजिक अनुकूलन में बाधा डालने वाली दशाओं या सामाजिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाली स्थित को हम सामाजिक समस्याओं की संज्ञा देते हैं।

सामाजिक समस्या में सामूहिकता का तत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, यदि कोई बाधा सम्पूर्ण समूह के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के बाद भी यदि सामाजिक संरचना से सम्बन्धित नहीं होती है तो उसे हम सामाजिक समस्या नहीं कहेंगे उदाहरण के लिए- भूकम्प, बाढ़, सूखा, आदि सामाजिक समस्याएँ होकर प्राकृतिक समस्याएँ है जबकि शिक्षावृत्ति भ्रष्टाचार, बेकारी , निर्धनता, वेश्यावृत्ति, आशीक्षा, का सम्बंध एक विशेष सामाजिक संरचना से होने के कारण हम इन्हें सामाजिक समस्या की संज्ञा देते हैं। सामाजिक समस्या का अर्थ उन परिस्थितियों से है, जिन्हें समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अपने स्थापित नियमों सामाजिक मूल्यों, तथा समूह कल्याण के विरूद्ध माना जाता है और इसलिये इनको दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। कभी समाज के कुछ न कुछ सामाजिक समस्याएं पाई जाती है। कही इसका स्वरूप सामान्य होता है तो कही गम्भीर अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी और हमारे समाज में कुछ ऐसे गम्भीर समस्याएँ है जिनका समाधान आवश्यक है क्योंकि इनका सम्बन्ध हमारे देश की प्रगति से होता हे इस इकाई में हम ऐसी ही कुछ सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:-

- सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
  - विभिन्न सामाजिक समस्याओं आशिक्षा, गरीबी एवं बेरोजगारी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अशिक्षा, गरीबी व बेरोजगारी के क्या कारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- इन सामाजिक समस्याओं के निवारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

  इन सामाजिक समस्याओं हेतु सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहें हैं। के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3 निरक्षरता (Illiteracy)

किसी भी समाज की प्रगति के लिए शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति सर्वशिक्षा विकास होता है और उस देश की प्रगति शिक्षा पर ही निर्भर करती है।

शिक्षा के अभाव में कोई भी समाज प्रगति नहीं कर सकता है। भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहा की आधिकांश जनसंख्या गॉवओं मे निवास करती है और गांवों में अभी भी पढ़ाई की जगह काम को प्रधानता दी जाती है। अशिक्षा को दूर करने के लिए हर जनपद में राजीव गांधी नवोदय विद्यालयों की स्थापना की गई है, प्राथमिक शिक्षा शत-प्रतिशत नामांकन, ठहराव व लिंग भेद समाप्त करने के लिए 'मध्याहन भोजन योजना' भी संचालित है। और इस योजना से कई लाख बच्चे लाभान्वित हो रहे है। महिला शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कस्तूरबा गॉधी आवासीय बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई है इन विद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा, व निःशुल्क आवासीय सुविधा प्रदान की जा रही है । शिक्षा ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अच्छे - बुरे, उचित-अनुचित, लगत-सही का निर्णय कर पाते है। उचित शिक्षा व ज्ञान के अभाव में आज भी लोग दूसरों से ठगें जाते हैं।

2.3.1 निरक्षरता का कारण (Cause of illiteracy) -

सरकार द्वारा अनेकों कार्यक्रम चलाये जाने के बावजूद भारत में अशिक्षा के कई कारण निम्न है -

- **लोंगों की आर्थिक स्थिति-** जिसके कारण घर के बच्चे भी काम करके पैसे कमाने को मजबूर हो जाते हैं। भारत की अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवन यापन करती है, इसलिए

ऐसी स्थिति में परिवार का प्रत्येक सदस्य अपनी रोजी- रोटी व दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम करने की सोचता है जिसके कारण ये विद्यालय से दूर होते जाते हैं।

- **सामाजिक कारण-** घर से विद्यालय की दूरी अधिक होने के कारण सुरक्षा आदि की दृष्टि से लोग लड़कियों को विद्यालय भेजना कम पसन्द करते है यही कारण है कि हमारे यहाँ लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की साक्षरता दर कम है।
- **राजनैतिक कारण-** सरकार द्वारा अशिक्षा को दूर करने के लिए अनेक योजनाएँ चलायी जा रही है, जैसे - निःशुल्क पाठ्य सामग्री, मिड डे मील, (मध्याहन भोजन व्यवस्था) आदि चलाई जा रही है, लेकिन भ्रष्टाचार व गलत मानसिकता के चलते इन योजनाओं का लाभ उन तक नहीं पहुँच पा रहा है।
- **मनोवैज्ञानिक कारण-**स्कूल जाकर ये क्या करेंगें, अगर काम करेंगें तो दो पैसे मिलेंगे इस तरह की सोच भी अशिक्षा का एक मुख्य कारण है।
- गॉवों में अभी भी शिक्षा सम्बधी कार्यक्रम ठीक तरह से लागू नहीं हो पाए है जिसके कारण अधिकांश लोग अभी भी शिक्षित नहीं हो पाए है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अभी पढ़ाई की जगह काम को अधिक महत्व देते हैं। खासकर लड़कियों को वे पढ़ाई की जगह घर के काम काज व अपने छोटे भाई बहनों की देखरेखा मं लगा देते हैं।
- समुदाय या कमेटी ज्ञान को बांटने के लिए प्रोत्साहन का अभाव।

भारत में साक्षरता / निरक्षरता दर (प्रतिशत में)

वर्ष	पुरूष		महिला		योग	
	साक्षर प्रतिशत	निरक्षर प्रतिशत	साक्षर	निरक्षर	साक्षर	निरक्षर
1991	64.4	35.87	39.29	60.71	52.38	34.62
2001	75.65	24.35	54.16	45.84	65.38	34.62
2011	82.14	17.86	65.46	34.54	74.04	25.96

2.3.2 निरक्षरता दूर करने के उपाय (Ways to remove illiteracy) -

अशिक्षा के कारण व्यक्ति का भविष्य अन्धकार मय हो जाता है, इसे दूर करने के लिए निम्न उपाय अपनाये जाने चाहिए-

- **सभी के शिक्षा अनिवार्य:-** सभी बच्चों के प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की जानी चाहिए इनके गरीब बच्चों के छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाए जिससे गरीबी इनकी पढ़ाई में बाधा न बनें।
- निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था:- गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले बच्चों के निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था लागू की जाए।
- **लोगों की अभिवृत्ति में परिवर्तन करके -** लोगों को ये बताना कि शिक्षा उन्हें क्या-क्या लाभ है उनकी सोच में परिवर्तन लाना क्यों कि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़ाई की जगह कार्य की ज्यादा महत्व देते हैं।
- **व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन-**भारत में अशिक्षा का मुख्य कारण गरीबी है, इसलिए प्राथमिक स्तर पर ही पढ़ाई के साथ व्यावसायिक शिक्षा भी दी जाए सिसे ही पढ़ाई के साथ वे व्यवसाय करने योग्य भी बन सकें।
- **ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रोत्साहन** हेतु अनेक आकर्षक योजनाएँ चलाई जाए सिसे लोग विद्यालय के प्रति आकर्षित हो।
- काम करने वालों के लिए सायंकालीन कक्षाएँ चलाकर उन्हें शिक्षित किया जा सकता है।
- **भ्रष्टाचार को दूर करके -** भ्रष्टाचार की वजह से थे प्रोग्राम ठीक से स्कूलों तक नहीं पहुँच पाते है, इन स्कीमों का आधा बजट तो घोटालों की वजह से बेकार हो जाता हैं जैसे मध्याह भोजन व्यवसथा, गरीब बच्चों को ध्यान में रखकर बनाई गई योजना कि बच्चों को पढ़ाई के साथ भोजन भी मिले और निर्धनता उनकी पढाई में बाधक न बनें। फिर भी आए दिन मिड डे मील खाकर बच्चों के बीमार होने की घटनाएँ हमें सुनाई देती है। क्योंकि लोग घटिया समान इस्तेमाल कर पैसा खाने से बाज नहीं आते है।
- पिछले एक दशक में साक्षरता के दर में सिर्फ 990 की बृद्धि दर्ज है लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में निरक्षरता का प्रतिशत अधिक देखा गया है लड़कियों में साक्षरता दर में वृद्धि हेतु सरकार द्वारा अनेय योजनाएँ चलाई जा रही है जैसे महिला समाख्या योजना (1989) ग्रामीण महिलाओं को समानता और सजगता के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था, किशोरी बालिका योजना (1992) गरीब परिवार की बालिकाओं को समुचित स्वास्थ्य, पोषण तथा शिक्षा की व्यवस्था, बालिका समृद्धि योजना (1997) उस योजना में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माता को पौष्टिक आहार एवं बालिका की कक्षा 10 तक की पढ़ाई हेतु नगद राशि दी जाती है।

2.4 गरीबी (Poverty)

‘‘ सामान्य शब्दों में धन के अभाव को गरीबी की संज्ञा दी जाती है लेकिन वैज्ञानिक शब्दों मं गरीबी का तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, और मकान) को संतुष्ट करने में असमर्थ रहता है गरीबी रेखा की अवधारणा सर्वप्रथम

सन् 1945 में खाद्य एवं कृषि संगठन के महानिदेशक जार्ज लायर्ड और यारा द्वारा प्रस्तुत की गई। गरीबी रेखा का आशय उपयोग की वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो पाती है। तीन चौथाई भाग उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, आन्ध्रा प्रदेश,तामिलनाडु व महाराष्ट्र में निवास करते है। गरीबी या निर्धनता एक ऐसा प्रत्यय है जिसके लिए व्यक्ति की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्टभूमि को समझना आवश्यक है हर देश में गरीबी का आधार भिन्न-भिन्न है उदाहरण के लिए अमेरिकन परिवार में धर में कार या टेलीविजन न होना गरीबी का सूचक हो सकता है परन्तु हमारे देश में इन सूचकों के आधार पर गरीबी को ही समझा जा सकता है। अनेक अध्ययनों द्वारा ये ज्ञात होता है। कि ज्यों-ज्यों समाज का स्तर घटता जाता है ज्यों-ज्यों गरीबी निर्धारित करने वाली रेखा भी परिवर्तित होती जाती है। सामान्यतः आर्थिक दृष्टिकोण से समाज के लोगों को निम्न चार अवस्थाओं में वांटा जा सकता है।

1. वे लोग जो न्यूनतम निर्वाह स्वर पर अथवा उससे नीचे है ।
2. वे लोग जो जीवन की आवश्यकताओं को आसानी से जुटा पा रहे हैं
3. वे लोग जो आराम की अर्थव्यवस्था में जीवन व्यतीत करते हैं।
4. वे लोग जो विलासिता के स्तर पर है जिनके पास आर्थिक स्थिति इतनी मजबूत है कि वे जिस ढंग से चाहें अपनी जिन्दगी व्यतीत कर सकते हैं।

हमारे यहाँ अधिकांश व्यक्ति पहले प्रकार की अवस्था में आते है अर्थात् न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर है, या उससे नीचे है गरीबी के कारण कई महत्वपूर्ण समस्याएँ उत्पन्न होती है जैसे –

- **पारिवारिक असन्तोष एवं कलह-** गरीबी के कारण परिवार में कई कारणों (दैनिक आवश्यकताओं, भोजन वस्त्र आदि) से असन्तोष कहता है और धीरे-धीरे ये कलह का रूप धारण कर लेते हैं और परिवार के सदस्यगण सीमित साधनों का अपनी-आनी ओर खीचने में लगे रहते हैं जिससे एक - दूसरे के प्रति स्नेह व प्रेम में कमी आने लगती है आपस में अविश्वास एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है और परिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न होती है।

- **उन्नति के मार्ग में बाधाएँ-**गरीबी व्यक्ति तथा उसके परिवार के सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति में बाधा उत्पन्न करती है इतनी ही सामाजिक क्षेत्र में भी वह पिछड़ने लगता है क्योंकि गरीब व्यक्ति के सामने धनाभाव के कारण कई तरह की समस्याएं उत्पन्न हो जाती है कि उनके बोझ व वह दबने लगता हैं।

- **आकांक्षा स्तर में कमी-** हेरिंगटन एवं पार्क (1980) ने अपने सह-सम्बन्धात्मक अध्ययनों के आधार पर बताया कि गरीब परिवार के बच्चों का आकांक्षा स्तर काफी कम था। गरीबी बच्चों के आकांक्षा स्तर को कम कर देती है। वे रोजी रोटी के अलावा कुछ और सोच ही नहीं पाते है।

- **हीनता की भाव में तीव्रता-** गरीब परिवार के बच्चें अपने आप को देखकर तथा अवस्था को समझकर एक ऐसा सम्प्रत्यय विकसित कर लेते हैं जिसे नकारात्मक आत्म प्रत्यय कहा जाता है इस तरह के सम्प्रत्यय के फल स्वरूप वे अपने आप को हर तरह से हीन व कामजोर समझते है और इस भावना के चलते वे स्कूल में पिछड़ने लगते है।

- **असामाजिक व्यवहारों के प्रति झुकाव-** निर्धनता के कारण कभी-कभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वे असामाजिक व्यवहारों को करने की ओर प्रेरित होते हैं। निर्धनता को व्यक्ति को चोरी पाकेटमारी, वेश्वातृत्ति जैसे व्यवहारों को करने की प्रेरणा देती है।

- **आर्थिक प्रतियोगिता एवं अन्तसर्ममूह प्रतिद्धन्दिता-**निर्धनता के कारण आर्थक प्रतियोगिता एवं अन्तर्समूह प्रतिद्धन्दिता में वृद्धि होती है। गरीबों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सरकार तरह-तरह की स्कीमें (जैसे आरक्षण बी0पी0एल0कार्ड) चलाती परिणाम स्वरूप आर्थक रूप से सबल व्यक्ति यह सोचने लगता कि सरकार व्यक्ति यह सोचने लगता कि सरकार उनके हिस्से को छीनकर निर्धन लोगों को दे रही है। फलतः वे गरीब व्यक्तियों को अपना प्रतिद्वन्दी समझने लगते हैं और उनके प्रति विद्वेष भाव रखना प्रारम्भ कर देते हैं । ऐसी सरकारी सुविधा को लाभ उठाकर यदि कुछ निर्धन अपनी आर्थिक स्थिति सुधार लेते हैं तो उनकी प्रतियोगिता समाज के आर्थक रूप से सबल व्यक्तियों से होने लगती है परिणाम स्वरूप आर्थिक प्रतियोगिता तीव्र होती है जो सामाजिक दृष्टिकोण से हानिकारक होती है।

- **सामाजिक उपेक्षा-** गरीबी के कारण व्यक्ति में समाज के प्रति अरूचि भाव उत्पन्न हो जाती है गरीब व्यक्ति को समाज में उसकी आर्थिक तंगी के कारण लोग उसकी उपेक्षा करते है तथा अपने आपको उससे दूर रखने का प्रयास करते है। समाज धनी व्यक्ति अपने बच्चों को निर्धन बच्चों के साथ साथ खेलने व मिलने-जुलने की इजाजत नहीं देते हैं परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों का सामाजिक तिरसकार होता है उनमें असामाजिक प्रवृतियाँ आर्थिक तेजी से भरने लगती है।

2.4.1 गरीबी का कारण -

- **आर्थिक कारण:-**

- महंगाई के कारण खाद्यान्न संकट
- त्रुटिपूर्ण आर्थिक नीतियाँ
- कृषि क्षेत्र की उपेक्षा
- बुनियादी उद्योगों की पिछड़ी दशा
- परिवहन एवं संचार के उन्नत साधनों का अभाव

❖ **सामाजिक कारक:-**

- संयुक्त परिवार प्रणाली
- जाति प्रथा
- गन्दी बस्तियों में रहने के कारण
- अशिक्षा
- बीमारी स्वास्थ्य स्तर

❖ **राजनैतिक कारण:-**

- राजनैतिक भ्रष्टाचार
- राजनैतिक अस्थिरता व चुनाव के बाद बढ़ती मंहगाई
- राजनैतिक घुसपैठ।

❖ **व्यक्ति कारक:-**

- **बीमारी, कुपोषण का शिकार**
- मानसिक रोग
- बुरी आदतें - नशा, जुआ, लौटरी, सट्टेवाजी आदि
- दुर्घटनाएं

- **जनसंख्यात्मक कारण :-** (1) परिवार का बड़ा आकार

2.4.2 गरीबी के कारण उत्पन्न समस्याएँ -निर्धनता के कारण उत्पन्न होने वाली महत्वपूर्ण समस्याएँ निम्न है-

- पारिवारिक असन्तोष एवं कलह।
- उन्नति के मार्ण में बाधाएँ उत्पन होती है।
- गरीबी के कारण हीनता की भावना की उत्पत्ति होती है।
- आकांक्षा स्तर में कमी आती है।
- असामाजिक व्यवहारों के प्रति झुकाव बढ़ता है जैसे चोरी डकैती आदि।
- सामाजिक परिवर्तन के प्रति अनभिज्ञयता।
- शारीरक एवं मानसिक रोगों से सम्बन्धित समस्याएँ।
- निर्धनता के कारण सामाजिक उपेक्षा बुराईयों को जन्म देती है।

2.4.3 गरीबी को दूर करने के उपाय-मनोवैज्ञानिकों समाजशस्त्रियों, बुद्धिजीवियों एवं पूँजीपतियों द्वारा गरीबी को दूर करने के लिए निम्न उपाय बताऐं गए है-:

- **कृषि तथा उद्योग में अधिकाधिक रोजगार उत्पन्न करना**- हमारे यहॉ निर्धनता का मुख्य कारण बेरोजगारी है अतः देश में नये-नये उद्योग धन्धों की स्थापना ही एवं कृषि उत्पादन पर बल दिया जिससे लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सकें जिसके फलस्वरूप लोगों की आय में वृद्धि और गरीबी में कमी आयेगी वर्तमान समय में सरकार द्वारा रोजगार गारन्टी योजना के तहत गरीबों को 100 दिन कि लिए रोजगार उपलब्ध कराया जा रहा है।
- **जनसंख्या वृद्धि को नियन्त्रित करके-** किसी भी देश में वहॉ की जनसंख्या वृद्धि से उसका सीधा असर उस देश के विकास पर पड़ता है अतः जनसंख्या को कम करने के लिए उसके उपायों जैसे नसबन्दी, गर्भ निरोधक गोलियों आदि) पर ध्यान देना होगा। जनसंख्या नियंत्रण हो जाने पर विकासात्मक उपायों से लागों की आमदनी में बृद्धि होगी, और गरीबी में कभी आने की उम्मीद हो जाती है।
- **धनी और गरीब लोगों के बीच की खाई समाप्त करने के लिए वितरणात्मक प्रयास-** के लिए आवश्यक है कि सरकार ऐसा कानून बनाए, जिसके अनुसार धनी बर्गो को कर देना आवश्यक हो और उससे प्राप्त आय को गरीबों के कल्यचाण एवं उत्थान के लिए लगाया जा सकें।

- **भष्टाचार को समाप्त करके-** हमारे देश फैला भ्रष्टाचार निर्धनता का एक बहुत बड़ा कारण है शासक वर्ग जनता, के अरबों की हेरा- फेरी करता है और निर्धारित योजनाएं गरीब तबकों तक नहीं पहुँच पाती है आजकल हमारे देश में विदेशों में जमा काले धन को देश में लाने व लोगों को बेनकाब करने की कवायद चल रही है। काले धन के समाप्त होने लोगों में उचित काम के लिये उचित पैसा धन की प्राप्ति में मदद मिलेगी, लोगों की आमदनी बढ़ेगी और निर्धनता में कमी आयेगी।
- **योजना का विकेन्द्रीकरण और उसका कार्यान्वयन-** सरकार द्वारा ग्रामीणों के उत्पान एवं जनता की गरीबी दूर करने के लिए कई तरह की योजनाएं जैसे ग्रामीण विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना, ग्रामीण युवकों के लिए स्व रोजगार प्रशिक्षण ग्रामीण मजदूर रोजगार गारन्टी योजना, जवाहर रोजगार योजना आदि चलाई जा रही है । जब तक इन योजनाओं का लाभ गरीबों तक नहीं पहुँचेगा तब तक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम सफल नहीं होगा।
- ग्रामीण बैकों द्वारा कम व्याज की दरों पर ऋण उपलब्ध कराकर इनकी आवश्यकताओं को कुछ हद तक पूरा किया जा सकता है।
- रोजगार आधारित कार्यक्रमों को सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर बढ़ावा देकर।
- गरीब युवाओं को विभिन्न तरह के आधुनिक प्रशिक्षण (जैसे-कम्प्यूटर, टाइपिंग आदि का) देकर उन्हें स्वरोजगार योग्य बनाना।
- किसी कार्य विशेष को करने के प्रति नाकारात्मक मानसिकता को दूर करना।
- समाज के हर व्यक्ति को साक्षर करके गरीबी को दूर किया जा सकता है साक्षर होने से उसे अपने अधिकारों का ज्ञान होगा और कोई भी अनका शोषण नहीं कर पायेगा।

2.4.4 गरीबी अन्मूलन हेतु कुछ योजनाएँ –

क्रसं0	योजनाएँ	वर्ष	मुख्य लक्ष्य
1	सांसदों की स्थानीय निकाय योजना	1993	प्रत्येक सांसद अपने स्थानीय निर्वाचन क्षेत्र में प्रतिवर्ष 2 करोड़ रूपयें विभिन्न कार्यों को सम्पन्न कराने में समर्थ
2	कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना	1997	निम्न महिला साक्षरता दर वाले जिलों में बालिकाओं के लिए आवासीय विद्यालयों की स्थापना।
3	स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना	1997	स्वतंत्रता की 50 वीं वर्षगांठ पर नेहरू रोजगार योजना समाप्त कर शहरी बेरोजगारी दूर करने के लिए लागू की गई।

4	बालिका समृद्ध योजना	1997	गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली परिवारों में जन्म लेने वाली बालिका की माता को 15 दिन के भीतर 500 रूपये नगद व बालिका की कक्षा 10 तक की पढ़ाई हेतु नकद राशि दी जायेगी।
5	राज -राजेश्वरी एवं भाग्यश्री योजना	1998	राष्ट्रीय स्तर पर राज राजेश्वरी योजनाओं तथा भाग्य श्री नाम से लड़कियों के एिल 1998 दीपावली पर शुरू की गई योजना इस योजना के तहत रूपया प्रतिमाह के प्रीमियम भुगतान से आवश्यकता पड़ने पर 25,000.00 रूपये तक उपलब्ध हो सकेंगे।
6	अन्नपूर्णा योजना	1999	गॉवों के गरीबों व असहाय वृद्धों के लिये जो इस समय वृधावस्था लिये जो पेंशन प्राप्त नहीं कर रहे है हर महीने 10 किग्रा तक अनाज निःशुल्क प्रदान किया जायेगा।
7	जनश्री बीमा योजना	2001	गरीबी रेखा से नीचे तथा थोड़ा ऊपर के निर्धन व्यक्यिों)18-60) के व्यक्यिों की मृत्यु या विकलांग होने पर 50 हजार रू0 देने का प्रावधान है इसके लिये व्यक्ति को 200 रूपये का वार्षिक प्रीमियम देना होगा।
8	नरेगा मनरेगा	2005	गरीब व्यक्ति जिनको रोजगार की जरूरत है 100 दिन का रोजगार और यदि सरकार उनको 100 रू0 दिन का काम नहीं दे पाती है तो उन्हें इसके पैसे दिये जायेगे।

- गरीब लोगों के लिए ससती चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराई जाए साथ ही गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का स्वास्थय बीमा कराया जाए।
- जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद जैसी संकुचित भावना है सामाजिक आर्थिक, विकास में सबसे बड़ी बाधा है। इन भावनाओं से परे हट कर व्यक्ति को योग्यतानुसार रोजगार से जोड़कर आर्थिक सहायता प्रदान।
- केन्द्र के वजट का बड़ा हिस्सा गरीबों के लिए (विभिन्न योजनाओं पर) खर्च किया जाना चाहिए।
- जमीदारी प्रथा को समाप्त कर वो जमीन गरीबों में बॉट दी जाए।

2.5 बेरोजगारी (Unemployment)

बेरोजगारी निर्धनता का बड़ा कारण है तो निर्धनता बेरोजगारी का एक बड़ा दुष्परिणाम दोनों को एक दूसरे से झलग नहीं किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में बेरोजगारी का अर्थ -रोजगार न मिलना है। आज हम औद्योगिक विकास को उन्नति का आधार मानते है । शिक्षा के विसतार द्वारा अज्ञानता को दूर करने का प्रयास करते है वही बेरोजगारी के सामने हम सिर झुका देते हैं एक सफल सक्षम और स्वस्थ व्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ा अभिशाप है। कि किसी काम को करने की योग्यता व इच्छा रखते हुए उसे काम करने का अवसर नहीं मिलता है। अतः बेरोजगारी वह स्थिति होती है जब कोई व्यक्ति प्रचलित मजदूरी या उससे कम पर कार्य करने के लिए तैयार होता है लेकिन उसे कार्य करने का अवसर नहीं मिल रहा है। बेरोजगारी हमारे देश की एक प्रमुख सामाजिक आर्थिक समस्या है किसी समाज में जब बहुत से व्यक्यिों को आवश्यक योग्यता और कार्य की इच्छा पड़े बाद भी जीविका के ऐसे साधन प्राप्त नहीं हो पाते है सिसे वे अपनी न्यूनतम कार्य - कुशलता को बनाए रख सकें । तब इस स्थिति को हम बेरोजगारी की संज्ञा देते हैं । बेरोजगारी की स्थिति किसी न किसी मात्रा में सभी समाजों में पाइ जाती है चाहे वह कितना भी धनी क्यों नह हो लेकिन किसी समाज में जब व्यक्यिों का बहुत बड़ा भाग बेरोजगार हो जाता है तब बेरोजगारी एक गभ्भीर समस्या का रूप ले लेती है।

2.5.1 बेरोजगारी के प्रकार (Types of unemployment)-सामान्य रूप से हम बेरोजगारी को निम्न रूपों में देख सकते हैं

- **संरचनात्मक बेरोजगारी-** औद्योगिक क्षेत्रों में संरचनात्मक परिवर्तनों के परिणास्वरूप उत्पन्न होने वाली बेरोजगारी को संरचनात्मक बेरोजगारी कहते है यह कालीन होती है।

- **अल्प बेरोजगारी:-** में ऐसे व्यक्ति आते है जिन्हें थोड़ा काम बहुत काम मिलता है और जिनके द्वारा वे कुछ अंशों तक उत्पादन में योगदान देते हैं किन्तु इनको अपनी क्षमतानुसार काम नहीं मिलता या पूरे समय के लिए काम नहीं मिलता हें इसमें कृषि क्षेत्र में लगे श्रमिक भी आते है।

- **बेरोजगारी-** कुछ उद्योगों या व्यापार की प्रकृति इस प्रकार की होती है कि वे साल के कुछ महीनें ही चलते है जैसे-चीनी मिले जहॉ लोगों को 6-7 महीने ही काम मिल पाता है बाकी समय ये बेकार रहते हैं।

- **आकस्मिक बेरोजगारी-** आर्थिक मन्दी व युद्धकाल के बाद प्रायः इस प्रकार की बेरोजगारी उत्पन्न होती है।

- **अदृश्य बेरोजगारी-** इसमें श्रमिक बाहर से तो काम पर लगे प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में उन श्रमिकों की उस कार्य विशेष के लिए आवश्यकता नहीं हाती है। अर्थात यदि उन श्रमिकों को उस कार्य से निकाल दिया जाए तो कुछ उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है जैसे - किसी परिवार में सिर्फ खेती ही आय का एक मात्र साधन है उस परिवार में 3 वयस्क पुरूष है इस खेती के काम को 2 पुरूष पूरा कर सकते हैं किन्तु उचित संसाधन के अभाव में वे तीनों सदस्य इसी जमीन पर कार्य करते है इसे छिपी या अहश्य बेरोजगारी कहते है। इसके अतिरिक्त खुली बेरोजगारी, साप्ताहिक बेरोजगारी शिक्षित बेरोजगारी, औद्योगिक बेरोजगारी आदि इसके अन्य प्रकार है।

2.5.2 भारत में बेरोजगारी की स्थिति (2009-2010)-

- ग्रमीण क्षेत्रों में - 10.1 प्रतिशत
- शहरी क्षेत्रों में - 7.3 प्रतिशत
- पुरूष बेरोजगारी - 8 प्रतिशत
- महिला बेरोजगारी - 14.6 प्रतिशत
- सम्पूर्ण जनसंख्या में - लगभग 4 करोड़ लोग बेरोजगार है जिनके पास कोई काम नहीं है।

2.5.3 भारत में बेरोजगारी के कारण -भारत में बेरोजगारी के एक नहीं बल्कि कई कारण है-

- **जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि-** भारत में जिस तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई है उस अनुपात में रोजगार की सुविधाओं में बृद्धि नहीं हो पाई है। फलतः देश में बेरोजगारी काफी तीव्र गति से बढ़ी है।
- **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली-** शिक्षा व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है भरतीय शिक्षा प्रणाली व्यकित्व का विकास तो कर रही है लेकिन रोजगारपरक शिक्षा का अभाव है व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के शुल्क इतना ज्यादा है जो सामान्य छात्र की पहुँच दूर है शिक्षा में गुणवनता न होने से स्नातक और परास्नातकों की भीड़ बढ़ती जा रही है ऐसे डिग्री धारकों की भीड़ जयादा हैं जिनके पास डिग्री तो है पर ज्ञान के नाम पर कुछ भी नहीं है। डा0 राजेन्द्र प्रसाद का कहना है कि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि देश की शिक्षा प्रणाली में कुछ कमियाँ है विश्वविद्यालयों से बहुत से छात्र प्रतिवर्ष निकलते है उनको काम ही नहीं मिलता बल्कि वे काम के अयोग्य भी है यह स्थिति बेरोजगारी से भी अधिक भयंकर है आज बेरोजगारी इसलिए बढ़

रही है क्योंकि नौकरियों की संख्या में वृद्धि नहीं हो रही है पर लोग इसलिए भी बेकार है कि जो स्थान खाली है उसके लिए योग्य नहीं मिलते है।

- **कृषि क्षेत्र की अनुत्पादकता-** भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अनेक उद्योग धन्धों की स्थापना तो हुई लेकिन इन कारखानों ने निकला कचरा व गन्दा पानी जिसके लिए उचित व्यपस्था नहीं की गई इसकी वजह से हमारी नदियों का पानी भी दूषित हो गया हे ये कचरा और गन्दा पानी हमारी कषि भूमि को भी प्रभावित कर रहा है और कृषि में अनुत्पादकता के चलते बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो रही है। न तो इतने पढ़े लिखे होते हैं और नहीं पैसा होता है कि शहरों में जाकर रोजगार दूढ़ सके।
- **लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन-** कुछ दशक पहले भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा अपने परिवार को भरण पोषण करते थे आज मशीनों के आ जाने से बड़े - बड़े कारखाने खुल जाने की वजह से हजारों व्यक्ति भुखमरी की कगार पर पहुँच गए है।
- **तकनीकी शिक्षा का अभाव-** भारत में तकनीकी शिक्षा का अभाव बेरोजगारी का एक मुख्य कारण है तकनीकी शिक्षा महंगी होने के कारण भी गरीब व्यक्ति इनका लाभ नहीं उठा पाते हैं।
- **शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता-** शिक्षित लोगों में शारीरिक श्रम के प्रति उदासीनता पाई जाती हैं। अधिकांश व्यक्ति ऐसा काम करना चाहते है जिसमें शारीरिक श्रम ना के बाराबर हो । आज लोगों की सोच कम मेहनत, कम काम और ज्यादा पैसे में बदलती जा रही है।
- **श्रम की मॉग में पूर्ति में असन्तुलन-** श्रम की पूर्ति के अनुपात में उत्पादन के अन्य साधनों में वृद्धि न होना भी बेरोजगारी का एक मुख्य कारण है अगर श्रमिकों की मॉग कम है और काम करने के इच्छुक योग्य व्यक्तियों की संख्या ज्यादा है तसे सभी लोगों को रोजगार नहीं मिल पाता है और बेरोजगारी फैलने लगती है।
- **गलत तकनीक का चुनाव तथा दोषपूर्ण विनियोजन नीति-**भारत की उत्पादन तकनीक पूँजी बाहल है न कि श्रम बाहुल जो देश में बढ़ती बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी है। हमारे यहॉ योजनाओं में बड़े एवं मध्यम उद्योगों को ही प्राथमिकता दी गई है जो रोजगार सृजन क्षमता में बहुत कम है।

2.5.4 बेरोजगारी दूर करने हेतु सुझाव (Suggestions to remove unemployment) -

भारत में बेरोजगारी एक गम्भीर समस्या है और देश की सम्पूर्ण व्यवस्था में सुधार लाए बिना बेरोजगारी को दूर नहीं किया जा सकता है इसे कम करने के लिए निम्न उपायों को अपनाया जाना चाहिए।

- बेरोजगारी दूर करने के लिए सबसे पहले जनसंख्या बृद्धि को रोकना आवश्यक है। लोगों को जनसंख्या बृद्धि द्वारा होने वाले भयावह परिणाम से अवगत कराना तथा परिवार नियोजन के उपायों को अपनाने पर बल दिया जाना आवश्यक है।
- शिक्षा प्रणाली में सुधार द्वारा भी बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।
- शिक्षा के साथ शारीरिक श्रम को अनिवार्य कर दिया जाए। विद्यार्थियों को शारीरिक श्रम की महत्ता के बारे में अवगत कराना।
- शिक्षित महिलाओं को अधिक से अधिक संख्या में रोजगार उपलब्ध कराना।
- लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करके ।
- कृषि क्षेत्रों में सुधार करके कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराके।
- उत्पादक रोजगार के अतिरिक्त अवसरों को सृतन करना।
- श्रम बाजार के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की विश्वसनीयता को बढ़ाना।
- नये उद्योगों को स्थापित करके कुछ लोगों को रोजगार पर लगाया जा सकता है।
- बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकार द्वारा उचित एवं ठोस कदम उठाए जाए भारत की अर्थव्यवस्था गॉवों पर निर्भर करती है इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में परस्पर सहायता कार्य को भारतीय परम्पर के अनुरूप एक परोपकारी या पवित्र कार्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए अपने ही गॉव के लोंगों या अन्य जाति वर्ग के लोगों के सेवा आवश्यकताओं की पूरा करना एवं सामाजिक सरोकारों से सम्बन्ध स्थापित करना मानवीय गुणों को विकसित करने में सहायक होगा।
- शिक्षित व्यक्ति अपने देश को छोड़कर दूसरे देशों की प्रगति में लग जाते हैं जिससे अपने देश की प्रगति नहीं हो पाती है। सरकार को इस दिशा में भी कुछ करम उठाया जाना आवश्यक है।

2.5.5 बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकारी प्रयास (Government efforts to remove unemployment) -

क्र सं0	योजना	वर्ष	उद्देश्य
1	समान्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम	1980	ग्रामीण परिवारों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में सक्षम बनाया।
2	ग्रामीण क्षत्रों महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम	1982	ग्रामीण महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराते हुये उनके स्वास्थ्य, शिक्षा,

			पोषक आहार ,स्वच्छता तथा शिशुओं की देखभाल करने जैसे मूलभूत सेवाएं प्रदान करना।
3	कृषि विकास केन्द्र	1992	किसानों) महिलाओं एवं पुरूष (के लिए रोजगार परक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना।
4	जवाहर रोजगार योजना	1989	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (लाभकारी रोजगार उपलब्ध कराना)
5	इन्दिरा आवास योजना	1985 -86	अनुसूचित जाति जनजाति के सबसे गरीब लोगों के लिए मकानें को निर्माण कराना।
6	राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	राष्ट्रीय बृद्धावस्था पेंशन योजना राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना रास्ट्रीय प्रसव लाभ - योजना
7	खेतिहर मजदूर बीमा योजना	2001	भूमिहीन खेतिहार मजदूरों के लिए योजनान्तर्गत बीमा कवच लाभ 60 वर्ष की आयु पूरी करने वाले को 100 रू0 मासिक पेंशन प्रदान करने का प्रावधान।
8	सम्पूर्ण ग्रामीण रोजार योजना	2001	10,000 करोड़ रूपये की योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्रदान करना।
9	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना	2005	ग्रामीण क्षेत्रों में 100 दिन काम देने का प्रावधान हैं।

2.5.6 बेरोजगारी के परिणाम (Consequences of unemployment)- बेरोजगारी किसी भी समुदाय या देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा है एक बेराजगार व्यक्ति नह केवल स्वयं के लिए अनेक समस्याएँ उत्पन्न करता है बल्कि इसका नुकासान पुरे समाज व देश को उठाना पड़ना है बेरोजगारी का व्यक्ति और समाज दोनों को ही उठाना पड़ता है।

- बेरोजगारी अनेक मानसिक रोगों का जन्म देती है और कभी-कभी मानसिक तनाव या दबाव इतना बढ़ जाता है कि व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है।
- बेरोजगारी की अवस्था वयक्ति के नैतिक सतर को गिरा देता है ऐसी स्थिति में वयक्ति जब अपने परिवार के सदसयों को अनेक कष्ट सहने सहतें हुए देखता है तो कभी वह गलत रास्ता पकड़ लेता है जैसे वेश्यावृत्ति, चोरी, डकैती, धोखा धड़ी आदि।
- बेरोजगारी की सबसे गम्भीर दुष्परिणाम अपरोधों में बृद्धि होना है। व्यक्ति अपने जीवन की रोजी रोटी - चलाने के लिए अनेक आपराधिक कार्य करता है जैसे अपहरण, चोरी हत्या या समाज के नियमों के विरूद्ध कार्य करना अपनी जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु।
- बेराजगारी के कारण कभी-कभी ये ऋण लेते हैं और उसे पूरा न पाने पर ये उसके बोझ तले दबते चले जाते हैं और इनकी स्थिति बद से बदतर होती चली जाती है।
- बेराजगारी देश की प्रगति में बाधक है, क्योंकि बेकार व्यक्तियों की सेवाओं का लाभ समाज नहीं उठा पाता है। किसी देश के लिए बहुत बड़ी सामाजिक एवं आर्थिक हानि है।
- बेरोजगारी व निर्धनता के कारण माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन उचित ढंग से नहीं कर पाते है फलतः भावी पीढ़ी दुर्बल, बीमार या किसी रोग का शिकार हो जाती है।
- बेरोजगारी व्यक्ति हर तरफ से हताश व निराश हो जा जाता है अपनी निराशा व हताशा निराशा व हताशा को दूर करने के लिए ये कभी-कभी शराब, नशा, आदि का सहारा लेते हैं अतः बेरोजगारी अन्य अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है।
- बेराजगारी एक ऐसी समस्या है जिसके लिए सरकार द्वारा अनेक प्रयास किये गए है और आगे भी निरन्तर किये जा रहे है। सरकार द्वारा किये गऐ प्रयत्नों के कवजूद भी जनसंख्या वृद्धि के कारण इसमें कोई खास सफलता नहीं मिल पा रही है क्योंकि देश में भ्रष्टाचार के चलते इन योजनाओं का सही-सही लाभ उन व्यक्यिों तक नहीं पहुँच पा रहा है तो वास्तव में इसके असली हकदार है।

2.6 सारांश (Summary)

विभिन्न सामाजिक समस्याओं में निरक्षरता, गरीबी, बेरोजगारी आदि अनेक ऐसी समस्याएँ है, जिनका समाधान अत्यनत आवश्यक है क्योंकि किसी भी देश की प्रगति तभी सम्भव है जब वहॉ के लाग साक्षर हो लोगों के पास रोजगार हो आज सूचना तंत्र के प्रयास से गांवों में भी रोजगार की अपार सम्भावनाए प्रकट हो रही है रोजगार की सम्भावनाएँ बढ़ाकर कृषि उत्पादन पर निर्भरता को कम किया जा सकता है। पिछड़े हुए क्षेत्रों को विकास की प्रक्रिया से जोड़ने के लिए इन क्षेत्रों में साक्षरता गरीबी और रोजगार से सम्बन्धित कार्यक्रमों का निर्माण किया जाए बेरोजगारी की समस्या का समाजधान निश्चय ही शिक्षा-प्रणाली के जीर्णोद्वारा में निहित है जिससे युवाओं केा बाजार द्वारा आपेक्षित ज्ञान और कौशल प्रदान किया जा सकें।

2.7 शब्दावली (Vocabulary)

- बुनियादी: जरूरी, आवश्यक
- विलासिता: ऐशोआराम
- अनभिज्ञयता: अज्ञानता
- दशक: दस वर्ष
- मध्याहन: दोपहर
- अनुत्पादकता:उत्पादन न होना है
- पत्तन: या उत्पादन में गिरावट
- पतन: खत्म होना (समाप्त होना)

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-assessment questions)

सत्य / असत्य बताइये-

1. निरक्षरता देश की प्रगति में सहायक है। (सत्य / असत्य)
2. नवोदय विद्यालयों की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता दर बढ़ाने के लिए स्थापित की गई है। (सत्य / असत्य)
3. निरक्षरता का मुख्य कारण गरीबी है। (सत्य / असत्य)
4. प्राथमिक विद्यालयों में मिड डे मील की व्यवस्था बच्चों की मौज मस्ती के लिए की गई है। (सत्य / असत्य)
5. लड़को की अपेक्षा लड़कियों में साक्षरता दर अधिक है। (सत्य / असत्य)
6. निर्धनता एक सापेक्षिक अवधारणा है । (सत्य / असत्य)
7. भारत में निर्धनता का मुख्या कारण अशिक्षा है। (सत्य / असत्य)
8. राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना 2 फरवरी 2002 में लागू हुई । (सत्य / असत्य)
9. निर्धनता विवाह-विच्छेद का परिणाम है। (सत्य / असत्य)
10. लिर्धनता का मुख्य कारण जनसंख्या की अधिकता है। (सत्य / असत्य)
11. भ्रष्टाचार का निर्धनता से कोई सम्बन्ध नहीं है। (सत्य / असत्य)
12. बेरोजगारी की स्थिति केवल निर्णन समाजों में पाई जाती है। (सत्य / असत्य)

13. मौसमी बेरोजगारी बेरोजगारी का एक प्रकार है। (सत्य / असत्य)

14. भारत में महिला के अपेक्षा पुरूष बेरोजगारी ज्यादा है। (सत्य / असत्य)

15. बीर चन्द्र सिंह गढ़वाली पर्यटन स्वरोजगार योजना का सम्बन्ध उत्तराखण्ड से है। (सत्य / असत्य)

वस्तुनिष्ठ प्रश्न (किसी एक पर सही का निशान लगाइये)

(1) गरीबी की माप का आधार क्या हैं?

(i) व्यक्गित आय (ii) राष्ट्रीय आय

(iii) उपभोग खर्च (iv) उपर्युक्त सभी

(2) निम्न में से कौन सा निर्धनता का कारक नहीं है।

(i) खेती की पिछड़ी दशा (ii) शिक्षातृत्ति

(iii)भाषायी संघर्ष (iv) बेकारी

(3) गरीबी की अवधारण किस सन् में प्रस्तुत की गई:

(i) 1947 (ii) 1945

(iii) 1960 (iv) 1952

(4) निर्धनता का सामाजिक कारक है -

(i) जाति व्यवस्था (ii) संयुक्त परिवार प्रणाली

(iii) दोनों ही (iv) दोनों में से काई नहीं

(5) निर्धनता के बैयक्तिक कारक है-

(i) आशिक्षा (ii) रोगग्रस्तता

(iii) नैतिक (iv) उपर्युक्त सभी

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

(1) राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना ..... से लागू हुई है।

(2) भारत में लगभग ..... लोग बेराजगार है।

(3) भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी का प्रतिशत .....है।

(4) आर्थिक मंदी एवं युद्धकाल के बाद ..... बेरोजगारी उत्पन्न हैं ।

(5) बेरोजगारी देश की प्रगति में ..... है।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type questions)

1. गरीबी की अवधारण को स्पष्ट कीजिए ? एवं इसके क्या कारण है।
2. गरीबी दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या - क्या प्रयास किये जा रहें है ?
3. आर्थिक दृष्टिकोण से समाज के लोगों को कितनी अवस्थाओं में बॉटा गया है ?
4. गरीबी का क्या अर्थ है ?
5. निर्धनता की अवधारण सर्वप्रथम किसने व्यक्त की ?
6. निर्धनता का कोई दो मुख्य कारण बताइयें ।
7. भ्रष्टाचार का गरीबी से क्या सम्बन्ध हैं।
8. निरक्षरता या अशिक्षा से आप क्या समझते है ?
9. अशिक्षा के चार मुख्य कारण बताइयें ?
10. अशिक्षा दूर करने के लिए कोई चार उपाय बताइये ?
11. निरक्षरता दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या प्रयास किये जा रहे हैं ?
12. निरक्षरता दूर करने हेतु आप अपने कुछ सुझाव दीजिए।
13. गरीबी की अवधारण को स्पष्ट कीजिए ? एवं इसके क्या कारण है।
14. गरीबी दूर करने हेतु सरकार द्वारा क्या-क्या प्रयास किये जा रहे है ?
15. बेरोजगारी से आप क्या समझते हैं ।
16. बेरोजगारी कितने प्रकार की होती है।
17. भारत में बेरोजगारी की क्या स्थिति है।
18. बेरोजगारी के चार मुख्य कारण बताइये।
19. बेरोजगारी के दुष्परिणाम क्या है ?
20. बेरोजगारी दूर करने हेतु आप अपने सुझाव दीजिए।
21. बेरोजगारी दूर करने हेतु सरकार द्वारा प्रयास किये जा रहे है।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- डा0 अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन मातीलाल बनारसी दस दिल्ली।
- रविन्द्र नाथ मुखर्जी: सामाजिक समस्याएँ विवेक प्रकाशन दिल्ली।

इकाई 3 जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक पक्षपात, आधुनिकीकरण एवं शहरीकरण (Population Explosion, Gender Biasness, Modernization and Urbanization)

इकाई संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जनसंख्या विस्फोट

3.3.1 जनसंख्या वृद्वि के कारण

3.3.2 जनसंख्या वृद्वि को नियन्त्रित करने के उपाय

3.3.3 जनसंख्या विस्फोट के दुष्परिणाम

3.3.4 जनसंख्या विस्फोट में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका

3.4 लिंग भेद

3.4.1 विकास में लिंग का महत्व

3.4.2 लिंग भेद समाप्त करने हेतु कुछ प्रयास

3.5 आधुनिकीकरण

3.5.1आधुनिकीकरण की विशेषताऐं

3.5.2 आधुनिकीकरण के कारक

3.5.3 भारत में आधुनिकीकरण का प्रभाव

3.6 नगरीकरण

3.6.1 भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया

3.6.2 नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक कारक

3.6.3 सामाजिक परिवर्तन में नगरीकरण की भूमिका

3.6.4 नगरों की ज्वलंत समस्याएँ

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक समस्या से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है। जिससे समाज का एक बढ़ा भाग प्राभावित होता है। तथा जिसका समाधान मात्र सामूहिक रूप से सम्भव हो पाता है। जैसे भारत में व्याप्त निर्धनता, अशिक्षा, बेरोजगारी, की समस्या को ही लिया जाए। तो यह एक सामाजिक समस्या है। क्योंकि इससे समाज का एक बढ़ा भाग प्रभावित है। तथा अनेक व्यक्तियों, सरकार तथा अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं के संयुक्त प्रसास से ही सम्भव है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक समस्याओं का अध्ययन तीन प्रमुख श्रेणियों में बॉट कर किया है।

- ❖ प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ जैसे बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत आते है।
- ❖ सुधारात्मक समस्याएँ कुछ समस्याएँ ऐसी होती है जिनके कुप्रभावों के बारे में आम सहमति होती है परन्तु समाधान के बारे में आम सहमति नहीं होती है। जैसे गरीबी, अपराध, मादक पदार्थो का सेवन आदि।

नैतिक समस्या कुछ सामाजिक समस्याएँ ऐसी होती है जिनकी प्रकृति एवं कारणों के बारे में आम सहमति नहीं होती है जैसे बालक, विधवा, विवाह, बाल, विवाह आदि अतः सामाजिक समस्या है के समाधान के लिए जागरुक ता, नीति, निर्धारण और सुधार इन तीनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस ईकाई में हम ऐसी सामाजिक समस्याओं, जनसंख्याविस्फोट, लिंग भेद, आधुनिकीकरण, शहरीकरण, आदि का अध्ययन करेगे।

3.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- ❖ जनसंख्या विस्फोट के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेगे।
- ❖ लिंग भेद के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेगे।
- ❖ आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेगें।
- ❖ नगरीकरण की प्रक्रिया के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.3 जनसंख्या विस्फोट (Population Explosion)

हमारे यहां की सबसे प्रमुख सामाजिक समस्या जनसंख्या विस्फोट की समस्या है। विश्व जनसंख्या का 16 प्रतिशत हिस्सा आज धरती के 2.4 प्रतिशत क्षेत्र पर निवास कर रहा है। पिछले शतक में विश्व जनसंख्या जहां 2 अरब से बढ़कर 6 अरब हुई। वहीं भारत ने अपनी जनसंख्या में पांच गुना की वृद्वि दर्ज की और हमारी आबादी 23 करोड़ से बढ़कर 100 करोड़ तक पहुँच गई। जनसंख्या विस्फोट का सामान्य अर्थ देश के संसाधनों की तुलना में जनसंख्या या व्यक्तियों की संख्या में बेतहाशा वृद्वि से होता है। और अनेकों अन्य समस्याएँ जैसे गरीबी, अशिक्षा रहन सहन के स्तर आदि उत्पन्न हो जाती है। पूरे विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या चीनएभारत अमेरिका, और -स की है। चारों देशों को मिलाकर विश्व की लगभग आधी जनसंख्या होती है। भारत के चार बड़ें राज्यों उत्तर प्रदेश बिहार, मध्यप्रदेश, और राजस्थान में जनसंख्या की वृद्वि बहुत ऊँची है। प्रतिवर्ष जनसंख्या वृद्वि दर ने प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण संरक्षण के हमारे सारे प्रयास को विफल कर दिया है। जनसंख्या विस्फोट की स्थिति आज हमारे समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में खड़ी है जो मानव के पतन का कारण बनती जा रही है। डेढ करोड़ की वर्तमान वार्षिक जनसंख्या वृद्वि ने प्राकृतिक संसाधनों तथा प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण के हमारे सारे प्रसासों को विफल कर दिया है। बढ़ती जनसंख्या भोजन पानी की कमी तो पैदा कर ही रही हैसाथ हीसाथ स्वास्थ्य आवास एवं पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को भी बढ़ावा दे रहा है। 2011 में भारत की जनसंख्या 11 करोड़ 80 लाख है जिसमें 51.54 प्रतिशत पुरूष और 48.46 प्रतिशत महिलाऐं है।

3.3.1 जनसंख्या वृद्वि के कारण-जनसंख्या वृद्धि के कई कारण है। जैसे -

- जन्म दर तथा मृत्यु दर में अन्तर पिछले कई दशकों में भारत में जन्म दर तथा मृत्यु दर में कमी आई है। परन्तु जन्म दर में मृत्यु दर की तुलना में कम गिरावट आई है जन्म दर में वृद्वि होने के कारण जनसंख्या में लगातार वृद्वि होती जाती है।

- कम आयु में शादी महिलाओं तथा पुरूषों द्वारा कम उम्र में शादी करना भी जनसंख्या वृद्वि का एक मुख्य कारण है। अशिक्षा कम पढ़े लिखे होने के कारण वे परिवार नियोजन के महत्व को नहीं समझ पाते है क्योंकि कम पढ़ लिखे होने के कारण उनमें नए विचारों को ग्रहण करने एवं तार्किक चिन्तन करने की क्षमता नहीं होती है।
- गरीबी प्रायः देखा गया है कि गरीब परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक होती है। गरीब परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक होती है। गरीब परिवारों का मानना होता है कि बच्चे ज्यादा होगें तो बो थोड़े समय बाद कुछ न कुछ काम करने लायक हो जायेगे। तो उनकी पारिवारिक आमदनी अधिक से अधिक होगी और उनका भरण पोषण आराम से हो जायेगा। इस तरह की मानसिकता के चलते धीरेधीरे जनसंख्या में भी वृद्वि होती रहती है। परिवार नियोजन के प्रति -ढिवादी विचार बच्चे भगवान की देन है ज्यादातर लोग ऐसे -ढिवादी विचारों पर विश्वास करते है और वे परिवार नियोजन के साधनों को अपनाना पाप समझती है।
- अर्व्याप्त प्रेरणा भारतीय परिवार में परिवार नियोजन के साधनों के प्रति उदासीनता एवं परिवार को सीमित जनसंख्या के प्रति सचेष्ट नहीं रहते हैं।
- राजनैतिक इच्दाशक्ति तथा वचनबद्वता का अभाव है। रखने की अभिप्रेरणा की कमी पायी गई है।
- प्राकृतिक कारण भारत गर्म जलवायु वाला देश है अतः यहाँ बच्चों में कम आयु में ही प्रजनन की परिपक्वता आ जाती है। जो जनसंख्या वृद्वि में सहायक होती है।
- मनोरंजन के साधनों की कमी भी जनसंख्या वृद्वि का एक मुख्य कारण है। स्वस्थ्य मनोरंजन के साधनों के अभाव में वे यौन व्यवहार ही मनोरंजन का एक साधन बना लेते हैं जो जनसंख्या वृद्वि में सहायक होता है।
- संयुक्त परिवार का आर्थिक उत्तरदायित्व सम्मिलित रूप में सभी सदस्यों पर रहता है। इसलिये लोगों में उत्तरदायित्व की भावना कम रहती है।

जनसंख्या सम्बन्धी महत्वपूर्ण आंकड़े

वर्ष	**कुल जनसंख्या**	**पुरूष जनसंख्या**	**स्त्री जनसंख्या**	**जनसंख्या घनत्व (प्रतिवर्ग किमी)**
2001	1027015247	531277078	495738169	324
2011	1210193422	623724248	586469174	359

3.3.2 जनसंख्या वृद्वि को नियन्त्रित करने के उपाय -

जनसंख्या विस्फोट की समस्या देश की एक मुख्य समस्या है इस समस्या से निपटने के लिए सरकार ने तरहतरह के कई कार्यक्रम चलाये है। जिससे जनसंख्या को नियन्त्रित किया जा सकें।

- कम आयु में लड़की विवाह पर नियंत्रण लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष की आयु विवाह के लिए सरकार द्वारा निर्धारित की गई है। इससे कम उम्र से पहले विवाह करना एक कानूनी अपराध है। विवाह की आयु अधिक निर्धारित होने से जनसंख्या वृद्धिपर कुछ हद तक काबू पाया जा सकता है।
- परिवार नियोजन के साधनों को अपनाना परिवार नियोजन के साधनों को उपलब्ध कराना एवं इनके उपयोग का सही प्रशिक्षण देना एक महत्वपूर्ण कार्य है। परिवार नियोजन के प्रति लोगों को जागरुककरने की आवश्यकता है। परिवार नियोजन सम्बन्धी सभी साधनों को निःशुल्क, या बहुत कम दामों पर सभी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध कराना सरकार की नैतिक जिम्मेदारी है।
- जनसंख्या शिक्षा का प्रचार प्रसार करके जनसंख्या वृद्वि पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- उन राज्यों संस्थानों या व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना जो परिवार नियोजन के क्षेत्र में अच्छा कार्य करते हो।
- मनोरंजन के स्वस्थ्य साधनों का विकास करके जनसंख्या वृद्वि पर नियन्त्रण किया जा सकता है।
- दूरसंचार के माध्यमों जैसे रेड़ियों दूरदर्शन,टेली फिल्म, के अतिरिक्त नुक्कड़ नाटक, प्रेरक गीतों आदि के माध्यम से लोगों को इसके प्रति जागरुककरना।
- गर्भ निरोध विषयों में शोध के लिए पुनर्वलन देना।
- जनसंख्या का आर्थिक विकास से सीधा सम्बन्ध है लोगों के सामने इस बात को स्पष्ट किया जाए।
- महिलाओं को स्वावलम्बी बनाना।
- बच्चे ईश्वर की देन है इस मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है अर्थात धार्मिक अंधविश्वास को समाप्त करना।
- साक्षरता एवं स्वास्थ्य सुविधाओं में होते व्यय में बढ़ोत्तरी की जानी चाहिये। तभी भारत में जनसंख्या वृद्वि से होने वाली समस्याओं का दीर्घकालीन समाधान सम्भव है।

3.3.3 जनसंख्या विस्फोट के दुष्परिणाम-

- अत्यधिक जनसंख्या वृद्वि देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करती है।
- पूँजी निर्माण आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाता है क्योंकि भारत एक विकासशील देश है। जहाँ प्रति व्यक्ति आय कम है अतः लोगों की बचत क्षमता कम होती है। और पूँजी का संचय आवश्यक मात्रा में नहीं हो पाता है।

- अधिक जनसंख्या के कारण देश को खाद्य समस्या का भी सामना करना पड़ता है।
- जनसंख्या अधिक बढ़ने से बेरोजगारी की गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है।
- जनसंख्या अधिक होने से कृषि योग्य भूमि का उप विभाजन तेजी से बढ़ जाता है।
- औद्योगीकरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है अधिक जनसंख्या के कारण गरीबी बढ़ती है और बचत, आय, जीवनएस्तर व कार्यक्षमता को कम करके इस क्षेत्र के विकास में बाधा उत्पन्न करती है।
- स्वास्थ्य,शिक्षा रहन सहन भरण पोषण, की समस्या उत्पन्न होती है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास की सबसे बड़ी बाधा है।
- पारिवारिक विघटन की स्थिति उत्पन्न होती है।
- जनसंख्या की अधिकता के कारण पर्यावरण प्रदूषण की समस्या।

3.3.4 जनसंख्या विस्फोट में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका -"भारत एक अरब लोगों का राष्ट्र है इस राष्ट्र की तरक्की उसके नागरिकों की मानसिकता पर निर्भर करती है क्योंकि विचार ही अन्ततः कार्य में परिणत होते हैं भारत को एक अरब जनसंख्या वाले राष्ट्र के रूप में सोचना होगा विचारों से सम्पन्न समृद्वि के विचारों से सम्पन्न युवा को पूर्णतया विकसित होने का मौका दिया जाए।" ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम पूर्व राष्ट्रपति

चीन के बाद भारत सर्वाधिक जनसंख्या वाला राष्ट्र बन गया है। यदि जनसंख्या वृद्वि की वर्तमान दरें कायम रही तो 2035 तक भारत चीन को पीछे छोड़कर विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राष्ट्र बन जायेगा। मनोवैज्ञानिक कारकों का सम्बन्ध व्यक्तियों के विचारों विश्वासों मनोवृत्तियों धारणाओं आदि से होता है इस क्षेत्र में हुए अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि कालेज छात्रों एवं नौकरी करने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति परिवार नियोजन के प्रति अनुकूल पाई गई इसी तरह जनजातियों पर हएु एक अध्ययन में अधिकांश लोगों ने परिवार नियोजन के प्रति अपना मत व्यक्त करेन में असमर्थता दिखलाई।

वहीं अशिक्षित होने से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता भी अविकसित रह जाती है फलस्वरूप ऐसे व्यक्ति परिवार बड़ा होने से दुष्परिणामों के ठीक ढंग से न तो सोच पाते है और न ही समझ पाते है फलतः उनका योगदान जनसंख्या वृद्वि में बिना किसी तरह के रोकठोक के होते जाता है। दूसरी ओर जो लोग शिक्षित है उनकी मनोवैज्ञानिक समझ और सचेतना अधिक होने के कारण परिवार के आकार को सीमित रखने में वे लोग अधिक विश्वास करते है। सरकार की ओर से सामाजिक सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध न होने के कारण लोग बच्चों को बुढ़ापे का सहारा मानते है और अधिक सन्तानोत्पत्ति में विश्वास करते हैं। वहीं कुछ भारतीय स्त्रियों को ये विश्वास नहीं होता है कि उनके सभी बच्चे जीवित रहेंगे इसलिए वे अधिक बच्चों के जन्म में विश्वास करती है। जनसंख्या वृद्वि के ऐसे ही अनेक मनोवैज्ञानिक कारक है जिनको दूर करके जनसंख्या वृद्वि पर नियन्त्रित किया जा सकता है।

3.4 लिंग भेद (Gender difference)

जेण्डर एक ऐसी सोच है जो समाज में लिंग भेद का विरोध करती है और एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जिसमें काम,गुण, जिम्मेदारियाँ व्यवहार और प्रतिभा किसी लिंगए जाति रंग और वर्ग के आधार पर न थोपे जाय प्रायः कुछ लोगों को इस सम्बन्ध में भ्राति भी होती है वे जेण्डर शब्द का अर्थ महिलाओं से जोड़ देते हैं तो कुछ लोग इसे सेक्से से जोड़ देते हैं अतः लोगों के मन में आने वाली इस तरह की भ्रान्तियों को दूर करना आवश्यक है जेण्डर एक विचारधारा है जिसका अर्थ महिला पुरूषों के सामाजिक रिश्तों से है जो प्राकृतिक नहीं बल्कि समाज द्वारा बनाये गये है शुरुमें इस शब्द का प्रयोग समाज में स्त्री पुरूष के बीच रिश्तों में जो भेद भावपूर्ण सम्बन्ध बन गए हैं वे प्राकृतिक नहीं है उन्हें भगवान ने नहीं बनाया है ज्यादातर लोग ये सोचते है कि स्त्री कमजोर है दीन हीन है और पुरूष ताकतवर, लोगों की इसी सोच को बदलने के लिए जेण्डर शब्द का प्रयोग किया गया। ज्यादातर देशों में सामाजिक लिंग भेद पितृसत्तात्मक है जो पुरूषों की सत्ता को दर्शाता है सामाजिक लिंग भेद की वजह से लड़कियों पर अनेकों बन्धन होते हैं उन पर हिंसा होती है उनके प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया जाता है जिसके चलते न तो वे फल फूल पाती है और न ही उन्हें अपनी काविलियत दिखाने का मौका मिलता है और इस लिंग भेद का बुरा असर केवल लड़कियों पर ही नहीं पड़ता है। जेण्डर इन्सानों का बनाया है हम और आप अगर चाहे तो स्त्री पुरूष लड़के-लड़की को परिभाषा दे सकते हैं। हमें एक ऐसे समाज की रचना कर सकते हैं जहाँ लड़की का अर्थ कमजोर होना नहीं या लड़के का मतलब क्रूर या हिंसात्मक होना नहीं है। हम सब चाहे तो एक ऐसा समाज बना सकते हैं जिसमें कार्य व्यवहार योग्यता लिंगए जाति, आदि के आधार पर न बॉटे जाए बाल्कि सब अपनी इच्छा अपने व्यवहार अपनी योग्यता के आधार पर काम कर सके।

3.4.1 विकास में लिंग का महत्व -

हम सभी को सामाजिक एवं सर्वागीण विकास के लिए दोनों की आवश्यकताओं मुद्दों और प्रभाव को समझना होगा। जेण्डर की शुरूआत किस प्रकार हुई, विकास में जेण्डर का क्या महत्व है इसको जानना हम सभी के लिए आवश्यक है स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कुछ दशकों तक औरतों की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था और परिवार तक सीमित औरतों की भूमिका सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के लिए तो महत्वपूर्ण थी लेकिन उन्हें न तो मान्यता दी जाती थी, और न महत्व। सत्तर के दशक में पश्चिम में महिला आन्दोलन के फलस्वरूप कुछ महिला विकास विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं के एक समूह ने विकासशील देशों की औरतों के अनुभवों पर ध्यान केन्द्रित किया। सन् 1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस वर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित कर दिये जाने से औरतों के मुद्दे विश्व मंच तक जा पहुँचे। महिलाओं को विकास के कार्यों में ,कीकृत करके कार्य योजना का क्रियान्वयन 1970 से 1980 तक

चला। इसे विकास में महिला कहा गया। करगैलिन मोजर ने महिलाओं के विकास की कल्पना तीन आधारों पर की।

- समानता लिंग असमानताओं के प्रति बढ़ती जागरुक ता के कारण महिलाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय मंच से यह मांग की कि जीवन के हर क्षेत्र में स्त्री पुरूष के बीच शिक्षा नौकरी, सम्प्ति वेतन आदि में समानता हो महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए कानूनों में बदलाव लाया जाय।
- गरीबी उन्मूलन समानता की धारा से जोड़ने के लिए गरीब महिलाओं को गरीबी से मुक्ति दिलाने के लिए गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को अपनाया जाए हमारे यहाँ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में महिलाओं के लिए अनेक योजनाएँ जैसे बालिका समृद्व योजना राज राजेश्वरी एवं भाग्य श्री योजना अन्नपूर्णा योजना इन कार्यक्रमों व योजनाओं के चलते उनके प्रतिदिन के कार्यों में भी सुधार हुआ लेकिन जहाँ तक संसाधनों पर उनका नियन्त्रण या उनकी अधीनता का प्रश्न है उन पर इन कार्यक्रमों को कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा।
- कार्यकुशलता1980 के दशक महिलाओं को मदों के द्वारा निष्क्रीय लाभ पाने वाली इकाई के रूप में न देखकर आर्थिक विकास की सक्रीय भागीदारी के रूप में देखा जाने लगा।70 के दशक में यहाँ तक कि महिलाओं के विकास की मुख्य धारा से जोड़ना चाहिए। उसके स्थान पर अब यह तर्क दिया जाने लगा कि आर्थिक विकास के लिए महिलाओं की आवश्यकता है। 1980 से 1990 के बीच भारत में ढ़ाचागत समायोजन कार्यक्रम की शुरूआत हुई। जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार होने के बजाए और अधिक गिरावट आयी।

सन 1980 के दशक में महिलाओं को विकास की मुख्य धारा में लाने का एक प्रयास किया गया ताकि उनको उनका हक मिल सके भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए मुख्यतः निम्न पर अधिक महत्व दिया गया –

- विकास में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करके।
- महिला समूह एवं इकाइयों को सशक्त करना।
- राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना करके (30 मार्च 1993 को)
- महिला अधिकारिता वर्ष घोषित करके (वर्ष 2001 में)
- महिलाओं में शिक्षा का प्रसार।
- परिवारिक अधिकारों में वृद्वि करके।
- महिलाओं के सुरक्षात्मक प्रावधान।

महिला समूह तथा महिलाओं द्वारा चलाई जा रही इकाइयों को सशक्त बनाना ताकि जेण्डर के प्रति महिलाऐं जागरुकहो सकें। महिलाओं के लिए जेण्डर प्रशिक्षण एक महत्वपूर्ण आयाम है। जेण्डर प्रशिक्षण नियोजकों को जेण्डर की भिन्न भिन्न भूमिकाओं को करीब से देखने का मौका मिलता है जैसे महिलाएँ

अधिक काम करते हुए भी कम वेतन पाती है आदि सूचनाओं से नियोजकों को योजना बनाने में सहायकता मिलती है। अतः जेण्डर और विकास महिलाओं और पुरूषों के उत्पादन कार्यों और प्रजनन कार्यों (सेवाएं और घर परिवार) दोनों को परखने के बाद घरेलू राजनैतिक व्यक्तिगत, व आर्थिक क्षेत्रों के सन्तुलन पर ध्यान देती है। इसलिए आवश्यक है कि हम सभी अपने निहित स्वार्थ को छोड़कर अपने समाज की प्रगति के बारे में सोचे।

3.4.2 लिंग भेद समाप्त करने हेतु कुछ प्रयास -

लिंग समाप्त करने या कम करने के लिए छोटी छोटी कोशिशों द्वारा एक बदलाव लाने का प्रयास कर सकते हैं -

- लड़के और लड़कियों को बराबर का प्यार देख रेख और सम्मान मिले।
- लड़के और लड़कियों, महिलाओं एवं पुरूषों को समान पोषण स्वास्थ्य सेवाएँ शिक्षा, रोजी, रोटी, कमाने एवं विकास के समान अवसर मिले।
- अपने स्वय के विचारों में परिवर्तन करके।
- अपने समुदायों में लिंग पक्षपात और महिलाओं के प्रति हिंसा पर बातचीत प्रारम्भ करना व उन्हें इस विषय पर बातचीत करने के लिए प्रोत्साहित करना।
- पुरूष और महिलाएं दोनों परिवार के फैसलों में बराबर की भूमिका निभाएँ।
- दोनों सामुदायिक फैसलों में भी शामिल है।
- एक साकारात्मक वातावरण तैयार करना और समुदाय के प्रभावशाली लोगों को इस अभियान में शामिल करना।
- लोगों के मन में यह सोच विकसित करना कि महिला पुरूष जीवन साथी के रूप में निजी एवं सार्वजनिक जीवन में एक समान है।
- कानूनी समानता के लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयत्न किये जाए।
- राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरूषों एवं महिलाओं के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में अवसर बढ़ाने के लिए प्रयत्न किये जाए।

ये कुछ छोटी-छोटी कोशिशें ही किसी देश के विकास में एक बड़ा बदलाव ला सकती है जब तक विश्व में महिलाओं की आधी आबादी इस त्रासदी से मुक्त होकर पुरूषों के समान अवसर मुक्त जीवन यापन नहीं करेगी विश्व विकास का सपना नितान्त अधूरा ही रहेगा, अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार हर क्षेत्र में महिलाओं को जब समान अवसर उपलब्ध होगें तभी सही एवं श्रेष्ठ विकास होगा।

3.5 आधुनिकीकरण (Modernization)

आधुनिकीकरण को परिवर्तन की एक नई प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है विश्व के अनेक देश अपनी परम्पराओं को छोड़कर आधुनिकीकरण की दिशा में काफी आगे निकट गए है वहीं भारतीय समाज में आज भी परम्परा और आधुनिकता का एक अनूठा मेल देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ हम कर्म पुनर्जन्म, परलोक, शुभ, अशुभ, के सांस्कृतिक मूल्यों पवित्रतावादी विचारों तथा जातियों के नियमों जैसी परम्पराओं में प्रभावित है। वहीं दूसरी ओर प्रौद्योगिक विकास नगरी करण, धर्म, निरपेक्षता, तथा तर्कपूर्ण व्यवहारों का भी प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा है। आज भारतीय समाज में परम्परा और आधुनिकीकरण के विचार दोनों साथसाथ चल रहे है। दोनों इस तरह से घुल मिल गए है कि उन्हें एक दूसरे से अलग करना कठिन है। आधुनिकीकरण एक ऐसा महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है जिसका प्रयोग हम प्रायः सामाजिक परिवर्तन के रूप में करते हैं। आधुनिकीकरण में सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले सभी तरह के परिवर्तनों को एवं सामाजिक मूल्यों में हाने वाले परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। इसमें सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक संगठनों में होने वाले सभी तरह के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। इसमें कृषि प्रौद्योगिकी शिक्षा, स्वास्थ्य आधुनिकीकरण, में किसी संस्कृति विशेष का प्रभाव नहीं होता है बल्कि नवीनतम एवं आधुनिकतम प्राविधियों सिद्वान्तों एवं मूल्यों की प्रधानता के कारण परिवर्तन होता है।

हम अपने दैनिक जीवन में आधुनिक और आधुनिकीकरण शब्द का प्रयोग बहुत ज्यादा करते है। आधुनिक चिन्तन,आधुनिक ज्ञान,आधुनिक शिक्षा, आधुनिक संस्कृति आदि ऐसे शब्द है जिनका प्रयोग हम किसी भी उस दशा के लिए कर देते हैं जो अपने परम्परागत रूप में भिन्न होती है। आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि यह एक ऐसी अवधारणा है जिसमें कुछ परिवर्तनशील मूल्यों का समावेश होता है। और ये परिवर्तन मूल्य विकास, सार्वभौमिक तथा तार्किकता की दिशा में होते हैं। अर्थात आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवना पिछड़े हुए समाज में प्रौद्योगिक विकास, धर्मनिरपेक्षता स्वतंत्रता एवं गतिशीलता जैसी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्वि करने लगती है।

3.5.1 आधुनिकीकरण की विशेषताऐँ-अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इसकी आधुनिकीकरण के आधारों को समझना आवश्यक है।

- नगरीकरण में वृद्वि आधुनिकीकरण की स्थिति में केवल ग्रामीण क्षेत्र नगरों के रूप में ही नहीं बदलते है बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें नगर से सम्बन्धित मनोवृत्तियाँ प्रभावपूर्ण बनने लगती है शिक्षा के प्रति लोगों में -चि बढ़ना तर्क और विवेक के आधार पर काम करना वर्तमान जीवन को अधिक महत्व देना जीवन के प्रति अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना आदि आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषताएँ है।

- प्रौद्योगिक विकास से तात्पर्य समाज में जब परिवर्तन और संचार कृषि और औद्योगिक उत्पादन तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित नयेनये अविष्कारों के द्वारा विभिन्न आवश्यकतायें पूरा किया जाता है। तब इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है।
- बढ़ती हुई गतिशीलता आधुनिकीरण की स्थिति में व्यक्तियों की समाजिक आर्थिक स्थिति जन्मजात नहीं बल्कि अर्जित होती है जिसमें व्यक्ति अपनी कुशलता और योग्यता को बढ़ाकर अपनी स्थिति को पहले से ऊँचा उठाने की कोशिश करता है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में गतिशीलता का पड़ना आधुनिकीकरण की एक मुख्य विशेषता है।
- लोकतांत्रिक मूल्यों में वृद्वि सामाजिक समानता धर्मनिरपेक्षता विचारों की स्वतंत्रता मताधिकार का प्रयोग सामाजिक कार्यों के प्रति जागरुक ता अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहना आदि कुछ लोकतात्रित मूल्य है। और इन मूल्यों की दिशा में होन वाला परिवर्तन ही आधुनिकीकरण है।
- लौकिक मूल्यों की प्रधानता आधुनुकीकरण की प्रक्रिया में लौकिक अथवा सांसारिक मूल्यों का महत्व अधिक होता है। फलतः मोक्ष की जगह सांसारिक सफलताओं को अधिक महत्व मिलने लगता है।

3.5.2 आधुनिकीकरण के कारक -

- शिक्षा शिक्षा के अभाव में कोई भी समाज आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से नहीं गुजर सकता है। शिक्षा द्वारा ज्ञान बढ़ता है और ज्ञान के द्वारा प्रौद्योगिक खोज को बढ़ावा मिलता है और ये आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के लिए नितान्त आवश्यक है।
- संचार दूरसंचार के साधन जैसे कम्प्यूटर, इंटरनेट, टेलीफोनएटी0वी0 रेडियो, ने आधुनिकीकरण को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
- राष्ट्रवादी विचारधारा आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। कि समाज में रहने वाले लोगों के बीच में राष्ट्रवादी विचारधारा को बढ़ाया जाने वाले लोगों भाईभतीजावाद, जातिवाद, या क्षेत्रीयवाद जैसी भावनाओं से ग्रस्त रहेगें। तो कोई भी मुल्क तरक्की नहीं कर सकता है। देश की तरक्की के लिए आवश्यक है कि लोगों में राष्ट्रहित की भावना सर्वोपरि हो।
- उत्तम नेतृत्व राष्ट्र में नेताओं की भूमिका अहम होती है। परम्परागत समाज आसानी से बदलने को तैयार नहीं होता है, उसके लिए एक नेता की आवश्यकता होती है जो लोगों को पुरानी व्यवस्था से आधुनिक व्यवस्था की ओर ले चले। महात्मागांधी जवाहरलाल, नेह-, मोहम्मद अली जिन्ना, ने राष्ट्र को आधुनिकीकरण की राह पर बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3.5.3 भारत में आधुनिकीकरण का प्रभाव -

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जिस तरह से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, व्यवस्था का विकास हुआ। उसे आधुनिकीकरण, में होने वाली वृद्वि का सबसे मुख्य कारण माना जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में औद्योगिकरण तथा नगरीकरण का तेजी से विकास हुआ। शिक्षा के प्रचार प्रसार से अविष्कारों और तार्किक विचारों में वृद्वि हुई सामाजिक और आर्थिक नियोजन के प्रभाव से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विचारों और व्यवहारों में तेजी से परिवर्तन होने लगा। परिवहन एवं दूर संचार के साधनों में वृद्वि होने से सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहन मिलने लगा। शहरों में रहने वाले लोगों के चिन्तन एवं मनोवृत्ति में परिवर्तन होने लगा फलस्वरूप से सभी कारकों ने आधुनिकीकरण में अपना योगदान किया। भारत में आधुनिकीकरण में अपना योगदान किया। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया निम्न क्षेत्रों में देखी जा सकती है।

- प्रौद्योगिक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में कपड़ों, खाद्य, सीमेन्ट, जूट, बिजली, के उपकरणों, दवाइयों तथा पेट्रोलियम पदार्थो के बड़ेबड़े कारखाने स्थापित हो चुके है। बढ़ते प्रौद्योगिक विकास के चलते हमारे समाज में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन होने लगे।
- समाज सुधार प्रोत्साहन आधुनिकीकरण नई मनोवृत्तियों के फलस्वरूप अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों का प्रभाव तेजी से कम होने लगा। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं का शोषण, पर्दाप्रथा, आदि का विरोध बढ़ने लगा आधुनिकता के प्रभाव से भारत में एक ऐसी सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई जो समानता, सामाजिक न्याय, और स्वतंत्रता, के मूल्यों पर आधारित है।
- रहन सहन के स्तर में सुधार विभिन्न प्रकार के विकास कार्यक्रमों के परिणामस्वरूप जीवन के सभी पक्षों में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला। लोगों की वेशभूषा, रहन सहनएखान पान में व्यापक सुधार हुआ है साथ ही मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन हुआ जैसे पहले लोगों लड़कियों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते थे लेकिन आज लोगों की मनोवृत्ति बदल चुकी है अब लोग लड़कियों की (लड़कों के बराबर) पढ़ाई पर भी ध्यान देने लगें है।
- कृषि का आधुनिकीकरण गाँवों में कृषि की नई तकनीकों जैसे पम्पिंग सेट, कल्टीवेटर, टैक्टर, थ्रेशर आदि का प्रयोग ज्यादातर किसान कर रहे है अनेक कृषि दर्शन से सम्बन्धित प्रोग्राम दूरदर्शन पर भी रोज दिखाये जा रहे है। अनेक कृषि दर्शन से सम्बन्धित प्रोग्राम दूरदर्शन पर भी रोज दिखाये जा रहे हैं पहले की अपेक्षा आज का किसान अपनी फसलों और पशुओं दोनों के लिए ही जागरुकहै। कृषि से आधुनिकीकरण से गाँव और शहरोकी दूरी बहुत कम हो गई है।

- शिक्षा शिक्षा के प्रति हमारी मनोवृत्तियों में परिवर्तन हुआ है आज शिक्षा के स्थिति के प्रति हमारी मनोवृत्तियो में परिवर्तन हुआ है आज शिक्षा के स्थिति ऋण की व्यवस्था सरकार द्वारा की गई हो आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद आज माता पिता बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहते है।
- लोकतान्त्रिक नेतृत्व आज सभी जाति के लोगों को आर्थिक स्थिति, धर्म, लिंग भेदभाव, के बिना राजनीति में हिस्सा ले रहे है जिन जमीदारों के पास परम्परागत रूप से नेतृत्व के अधिकार थे उनकी शक्ति सरचना वाले इस तरह के परिवर्तन ने लोगों की मनोवृत्तियाँ बदल दी जो आधुनिकीकरण की दिशा में एक सहायक कदम है।
- सामाजिक मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में परिवर्तन मूल्यों में परिवर्तन के साथ साथ विभिन्न वर्गो की मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन हुए है। अब लोग भाग्य की अपेक्षा श्रम को अधिक महत्व देने लगे हैं। धार्मिक कदृरता के स्थान पर धर्म निरपेक्षका का भाव लोगों में बढ़ा है गतिशीलता (परिवर्तनशीलता) ही जीवन है जैसे विचारों में वृद्वि हुई है लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरुकहै और ये परिवर्तन आधुनिकीकरण की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि कोई समाज कितना भी आधुनिक क्यों न हो कुछ न कुछ नई समस्याएँ जन्म लेती रहती है और हम उनका निराकरण कर या उसमें परिवर्तन करके आगे की ओर बढ़ते रहते हैं।

3.6 नगरीकरण (Urbanization)

सभी तरह के सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में नगरीकरण की प्रक्रिया सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है। अन्य देशों की तुलना में हमारे यहाँ नगरीकरण की प्रक्रिया का विकास काफी देर से शुरुहुआ पिछले कुछ दशकों में जैसे परिवहन और दूर संचार के साधनों का विकास हुआ और शहरों में बड़ेबड़े कारखानों और उद्योग स्थापित होने लगे वैसे लोग गाँवों से पलायन कर शहर की ओर बढ़ने लगे। लोगों को रोजगार के अवसर मिलने लगे वैसेवैसे नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्वि होती गई और हमारी सामाजिक संस्थाओं सामाजिक संरचना, मनोवृत्तियों अभिवृत्तियों, तथा व्यवहार के ढंग एवं जीवन स्तर में परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे। इसीलिए नगरीकरण की प्रक्रिया को सामाजिक परिवर्तन का मुख्य स्त्रोत माना जाता है। नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नगरों के क्षेत्रों तथा नगरीय जीवनशैली का विस्तार होता है। नगरीकरण की प्रक्रिया का औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में वृद्वि होती जाती है नगरीकरण की प्रक्रिया में भी वृद्वि होती जाती है। इसमें जनसंख्या का गाँवों से नगरों की ओर बढ़ना या नगरीय मनोवृत्तियों का प्रभाव अधिक होना ही नहीं है बल्कि स्थान परिवर्तन के बिना भी लोगों की आदतों और व्यवहार के तरीकों में जब नगरीय विशेषताओं का समावेश होने लगता है तो ऐसी स्थिति नगरीकरण की प्रक्रिया की ओर संकेत करती है। जब किसी समाज में नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्वि होने लगती है। तो धीरेधीरे नगरों से दूर स्थानों पर रहने वाले लोग भी इससे प्रभावित होने लगते हैं।

3.6.1भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया -भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया बीसवी शताब्दी से प्रारम्भ हुई 1951 के बाद भारत के औद्योगिक विकास में तीव्र गति से वृद्वि हुई। सिर्फ औद्योगिक विकास के कारण ही नगरों का विकास बल्कि शिक्षा के केन्द्रो, राजनीतिक करणों, धार्मिक केन्द्रों के रूप में भी हुआ है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जहाँ भारत में नगरों की कुल जनसंख्या जहाँ 6 करोड़ पहुँच रही है दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई, आदि नगरों की जनसंख्या (दुनिया के बहुत से देशों की कुल जनसंख्या) बहुत अधिक है। भारत में अंग्रेजों के शासन काल से पहले गाँवों को नगरों से जोड़ने के लिए सड़कों का अभाव होने के कारण व परिवहन सुविधाऐं उपलब्ध न होने के कारण नगरों का अधिक विस्तार नहीं हो सका। बीसवी शताब्दी के शुरु में जब बसों,रेलों व एक स्थान से दूसरे स्थान पर जोन की सुविधाएँ मिलने लगी तो ग्रामीण जनसंख्या का नगरों से सम्पर्क बढ़ने लगा। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जब भारत में बड़ेबड़े उद्योगों की स्थापना शुरुहुई। तो रोजगार की तलाश में लोग नगरों की ओर आकर्षित हुए। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया बीसवी शताब्दी में स्वतन्त्रता प्राप्ति के औद्योगिक विकास के फलस्वरूप हुई।

3.6.2 नगरीकरण की प्रक्रिया में सहायक कारक -हमारे यहाँ स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले नगरों के विकास में अनुकूल भौगोलिक स्थिति, धार्मिक विश्वास, यातायात, के साधनों की अधिक भूमिका रही और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक यातायात एवं संचार के साधन राजनीतिक दशाएँ ग्रामीण राजनीतिक आदि ऐसी स्थिति है जिनका नगरीकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने विशेष योगदान है।

- ❖ जनसंख्या का बढ़ाना स्वतन्त्रता से पहले भारत की लगभग 86 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती थी लेकिन स्वतन्त्रता के बाद जब हमारे देश की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्वि हुई तो गाँवों में खेतों का बटवारा बढ़ने लगा और आर्थिक परेशानी से निपटने के लिए रोजगार की तलाश में लोगों ने शहरों की ओर जाना शुरुकर दिया।

- ❖ आवागमन एवं संचार के साधनों में वृद्वि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात गाँवों को नगरों से जोड़ने के लिए सड़कों का निर्माण हुआ इक्कीसवी शताब्दी के शुरुमें आवगमन और संचार के साधनों में काफी वृद्वि हुई नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों की दूरी काफी कम हो गई यातायात की सुविधाओं के चलते कृषि क्षेत्र में काफी सुधार हुए अब किसानों को उनकी फसल से अच्छे दाम मिलने लगे।

- ❖ औद्योगिक विकास की प्रक्रिया के होने से गाँवों के कुटीर उद्योग और हस्तशिप धीरेधीरे खत्म होने की कगार पर पहुँच गए और लोगों में बेरोजगारी बढ़ गई इधर नगरों में उद्योगों के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता होने से ग्रामीण जनसंख्या का बड़ा हिस्सा नगरों की ओर जाने लगा। और नगरीय जनसंख्या में वृद्वि होने लगी।

- ❖ राजनीतिक दशाएँ जो नगर राजनीतिक क्रियाओं को केन्द्र होते हैं उन नगरों में विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं आज दिल्ली में नगरीकरण की प्रक्रिया काफी तेज है विभिन्न प्रदेशों की राजधानी की तुलना में नगरीकरण की प्रक्रिया काफी तेज है।

- ❖ ग्रामीण क्षेत्रों में राजनीतिक गुटबन्दी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों से होने वाले फायदे के चलते गाँवों में भी काफी राजनीति होने लगी है जिसकी वजह से गाँवों में संघर्षो और तनावों में भी वृद्वि हुई है। फलस्वरूप गाँवों में रहने वाले बहुत से लोग अपने जीवन को असुरक्षित समझकर नगरों में आकर रहने लगते है।

- ❖ नागरिक सुविधाएँ नगरों में शिक्षा पानी, बिजली, स्वास्थ्य, एवं अन्य सुविधाओं, के चलते गाँवों छोटी जगहों पर रहने वाले लोगों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं। नगरीकरण की प्रक्रिया में केवल राजनीतिक धार्मिक औद्योगिक शिक्षा, आदि ही नहीं सहायक होते हैं बल्कि वैयक्तिक कुशलता श्रम विभाजन आर्थिक सुरक्षा आदि कारक भी नगरीकरण की प्रक्रिया में होने वाले वृद्वि में सहायक होते हैं।

3.6.3 सामाजिक परिवर्तन में नगरीकरण की भूमिका -नगरीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है नगरीकरण की प्रक्रिया ने हमारे सामाजिक जीवन यहाँ अनेक उपयोगी परिवर्तन किये है। वहीं अनेक समस्याओं में वृद्वि भी हुई है। सामाजिक परिवर्तन नगरीकरण की भूमिका निम्न रुपों में देखी जा सकती है।

- सामाजिक जीवन पर प्रभाव नगरीकरण की प्रक्रिया से भूमि की कमी मंहगे आवास शोर गुल प्रदूषण, आदि अनेक सामाजिक समस्याएँ बढ़ गई है। परिवारिक विघटन की समस्या तेजी से बढ़ी है। मनोरजंन के नाम पर अनैतिकता, मध्यपान, नशीले पदार्थो का सेवन, आदि सामाजिक जीवन को विघटित करती है। नगरीकरण की प्रक्रिया उन अभिवृत्तियों से अधिक सम्बन्धित है जिसमें सामाजिक कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।
- परिवार पर प्रभाव पहले हमारे यहाँ संयुक्त परिवार व्यवस्था का अधिक चलन था तीन चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ घर में रहते थे। नगरीकरण के कारण लोग रोजगार की तलाश में शहर में बसना शुरुकिया शहरों में कम जगह और महंगाई के चलते सभी सदस्यों का एक साथ रहना सम्भव नहीं रह

गया। फलतः परिवार के सदस्यों के परिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन आया। भारत की परम्परागत परिवार व्यवव्था की संरचना और कार्यों में परिवर्तन लाने में नगरीकरण का मुख्य योगदान है।

- महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने में सराहनीय योगदान दिया है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में दिया है। शिक्षा, चिकित्सा, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में महिलाओं की रुचि बढ़ रही है। जिसके फलस्वरूप दहेज प्रथा, बाल विवाह व महिलाओं, पर हो रहे शोषण, में कमी आयी आज हमारे देश में राजनीति के कई महत्वपूर्ण पदों पर महिलाएं विराजमान है।
- ग्राम्य जीवन पर प्रभाव नगरीकरण के फलस्वरूप गाँवों में मुद्रा का चलन बढ़ गया जजमानी प्रथा लगभग समाप्त हो गई कृषि में नयेनये उपकरण प्रयोग किये जाने लगे लोगों के रहन सहन के तरीकों में परिवर्तन आने लगा लोगों रुचियों और अभिवृत्तियों में परिवर्तन स्पष्ट होने लगे आज गाँवों में रेडियो टेलीफोन मोबाइल आदि सेवाओं का बोलबाला है।
- राजनीतिक जीवन से हम अपने सामाजिक जीवन को अलग नहीं कर सकते हैं। यातायात एवं संचार सुविधाओं के फलस्वरूप समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं द्वारा दिन प्रतिदिन की होने वाली घटनाओं की जानकारी प्राप्त होने लगी। लोगों में राजनीतिक चेतना इतनी जागृत हो गई कि जनसाधारण की उपेक्षा कर शासन चलाना सरकार के लिए कठिन हो गया।
- आर्थिक जीवन पर प्रभाव नगरीकरण के विकास से पहले किसान को अपनी फसल का पूरापूरा दाम नहीं मिल पाता था नगरीकरण की प्रक्रिया के बाद बाजारों एवं यातायात की सुविधा के चलते उन्हें अपनी उपज का उचित मूल्य मिलने लगा नगरीकरण के प्रभाव से लोगों को रहन सहन का स्तर ऊचा उठाने में मदद मिली।
- जाति व्यवस्था का प्रभाव पहले गाँवों में जाति के आधार पर व्यवसाय की व्यवस्था थी लेकिन नगरीकरण की प्रक्रिया ने विभिन्न जातियों के बीच मतभेद को बहुत कम कर दिया। नगरों में एक ही व्यवसाय और एक ही स्थान पर विभिन्न जातियों के लोगों द्वारा साथ साथ काम करने पर ऊच नीच की भावना बहुत कम हो गई। नगरीकरण की प्रक्रिया में लोगों की योग्यता, और कुशलता को विशेष महत्व दिया है।
- धार्मिक जीवन पर प्रभाव नगरीकरण की प्रक्रिया अंधविश्वासों -ढ़ियों धार्मिक कट्टरता आदि को अधिक नहीं देती है शिक्षा के वैज्ञानिक प्रभाव से लोगों की मनोवृत्तियाँ, विश्वास मूल्य आदि बदलने लगे है। गाँवों की अपेक्षा नगरों में धर्म निरपेक्षता का भाव अधिक देखने को मिलता है।

3.6.4 नगरों की ज्वलंत समस्याएँ -

- नगरों की सबसे बड़ी समस्या वहाँ की सघन जनसंख्या है।
- जनाधिक्य के कारण आवास की गम्भीर समस्या है।
- परिवहन की व्यस्तता व वाहनों की भीड़ के कारण अधिक दुर्घटनाएँ व आने जाने में समय अधिक लगता है।

- नगरों की लगभग 3035 प्रतिशत जनसंख्या मलिन बस्तियों में रहती है में बस्तियाँ जुओं के अड्डों एवं अपराधियों की शरण स्थली बनती जा रही है। एवं अपराधियों की शरण स्थली बनती जा रही है।
- नगर प्रशासन एवं प्रबन्धन में भ्रष्टाचार के चलते इनका उचित विकास नहीं हो पा रहा है।
- जनसंख्या की अधिकतम व वाहनों एवं फैक्ट्रियों से निकलते धुएँ के कारण पर्यावरण काफी दूषित रहता है। नगरों की नदियों गन्दे नाले के रूप में बदलती जा रही है। प्रदूषण के कारण लोगों में अनेक बीमारियों जैसे अस्थमा टी0वी0 कैंसर आदि फैलती जा रही है।

3.7 सारांश (Summary)

इस इकाई के अध्ययन के द्वारा विभिन्न सामाजिक समस्याओं जनसंख्या विस्फोट लिंग पक्षपात (भेद) नगरीकरण आधुनिकीकरण की विशेषताओं, समस्याओं तथा इन समस्याओं को दूर करने के उपायों आदि के विषय में आपने जानकारी प्राप्त की। निवारण हेतु विभिन्न उपायों को अपनाकर हम इन समस्याओं को काफी हद तक दूर कर सकते हैं। इसके लिए हमें आपको और सबकोमिलकर (प्रयास) करना होगा जिससे हम अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को एक स्वच्छ औरअच्छा वातावरण दे सके। उनके भविष्य को एक नई दिशा प्रदान कर सके। भारत आज जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है। उससे हतोत्तसाहित या निराश होने की आवश्यकता नहीं है बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि नए उत्साह के साथ कुछ ठोस कदम उठायें जाए।

3.8 शब्दावली (Vocabulary)

- भ्रान्तियाँ:गलत फहमी
- उन्मूलन:निवारण
- सशक्त: मजबूत
- दीर्घकालीन:लम्बे समय तक
- परिपक्वता:शरीरिक एवं मानसिक रूप से विकसित
- स्वावलम्बी:आत्म निर्भरता
- आवागमन: आनेजाने के लिए यातायात
- ग्राम्य: गॉव
- जनाधिक्य: अधिक जनसंख्या

3.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-assessment questions)

सत्य/असत्य बताइये -

1) नगरीकरण की प्रक्रिया के जाति नियमों को कमजोर किया है। (सत्य/असत्य)
2) नगरीकरण की प्रक्रिया व्यक्तिगत योग्यता और कुशलता को अधिक महत्व नहीं देती है। (सत्य/असत्य)
3) औद्योगिकरण के बिना नगरीकरण सम्भव नहीं होता है। (सत्य/असत्य)
4) नगरीयता जीवन की एक विशेष विधि है। (सत्य/असत्य)
5) प्रदूषण नगरीकरण की एक मुख्य समस्या है। (सत्य/असत्य)
6) आधुनिकीकरण की मुख्य विशेषता नगरीकरण में वृद्वि हैं। (सत्य/असत्य)
7) भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया केवल नगरों तक सीमित है। (सत्य/असत्य)
8) नगरीय समुदाय में सभी लोगों के विचार धर्म निरपेक्ष तथा तार्किक होते हैं। (सत्य/असत्य)
9) आधुनिकीकरण का प्रौद्योगिक विकास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। (सत्य/असत्य)
10) शिक्षा, संचार, उत्तम नेतृत्व आधुनिकीकरण, के मुख्य कारक है। (सत्य/असत्य)
11) पूरे विश्व में भारत की जनसंख्या सर्वाधिक है। (सत्य/असत्य)
12) भारत में मृत्यु दर का कम होना जनसंख्या विस्फोट का एक मुख्य कारण है। (सत्य/असत्य)
13) भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किमी 359 लोग रहते हैं। (सत्य/असत्य)
14) भारत में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषो की जनसंख्या अधिक है। (सत्य/असत्य)
15) भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है। (सत्य/असत्य)

बहु विकल्पीय प्रश्न (किसी एक पर सही का निशान लगाइये)

(1) भारत का जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में

(अ) पहला स्थान है (ब) तीसरा स्थान है।

(स) दूसरा स्थान है (द) छठा स्थान है।

(2) भारत में जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग किमी कितना है।

(अ) 324 (स) 37

(ब) 359 (द) 216

(3) जनगणना कितने वर्ष बाद की जाती है।

(अ) 8 वर्ष बाद (स) 10 वर्ष बाद

(ब) 11 वर्ष बाद (द) 9 वर्ष बाद

(4) भारत में जनाधिक्य का मुख्य कारण

(अ) अशिक्षा (ब) मृत्यु दर में कमी

(ब) गरीबी (द) उपयुक्त सभी

(5) किसी देश में जनसंख्या की उस अवस्था को क्या कहते है जिसमें जनसंख्या की आवश्यकतानुसार खाद्य सामग्री का अभाव हो

(अ) जनाधिक्य (स) गरीबी

(ब) बेरोजगारी (द) खाद्य संकट

(6) निम्न में से कौन एक नगरीकरण से सम्बन्धित गंभीर समस्या है।

(अ) निम्न जीवन स्तर (ब) गन्दी बस्तियाँ

(स) गाँवों में जाति संघर्ष (द) औपचारिक सम्बन्धों में वृद्वि

(7) निम्न में से किस को नगर कहा जायेगा।

(अ) जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक हो (स) जहाँ आधुनिकीकरण के लक्षण हो

(ब) जहाँ जाति व्यवस्था कमजोर हो (द) जहाँ 75 प्रतिशत से अधिक लोगबगैर कृषि व्यवसाय करते हो

(8) निम्न में से नगरीकरण का लक्षण क्या है।

(अ) ग्रामीण क्षेत्रों का नगरीय क्षेत्रों में बदलना (स) नगरीय मनोवृत्तियों में वृद्वि होना

(ब) व्यावसायिक गतिशीलता बढ़ना (द) औपचारिक सम्बन्धों में वृद्वि होना

(9) निम्न में से परिवार की कौन सी विशेषता नगरीकरण से प्रभावित है।

(अ) मुखिया का अधिकार (स) आयु पर आधारित स्तरीकरण

(ब) निम्न जीवन स्तर (द) वैयक्तिक स्वतन्त्रता

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type question)

1) लिंग भेद से आप क्या समझते हैं।
2) विकास में लिंग का क्या महत्व है ?
3) मोजर ने महिलाओं के विकास की कल्पना किस आधार पर की?
4) भारत में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए किन प्रयासों पर विशेष बल दिया।
5) लिंग भेद (पक्षपात) समाप्त करने हेतु आप अपने कुछ सुझाव दीजिए।
6) आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
7) प्रौद्योगिक विकास तथा आधुनिकीकरण में क्या सम्बन्ध है?
8) आधुनिकीकरण की दो मुख्य विशेषताएँ लिखिये।
9) नगरीकरण की प्रक्रिया किस प्रकार आधुनिकीकरण में वृद्वि करती है।
10) सामाजिक मनोवृत्तियों एवं मूल्यों का आधुनिकीकरण का क्या प्रभाव पड़ता है?
11) आधुनिकीकरण के मुख्य कारकों का वर्णन कीजिए।
12) भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
13) सामाजिक जीवन में नगरीकरण की क्या भूमिका है?
14) नगरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप नगरों की ज्वलंत समस्याएँ क्या है ?
15) जनसंख्या विस्फोट के क्या कारण है ?

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- डा0 अरुणकुमार सिंह; समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा; प्रकाशन मोतीलाल बनारसीदास नई दिल्ली ।
- डाँ0 राजेन्द्र नाथ मुकर्जी, डा0 भरत अग्रवाल; सामाजिक समस्याएँ; विवेक प्रकाशन दिल्ली।

इकाई 4 सामाजिक शोषण, बाल श्रम, सामाजिक एवं घरेलू हिंसा, कार्यस्थलीय शोषण, सामाजिक समस्याओं के विभिन्न समाधान (Social Exploitation, Child Labor, Social and Domestic Violence, Workplace Exploitation, Various solutions of Social Problems)

इकाई संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सामाजिक शोषण

4.4 बाल श्रम

4.5 बाल श्रम के कारण

4.5.1 बाल श्रम का प्रभाव

4.5.2 बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु सुझाव

4.6 सामाजिक घरेलू हिंसा

4.6.1 सामाजिक हिंसा

4.6.2 घरेलू हिंसा

4.7 कार्य स्थल पर शोषण

4.8 सामाजिक समस्याओं के विभिन्न समाधान

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

समाज में जहाँ एक ओर नियंत्रण के अनेक साधन जैसे- कानून,प्रथा, परम्परा, तथा नैतिक नियमों के द्वारा व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन को संगठित रखने का प्रत्यत्न किया जाता है वहीं दूसरी ओर अनेक व्यक्ति समाज के सामने अनेक गम्भीर समस्यायेंउत्पन्न करते रहते हैं। मनुष्य एक जिज्ञासु प्राणी है उसके समक्ष अनेक समस्यायें आती रहती हैं और वह उनका प्रभावपूर्ण समाधान खोजने की कोशिश करता रहता है समस्याओं का प्रभावपूर्ण समाधान खोजने की वैज्ञानिक वधि के रूप में हम सर्वप्रथम एक विशेष घटना या प्रकृति को समझने का प्रयत्न करते हैं। तत्पश्चात् उस घटना का अनेक दशाओं से सह सम्बन्ध स्थापित करके किसी निष्कर्ष तक पहुॅचने की कोशिश करते हैं कि कोई विशेष घटना किन कारणों से घटित हुई है और फिर हम उस समस्या के समाधान का प्रयास करते हैं। समस्याओं की प्राथमिकता समय के अनुसार बदलती रहती है जैसे कुछ दशकों पहले हमारे यहाँ पर्दा प्रथा, बाल विवाह की प्रमुख सामाजिक समस्या थी लेकिन आज भ्रष्ट्राचार, बेरोजगारी, निर्धनता आदि प्रमुख सामाजिक समस्या हैं और इन समस्याओं से निपटने के लिए व इनके समाधान के लिए विभिन्न सरकारी व गैर सरकारी संस्थाएँ निरन्तर कार्य कर रही हैं और जब हम इन समस्याओं का समाधान करते हैं तो कुछ समय बाद फिर से नई समस्यायें जन्म लेती हैऔर ये क्रम चलता रहता है।

4.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- ❖ सामाजिक शोषण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ❖ बाल श्रम के कारण एवं निवारण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ❖ सामाजिक एवं घरेलू हिंसा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ❖ विभिन्न कार्यस्थलों पर हाने वाले शोषण के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.3 सामाजिक शोषण (Social abuse)

आर्थिक विकास होने से हमेशाऐसा नही होता है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न एवं सुखी हो जाए। कुछ लोग आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाते हैंतोकुछ लोगों की आर्थिक स्थिति में नाममात्र का सुधार होता है, फलस्वरूप समाज दो वर्गो में बँट जाता है, आर्थिक रूप से सबल वर्ग और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग। पहला वर्ग दूसरे वर्ग पर शोषण करना प्रारम्भ कर देता है। चाहे कृषि हो,उद्योग स्वास्थ्य हो या शिक्षा। आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोरव्यक्ति पर अनावश्यक रूप से दबाव डालकर उनसे मनचाहा काम कराकर उनका शोषण करते है एवं अपनी सम्पन्नता को और मजबूत करते है और इस कारण समाज में आर्थिक विषमता उत्पन्न होती है। सामाजिक शोषण की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही चली आ रही है कभी उच्च वर्ग द्वारा निम्न जाति का शोषण कभीपुरूषों द्वारा महिलाओं का शोषण यामालिकों द्वारा श्रमिकों का शोषण हमें देखने को मिलता है। हमारे समाज में प्रायः सामाजिक शोषण निम्न रुपों में देखने को मिलता है।

- **श्रम का शोषण-** कई बार मिलों कारखानों में काम करने वाले व्यक्यिों के कार्य के घण्टे निश्चित नहीं होते हैं। किन परिस्थितियों में काम करना है यह भी निश्चित नही होता है कई बार महिलाओं की मजदूरी भी पुरूषों से कम होती है जबकि वो बराबर उन्हीं के जितना काम करती है। भारतीय श्रम कानून के अर्न्तगत किसी श्रमिक से यदि आठ घण्टे से ज्यादा कामलिया जाता है औरमजदूरी नही दी जाती है तो वह शोषण है। काम के ज्यादा घण्टे, कम मजदूरी, कार्य के बीच में विश्राम न देना,कठिन परिस्थितियों में कार्य करवाना आदि के द्वारा उनके श्रम का शोषण किया जाता है।
- **यौन शोषण-** यौन शोषण का शिकार सबसे ज्यादा महिलाऐं होती है। मजबूरी, पेट की आग, अज्ञानता, लाचारी, गरीबी आदि का फायदाइनके नियोक्ताओं द्वारा पूर्ण रूप से उठाया जाता है। बहुत जल्दी सफलता की सीढ़ी चढ़ना, बहुत जल्दीज्यादा पैसे कमाने की लालसा के कारण अधिकांश महिलाएँ यौन शोषण का शिकार बनती हैं।
- **जातिगत शोषण-** उच्च जाति द्वारा निम्न जाति वर्ग का शोषण प्राचीन समय से चला आ रहा है। प्रत्येक जाति अपनी जाति के हितों की चिन्ता करती है और उन हितों की पूर्ति के लिए दूसरे जाति के हितों की बलि देने से भी नही हिचकिचाती है।
- **बाल श्रम का शोषण-** माचिस उद्योग, चूड़ी उद्योग, कालीन उद्योग आतिशबाजी उद्योग आदि में अधिकांश बाल श्रमिक काम करते हैं। जहाँ इनसे काम ज्यादा लिया जाता है और पैसा बहुत कम दिया जाता है कानून में लचीलापन सरकारी प्रयासों में कमी के चलते बाल श्रम का सर्वाधिक शोषण होता रहा है।

- **महिलाओं का शोषण-** जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं ने या तो आर्थिक मजबूरी के कारण या अपने पैर पर खड़े होनेऔर स्वावलंबी बनने की इच्छा के कारण रोजगार में आना शुरु किया।सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव विकृत्तियाँ भी बढ़ी और उन विकृत्तियों का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण शिकार होती रही महिलाएँ। पुरूषों के समान काम करने पर पुरूषों से कम पारिश्रमिक देकर उनका सदियों से शोषण होता रहा है। घर हो या बाहर सबसे जयादा शोषण की शिकार महिलाएँ ही होती हैं। घर में भी महिलाओं द्वारा महिलाओं पर किया जाने वाला अत्याचार कोई नई बात नहीं है। अज्ञानता, संवेगात्मक भावुकता, परिवार की बदनामी का डर आदि के कारण ये शोषण का शिकार होती रही हैं। अपहरण कर लड़कियों का शोषण किसी स्थान पर सामूहिक रूप से बलात्कार की खबरें आये दिन सुनने पढ़ने को मिलती है और फिर पुलिस द्वारा ज्यादा खोजबीन होने पर उसे किसी स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया जाता है और उसकी आगे की पूरी जिन्दगी अन्धकार मय हो जाती है औरवह समाज से घृणा करने लगती है।
- **जेल में कैदियों का शोषण-**कुछ विषम सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्ति को अपराधी बना देती हैं और वे अपराध करने को मजबूर हो जाते हैं। और सजा मिलने पर जेल में इनकी जिन्दगी और बदतर हो जाती है जहाँ इनका शारीरिक,मानसिक शोषण और यौन शोषण भी होता है। देश की पहली महिला आई0पी0,स0 किरण बेदी ने तिहाड़ जेल में रह रहे कैदियों की दुर्दशा सुधारने के लिए ठोस कदम उठाये।
- बालकों का शोषण- छोटे बच्चों को बहला फुसला उनको उठा ले जाते हैं और उन्हें डरा धमका कार अपाहिज बना कर शिक्षा या पौकेट मारी जैसे कार्य सिखाये जाते हैं और उन्हे इससे जो भी पैसा मिलता है उसे गैंगके मुखिया को सौंपदेते हैं वेजब निकल भागने की कोशिश करते हैं तो पकड़े जाने पर इन्हे घोर यातनाएँ दी जाती हैं और वापस इनसे फिर वही कार्य करवाते हैं यहा इनकाशारीरिक और मानसिक दोनोंहीतरह का शोषण होता है।

4.4 बाल श्रम (Child labour)

उद्योग कारखाने होटल, ढॉवे एवं घरों में काम करने वाले 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को बाल श्रमिक कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 15 वर्ष या उससे कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1966 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय इकरारनामा सम्मेलन में आहान किया कि प्रत्येक देश एक ऐसी आयु सीमा निर्धारित करें जिससे कम आयु के श्रमिकों की नियुक्ति प्रतिबंधित व दण्डनीय हो अमेरिकी कानून के मुताबिक 12 वर्ष से कम आयु तथा इग्लैण्ड व अन्य युरोपीय देशों में 13 वर्ष से कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखा है। भारतीय संविधान के अनुसार 9 से 14 वर्ष के बीच के बालक

बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं। बाल श्रमिक के अन्तर्गत आते हैं। पूंजीवादी वर्ग द्वारा मुनाफा अधिक कमाने के उद्देश्य से बच्चों का सामाजिक व अमानवीय शोषण किया गया तब बाल श्रम का उदभव हुआ। आज भारत में बाल श्रमिकों की संख्या घटने के बजाय, बढ़ रही है। इन श्रमिकों से ज्यादा से ज्यादा काम लिया जाता है और मजदूरी बहुत कम दी जाती है। भारत में सकल राष्ट्रीय उत्पादन में श्रमिकों का लगभग 20 प्रतिशत योगदान है जिससे लगभग 7 प्रतिशत योगदान बाल श्रमिकों का है विश्व में बाल श्रमिकों की संख्या सबसे ज्यादा भारत में है। मानव श्रम का सही मूल्य न देकर अधिक काम लेने की पूँजीवादी प्रवृत्ति की देन है। बाल श्रमिक कीइस प्रवृति को चार सिद्धान्तों में बॉटा गया है।

- **नव पुरातनवादी सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बच्चों को उपयोग व निवेश की सामग्री मानकर उनके श्रम का उपयोग आय बढ़ाने हेतु किया जाता है।
- **सामाजीकरण का सिद्धान्त-** इसके अन्तर्गत बाल श्रम का उपयोग पारिवारिक प्रक्रिया के अन्तर्गत किया जाता है कृषि कार्य घरेलू उद्योग आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।
- **मार्क्सवादी सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार बाल श्रम पूँजीवादी व्यवस्था का अभिन्न अंग है।नई तकनीक सस्ते व अकुशल मजदूरों की माँग करती है और बेरोजगारी के कारण बच्चे भी औद्योगिक श्रमिकों के संचित दल का हिस्सा बन जाते हैं।

4.5 बाल श्रम के कारण (Reasons of child labor)

भारत में बाल श्रम के निम्न कारण हैं।

- निर्धनता- निर्धनता बाल श्रम का सबसे मुख्य कारण है। दो समय की रोटी का जुगाड़ करने के लिए अपना बचपन बेचना पड़ता है। फलतः ये विभिन्न स्थानों पर काम करकेइन्हें अपना व परिवार का पेट पालने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

- जनसंख्या की अधिकता- भारत में लगातार हो रहे जनसंख्या वृद्धि बाल श्रम के लिए उत्तरदायी है।कृषि भूमि का अभाव होना और जनसंख्या में लगातार वृद्धि होने सेआवश्यकताओं का पूरा करना कठिन हो रहा है और ऐसी स्थिति में अपनी जरूरीआवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बच्चों को भी काम पर लगना पड़ता है।

- सस्ता श्रम- श्रम का सस्ता साधन होने के कारण अधिकांश लोग बाल श्रमिकों को रखना पसन्द करतेहैंक्योंकि इन्हें वेतन कम देना पड़ता है साथ ही इन पर हुक्म चलाना आसान होता है। इनका अपना कोई संगठन नहीं होता है और न ही ये शोषण के खिलाफ आवाज उठा पातेहैं।

- शिक्षा का अभाव- जब बच्चा किन्ही कारणों से (सामाजिक आर्थिक आदि) आशिक्षित रह जाता है तो स्वाभाविक है कि उसे अपना पेट भरने के लिए कुछ न कुछ काम तो करना ही है। ज्यादातर बाल

श्रमिकहोटलों,ढावों, आतिशबाजी, मचिस उद्योग कांच उद्योग, पत्थर की खानों में तथा गलीचा उद्योग आदि में काम करते हैं।

- सख्त कानून न होना- सख्त कानून न होना भी बाल श्रमिकों की वृद्धि का कारण है यदि बाल श्रमिक रखने वालों के प्रति कड़ी कार्यवाही की जाए और सख्ती से इन कानूनों का पालन किया जाए तो निश्चित ही इनकी संख्या में कमी आयेगी।

4.5.1 बाल श्रम का प्रभाव-

हमारे देश में बाल श्रमिकों की संख्या सर्वाधिक है निश्चित रूप से इनका प्रभाव निम्न रुपों में पड़ता है।

- विदेशी मुद्रा की प्राप्ति में सहायक- बाल श्रमिक श्रम का सस्ता साधन है। इनकी संख्या अधिक होने के कारण देश को करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।
- अपराधों में कमी- हमारे देश में बड़ी संख्या में बाल श्रमिक कार्य कर रहे हैं यदि ये कुछ काम नही करेगें तो इनमें आपराधिक प्रवृत्तियाँ बढ़ेगी। काम इन्हें अपराध की ओर जाने से रोकता है।
- शारीरिक एवं मानिसिक विकास में बाधा छोटी सी उम्र में ज्यादा काम के बोझ से इनका न तो शारीरिक विकास ठीक ढ़ंग से हो पाता है और न ही मानसिक विकास शिक्षा व खेलने की उम्र में ये अपनी दो वक्त की रोटी के लिए पूरे दिन काम पर लगे रहते हैं।
- स्वास्थ्य पर प्रभाव- बाल श्रमिकों कोमशीनों के भयंकर शोर ज्यादा तापमान या एक स्थिति खड़े रहना, या रसायनों के साथ काम करने पर इनके फेफडें आंखों पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है साथ ही ये बहरापन असीमित कमरदर्द, जोड़ों का दर्द आदि कई शिकार होजाते हैं और इनका स्वास्थ्य गिरता चला जाता है। यद्यपि बाल श्रम का प्रभाव बालक एवं समाज दोनों के लिए हानिकारक है बाल श्रम से भले ही देश को विदेशी मुद्रा हो रही हो लेकिन इनका भविष्य अंधकारमय है।

4.5.2 बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु सुझाव -

- जनसंख्या पर नियंन्त्रण- बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने के लिए हमें जनसंख्या नियंत्रण के उपायों पर ध्यान देना होगा।
- गरीबी- गरीबी कम करके इनकी संख्या में कभी लाई जा सकती है भारत की लगभग 32 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गरीबी रेखाके नीचे जीवन यापन कर रही है इनकी गरीबी इन्हें बाल श्रमिक बनने पर मजबूर कर देती है।

- शिक्षा का प्रसार करके- देश में शिक्षा का जितना प्रचार प्रसार होगा, बाल श्रमिकों की संख्या में उतनी ही कमी आयेगी। शिक्षा द्वारा इन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान होगा और कोई भी इनका शोषण नहीं कर पायेगा।
- कठोर कानून व्यवस्था- बाल श्रमिक रखने वाले लोगों के प्रति कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए। ताकि ये लोग बाल श्रमिक न रखें।

बच्चों इस शोषण से बचाने के लिए एक समन्वित नीति बनाने की आवश्यकता है। सतत विकास, आधुनिक क्षेत्रों में तेजी से विस्तार, अनिवार्य स्कूली शिक्षा, गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में लगातार कमी बाल श्रम उन्मूलन हेतु आवश्यक है। बाल श्रम का पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य तो अधिकांश देशों की पहुँच से बाहर है किन्तु इसमें सभी के लिए मानवाधिकार आयोग व गैर सरकारी संगठनों के बीच एक साझेदारी बन सकती है। इस दिशा में गैर सरकारी संगठनों का कार्य सराहनीय है।जब तक समाज का हर वर्ग मन से बाल श्रमिकों के विरुद्ध नहीं होगा, बाल श्रमिकों की मुक्ति असम्भव है।

4.6 सामाजिक /घरेलू हिंसा (Social/Domestic violence)

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि मानव हिंसा की भावना को जन्म से ही अर्जित करता है मां की गोद में जब नवजात शिशु को भूख सताती है तो वह मॉ की ओर लपकता है मॉ की अनिच्छा पर पर वह उस पर वार करता है। हाथ पैर पटकता है यहीं से क्रोध और फिर हिंसा पनपती है जिस पर यह हिंसा उतारी जाती है वह कभी न कभी दहशत में इसका शिकार होता है। और दूसरी ओर साधु प्रवृत्ति भी जन्म हम समाज में व्याप्त कुछ ऐसी ही सामाजिक और घरेलू हिंसा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.6.1सामाजिक हिंसा-

सामाजिक रूप से हिंसा की शुरूआत उस समय हुई जब से मनुष्य के मन में तेरे मेरे की भावना ने घर किया बात अगर सुलझ गई तो शान्ति, वरना इसी से घर मोहल्ले, राज्य, देश और फिर विश्व स्तर पर हिंसा पनप उठती है।पुरूष प्रधान समाज में क्योंकि मूलतः पुरूष को ही हिंसा का कारण माना जाता है क्योंकि वह सबसे ताकतवर है इसलिये अपने से कमजोर को दबाने में नहीं चूकता। परिवार में जब पति की हिंसा पत्नी पर हावी होती है तो पूरे परिवार में भय और दहशत पैदा होती है कभी कभी ये स्थिति इसके विपरीत भी होती है। जहॉ पत्नी हावी होती है तब पति को सिर्फ अपनी इज्जत परिस्थितियों और गृहस्थी चलाने की गरज से पत्नी की तुनकमिजाजी सहनी पड़ती है। अन्ततः स्थिति ऐसी भी आती है जब सब्र का बॉध टूट जाता है और बात हिंसा पर आ जाती है तब व्यक्ति में तनाव, कुण्ठा हिंसा व दहशत जनम लेती है। ज्वैलरी शॉप पर दिन दहाड़े लूटपाट, लड़की के साथ छेड़छाड़ भीषण नरसंहार, बम विस्फोट, लड़की पर कुछ लड़कों द्वारा तेजाब फेकने जैसे घटनाएं हमें प्रतिदिन अखबारों में पढ़ने को मिलती है। ये खबरें आपकों

पढ़ने में भले ही अच्छी न लगें लेकिन समाज की इस हकीकत से हम सभी वाकिफ हैं, जो हिंसा भय दहशत और कुंठा, तनाव, हिंसा आदि को जन्म दे रही हैं। सामाजिक रूप से यदि हिंसा को देखा जाए ज्यादा हिंसा धर्म और जाति के प्रति हुई है।

- **जातिगत हिंसा-**भारत में विभिन्न धर्म और जाति के रहते हैं समस्त जातियों में लगभग 15 % जातियाँ पिछड़ी जातियों के लोग रहते हैं 2008 के आंकड़ो के मुताबिक जातिगत हिंसा के 10,000 से भी ज्यादा मामले दर्ज हुए हैं । भारत में अभी भी उच्च जातियों निम्न जातियों पर हिंसक होती हैं और टकराव होते रहते हैं।

- **भ्रूण हत्या-** यह एक सामाजिक हिंसा भी है और घरेलू हिंसा भी कयोंकि आज समाज में बड़े पैमाने पर इस तरह की घटना हो रही है और घर के भीतर महिलाओं को भूण हत्या के लिए मजबूर किया जा रहा है इसलिए यह घरेलू हिंसा भी है अल्ट्रासाण्ड की सुविधा, कानून की सख्ती पालन न होना है इस हिंसा को बढ़ावा दे रहा है।

- **धार्मिक हिंसा-** भारत विभिन्न घर्मों वाला देश है। यहॉ हिन्दू मुसिलम सिक्ख, इसाई चार धर्मों के लोग निवास करते हैं जिसमें हिन्दुओं के बाद सबसे ज्यादा संख्या मुसिलम निवास करते है और सबसे ज्यादा दंगें हिन्दू और मुस्लिम निवास करते है और सबसे ज्यादा दंगे हिन्दू और मुस्लिमों के बीच हुए है आंकड़ो के अनुसार आजादी के बाद 1947 के बाद से अब तक लगभग 8000 धार्मिक दंगें चुके है इन दंगों में सैकड़ों लोग बेघर हो जाते हैं धन और जन दोनों की ही हानि होती है। आतंकवाद अपहरण सामूहि बलात्कार ये सभी सामाजिक हिंसा के अनतर्गत आत हैं। हमारे यहाँ आये दिन अखबार इस तरह की हिंसक घटनाओं से भरे पढ़े होते हैं।

- **हथियार और हिंसा-** विश्व आंकड़ों के अनुसार हथियारों के मामले में अग्रणी अमेरिका में हिंसा की स्थिति सबसे विकट है यहाँ के नेशनल इंन्स्टीटयूट ऑफ हैल्थ के वैजानिकों ने हथियारों को हिंसा का जीवाणु माना है वैज्ञानिकों ने हथियारों और हिंसा के सम्बन्ध में शोध कार्य किये और उनका मानना है कि यदि समाज में हथियारों की संख्या पर काबू पा लिया जाए तो हिंसा की वारदातों में गिरावट आ जायेगी। हमारे देश में स्थिति यह है कि हथियार केवल अपराधियों के पास ही नही आम नागरिकों के पास भी है। घरों में ही तैयार कट्टे छर्रो से लेकर, एके 47 तक उपलब्ध है। कुछ लोग शौकिया भी हथियार रखते हैं हथियारों के प्रति यह लालसा, शौक और जखीरा समाज में हिंसा को बढ़ायेगा, इसे रोकने के लिए सरकारी प्रयास ही सब कुद नहीं है हम सबको इस पर काबू करने का प्रयास करना होगा।

- समाज को हिंसा सौंपतेधारावाहिक व फिल्म- बेहद डरावनी दहशत से भरी, वीभत्स चेहरे, रक्त रंजित हाथ अजीबोगरीब सन्नाटा दहशत से भरी फिल्मों व धारावहिक तेजी से लोकप्रिय हो रहे है। सर्वेक्षण के मुताबिक इस तरह के धारावाहिक और फिल्में हमारी मानसिकता को विकृत करते हैं। खाशकर बच्चों और युवाओं कोबर्बादकरते हैं। निर्माता निर्देशक तो अपनी कमाई कर जाते हैं लेकिन कल्पना से युक्त दहशत भरी ये रचनाएं समाज में भय और हिंसा की सौगात दे जाते हैं और युवा अक्सर इन धारावहिकों और फिल्मों से प्रेरित होकर बड़ी बड़ी हिंसक वारदातों को भी अंजाम दे जाते हैं।

4.6.2 घरेलू हिंसा

घरेलू हिंसा की जड़ें हमारे समाज तथा परिवार में गहराई तक जम गई हैं।इसे व्यवस्थागत समर्थन भी मिलता है। घरेलू हिंसा के खिलाफ यदि कोई महिलाआवाज मुखर करती है तो इसका तात्पर्य होता है अपने समाज और परिवार मेंआमूलचूल परिवर्तन की बात करना। प्राय: देखा जा रहा है कि घरेलू हिंसा केमामले दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं। परिवार तथा समाज के संबंधों मेंव्याप्त ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, अपमान तथा विद्रोह घरेलू हिंसा केमुख्य कारण हैं। परिवार में हिंसा की शिकार सिर्फ महिलाएं ही नहीं बल्किवृद्ध और बच्चे भी बन जाते हैं। प्रकृतिने महिला और पुरूष की शारीरिकसंरचनाएं जिस तरह की हैं उनमें महिला हमेशा नाजुक और कमजोर रही है, वहींहमारे देश में यह माना जाता रहा है कि पति को पत्नी पर हाथ उठाने का अधिकारशादी के बाद ही मिल जाता है। हालांकिमहिलाओं का संरक्षण अधिनियम (पीडब्ल्यूडीवीए), 2005 से महिलाओं को घरेलूहिंसा से संरक्षण वसहायता प्राप्त हुई है यह अधिनियम घरेलू हिंसा से पीड़ित महिलाओं को संरक्षण देने और उनकी सहायता करने के लिए बनाया गया है। यह कानून प्रकृति में सिविल है और घरेलू हिंसा जिसमें जाने-अनजाने में किए गए वे सभी कृत्य जिनसे महिलाओं को शारीरिक, सैक्सुअल् या मानसिक स्वास्थ्य को चोट पहुँचती है और उसमें हिंसा के विशिष्ट रूप जैसे शारीरिक, सैक्सुअल्, मौखिक, भावनात्मक और आर्थिक दुरूपयोग किया जाना शामिल है, को परिभाषित करता है। पीडब्ल्यूडीवीए सभी महिलाओं को घर के निजि दायरे में हिंसा से मुक्त जीने के अधिकार को मान्यता देता है। इस कानून का उद्देश्य हिंसा को रोकना और प्रतिवादी के साथ महिला के रिश्ते के बावजूद ऐसी परिस्थितियों में तुरन्त एवं आपातकालीन सहायता प्रदान करना है।

4.6.3 घरेलू हिंसा की परिभाषा

- पुलिस-महिला, वृद्ध अथवा बच्चों के साथ होने वाली किसी भी तरह कीहिंसा अपराध की श्रेणी में आती है। महिलाओं के प्रति घरेलूहिंसा केअधिकांश मामलों में दहेज प्रताड़ना तथा अकारण मारपीट प्रमुख हैं।

- ❖ राज्य महिला आयोग - कोई भी महिला यदि परिवार के पुरूष द्वारा की गईमारपीट अथवा अन्य प्रताड़ना से त्रस्त है तो वह घरेलू हिंसा की शिकारकहलाएगी। घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005 उसे घरेलू हिंसा केविरूद्ध संरक्षण और सहायता का अधिकार प्रदान करता है।

- ❖ आधारशिला (एन.जी.ओ.)- परिवार में महिला तथा उसके अलावा किसी भीव्यक्ति के साथ मारपीट, धमकी देना तथा उत्पीड़न घरेलू हिंसा की श्रेणीमें आते हैं। इसके अलावा लैंगिक हिंसा, मौखिक और भावनात्मक हिंसा तथाआर्थिक हिंसा भी घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005 के तहत अपराध की श्रेणीमें आते हैं।(पुलिस, राज्य महिला आयोग तथा एन.जी.ओ. द्वारा घरेलू हिंसा की जोपरिभाषाएं दी गई हैं उनका तात्पर्य लगभग एक जैसा ही है हालांकि भाषापरिवर्तित है।)

4.6.4 घरेलू हिंसा- विश्व की स्थिति

महिलाओं को अधिकारों की सुरक्षा को अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक (1975-85) के दौरान एक पृथक पहचान मिली थी। सन् 1979 में संयुक्त राष्ट्र संघ मेंइसे अंतर्राष्ट्रीय कानून का रूप दिया गया था। विश्व के अधिकांश देशोंमें पुरूष प्रधान समाज है। पुरूष प्रधान समाज में सत्ता पुरूषों के हाथमें रहने के कारण सदैव ही पुरूषों ने महिलाओं को दोयम दर्जे का स्थान दियाहै। यही कारण है कि पुरूष प्रधान समाज में महिलाओं के प्रति अपराध, कममहत्व देने तथा उनका शोषण करने की भावना बलवती रही है।

- ❖ **शारीरिक हिंसा:** इस हिंसा के बारे में सभी बहुत भली भांतिजानते हैं। जैसे- मारपीट करना, थप्पड़ मारना, ठोकरमारना, दांत काटना, मुक्का मारना, धक्का देना, लात मारना या किसी अन्यतरीके से महिला को शारीरिक चोट पहुंचाना आदि शारीरिक हिंसा के उदाहरण हैं।

- ❖ **मानसिक हिंसा:** बहुत से लोग महिलाओं को मारते पीटते नहींलेकिन वे उसे इतनी ज्यादा मानसिक पीड़ा देते हैं कि वे अपने हालातोंपर मजबूरहो जाती है। मानसिक हिंसा में गाली गलौच करना, कलंक लगाना, बुराई करना, मजाक उड़ाना, दहेज आदि के लिए अपमानित करना, बच्चा या बेटा न होने पर तानादेना, शिक्षा या नौकरी में अवरोध उत्पन्न करना, बाहर जाने या किसी व्यक्तिसे मिलने के लिए रोकना, अपनी पसंद के व्यक्ति से विवाह करने या नहीं करनेपर दबाब डालना, आत्महत्या की धमकी देना, चरित्र और आचरण पर दोषारोपण, नौकरी छोड़ने के लिये दबाव डालनाआदि सम्मिलित हैं ।

- **लैंगिक हिंसा:** बलात्कार, अश्लील साहित्य या कोई अन्य अश्लील तस्वीरों या को देखने के लिए विवश करना, दुर्व्यवहार करने, अपमानित करने, अपमानित या नीचादिखाने की लैंगिक प्रवृत्ति का कोई अन्य कार्य अथवा जो प्रतिष्ठा काउल्लंघन करता हो या कोई अन्य अस्वीकार्य लैंगिक प्रक़ति का हो।

- **आर्थिक हिंसा:** ये अक्सर वे ही पुरुष करते है जो या तो ठीक से कमा नहीं पाते या उन्हेंनौकरी करने में कोई रूचि नहीं होती। ऐसे पुरुष अपने जीवनयापन की वस्तुएंभी महिला के वेतन से खरीदते हैं। घर में खाने, कपडे, दवाई आदि का खर्च नहींदेना या अगर घर में है तो उनका उपयोग नहीं करने देना, घर का किराया नहीं देना, घर से जबरदस्ती महिला को निकाल देना, नौकरी कर रही महिला का वेतन लेलेना, नौकरी नहीं करने देना, बिलोंका भुगतान नहीं करना, घर के किसी भीमौद्रिक कार्य में अपना सहयोग नहीं देना, महिला का वेतन छीनकर शराब आदि पीना आर्थिक हिंसा के उदाहरण है।

4.6.5 भारत में घरेलू हिंसा

दिल्ली में स्थित एक सामाजिक संस्था द्वारा कराये गये अध्ययन के अनुसार भारत में लगभग पांच करोड़ महिलाओं को अपने घर में ही हिंसा का सामना करना पड़ता है। इनमें से मात्र 0.1 प्रतिशत ही हिंसा के खिलाफ रिपोर्ट लिखाने आगे आती हैं। पालन-पोषण में पितृसत्तात्मक अधिक महत्व रखती है इसलिए लड़की को कमजोर तथा लड़के को साहसी माना जाता है। लड़की के व्यक्तित्व को जीवन की आरम्भि अवस्थाओं में ही कुचल दिया जाता है। घरेलू हिंसा के प्रमुख कारण निम्न माने जाते हैं-

- समतावादी शिक्षा व्यवस्था का अभाव।
- सामाजिक कुप्रथाएँ
- अशिक्षा
- पुरूष प्रधान समाज
- महिला के चरित्र पर संदेह करना
- शराब की लत
- इलेक्ट्रानिक मीडिया का दुष्प्रभाव
- महिला को स्वा्वलम्बी बनने से रोकना।

4.6.6 घरेलू हिंसा का दुष्प्रभाव

महिलाओं तथा बच्चों पर घरेलू हिंसा के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक दुष्प्रभाव पड़ते हैं। इसके कारण महिलाओं के काम तथा निर्णय लेने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। परिवार में आपसी रिश्तों और आस-पड़ौस के साथ रिश्तों व बच्चों पर भी इस हिंसा का सीधा दुष्प्रभाव देखा जा सकता है। घरेलू

हिंसा के कारण दहेज मृत्यु, हत्या और आत्महत्या बढ़ी हैं। वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति भी इसी कारण बढ़ी है। महिला की सार्वजनिक भागीदारी में बाधा होती है। महिलाओं का कार्य क्षमता घटती है, साथ ही वह डरी-डरी भी रहती है। परिणाम स्वरूप प्रताड़ित महिला मानसिक रोगी बन जाती है जो कभी-कभी पागलपन की हद तक पहुंच जाती है। पीडित महिला की घर में द्वितीय श्रेणी की स्थिति स्थापित हो जाती है।(http://www.mediaforrights.org/infopack/hindi-infopack/551) 2015-16 में कराए गए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS 4) में इस बात का उल्लेख किया गया है कि भारत में 15-49 आयु वर्ग की 30 फीसदी महिलाओं को 15 साल की आयु से ही शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ा है। कुल मिलाकर NFHS 4 में कहा गया है कि उसी आयु वर्ग की 6 फीसदी महिलाओं को उनके जीवनकाल में कम से कम एक बार यौन हिंसा का सामना करना पड़ा है। आमतौर पर बदनामी के डर से काफी बड़ी संख्या में ऐसे मामले दर्ज ही नहीं हो पाते, खासतौर पर तब जब पीड़िता को अपने पति, परिवार के सदस्य या किसी अन्य परिचित के खिलाफ शिकायत दर्ज करानी हो।

घरेलू हिंसा से बचाव: मनोवैज्ञानिक और समाज सुधारक अनुजा कपूर कहती हैं, ''हमारे समाज की सब से बड़ी समस्या यही है कि महिलाओं को लगता ही नहीं कि उन के साथ घरेलू हिंसा हो रही है। समाज में यही धारणा व्याप्त है कि पति हमेशा सही होता है, वह कुछ भी कर सकता है। ''समाज को बदलने के लिए हमें स्वयं को बदलना होगा। अब पिता की संपत्ति में बेटी को बराबर की हिस्सेदारी मिलती है। वह अलग हो सकती है। शोषित होने से इनकार कर सकती है। बच्चे मां-बाप को रोल मॉडल मानते हैं। पर जब वे देखते हैं कि कोई व्यक्ति आपका हाथ मोड़ रहा है, कपड़े फाड़ रहा है, धक्के दे रहा है या फिर गालियां बक रहा है। फिर भी महिला उसे सही कहती हैं, क्योंकि वह पति है, यही हम बच्चों को अप्रत्यक्ष रूप से सिखा रहे होते हैं। यह वूमन ऐंपावरमैंट नहीं है। ''महिला अन्याय का विरोध करेंगी तो कानूनों की कमी नहीं। महिला के हित में सरकार ने कानून बनाए हैं। ऐसे एनजीओ की भी कमी नहीं जो महिला को सहयोग देते हैं।'' यदि घरेलू हिंसा से भारत की लड़कियों को बचाना है, तो जरूरी है कि घर में बच्चों को शुरू से ही सही संस्कार दिए जाएं। उन्हें बताया जाए कि लड़के लड़की में कोई फर्क नहीं और ऐसा कतई सही नहीं है कि भाई अपनी बहनों के साथ मारपीट करें या उन्हें दबा कर रखें।

जब तक वे बचपन से महिलाओं का सम्मान करना नहीं सीखेंगे, आगे चल कर भी बीवी पर हाथ उठाने की उन की आदत नहीं जाएगी। लड़कों को बचपन से जो यह सिखाया जाता है कि "लड़के रोते नहीं हैं" उस की जगह यह सिखाया जाए कि लड़के रुलाते नहीं हैं। यद्यपि घरेलू हिंसा का कोई कारण बता पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। पितृ सत्तात्मक समाज होने के कारण भारतीय समाज में इस प्रकार की हिंसा निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा को व्यापक सूचना-शिक्षा-संचार के जरिए रोका जा सकता है। इस प्रकार के अभियान मौजूदा कानूनी प्रावधानों जैसे — घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध और प्रतितोष)अधिनियम, 2013 और भारतीय दंड संहिता की धारा 354A, 354B, 354C और 354D का

अनुपूरक हो सकते हैं और उन्हें पूर्णता प्रदान कर सकते हैं — ये सभी कानून यौन प्रताड़ना और दर्शनरति तथा पीछा करने जैसे दुर्व्यवहार के अन्य स्वरूपों से सम्बंधित हैं। हालांकि ये कानून तभी प्रभावी हो सकते हैं, जब महिलाएं आगे आएं और दोषियों के खिलाफ मामले दर्ज कराएं, इसलिए, आपराधिक गतिविधियों की रोकथाम के लिए बनाए गए ये कानूनी प्रावधान आमतौर पर अपराध होने के बाद पीड़िता को सदमे से उबारने के उपायों के तौर पर ही इस्तेमाल होते हैं। भारत अभी तक हमलावरों की मानसिकता का अध्ययन करने, समझने और उसमें बदलाव लाने का प्रयास करने के मामले में पिछड़ रहा है। हम अभी तक विशेषज्ञों द्वारा प्रचारित इस दृष्टिकोण की मोटे तौर पर अनदेखी कर रहे हैं कि "महिलाओं और लड़कियों के साथ होने वाली हिंसा और भेदभाव को सही मायनों में समाप्त करने के लिए पुरुषों और लड़कों को समस्या के भाग से बढ़कर देखना होगा; उन्हें इस मसले के समाधान के अविभाज्य अंग के तौर पर देखना होगा।" महिलाओं से होने वाली हिंसा से निपटने का समग्र दृष्टिकोण अपराधियों के व्यवहार में बदलाव लाने के गंभीर प्रयासों के बगैर कभी पूरा नहीं हो सकता। हिंसा करने वाले अपराधी जन्म से ही दुव्यर्वहार करने के आदी नहीं होते। वे बचपन से ही उस तरह का व्यवहार करने के लिए मानसिक तौर पर तैयार किए जाते हैं। ब्रिटेन की एंग्लिया रस्किन यूनिवर्सिटी के अपराध विज्ञान विभाग में एक डॉक्टोरल शोध के लिए बलात्कार के 100 दोषियों से जब बात की कि तो महसूस हुआ कि वे कोई अनोखे इंसान नहीं थे। वे बेहद सामान्य इंसान थे। उन्होंने जो भी किया था वह अपने पालन-पोषण और सोच के कारण किया था।" इस तरह का सुधार लाने के लिए सबसे पहले कदम के तौर पर यह आवश्यक होगा कि "पुरुषों को महिलाओं के खिलाफ रखने" के स्थान पर पुरुषों को इस समाधान का भाग बनाया जाए। मर्दानगी की भावना को स्वस्थ मायनों में बढ़ावा देने और पुराने घिसे-पिटे ढर्रे से छुटकारा पाना अनिवार्य होगा।

- संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) इस बारे में चर्चा करता है कि किस तरह ऐसी विषाक्त मर्दानगी की भावनाएं युवाओं के जहन में बहुत छोटी उम्र से ही बैठा दी जाती हैं। उन्हें ऐसी सामाजिक व्यवस्था का आदी बनाया जाता है, जहां पुरुष ताकतवर और नियंत्रण रखने वाला होता है तथा उन्हें यह विश्वास दिलाया जाता है कि लड़कियों और महिलाओं के प्रति प्रभुत्व का व्यवहार करना ही उनकी मर्दानगी है। इन्हीं घिसी-पिटी बातों के परिणामस्वरूप महिलाओं और पुरुषों दोनों को नुकसान पहुंच रहा है और संतोषजनक, परस्पर सम्मानजनक संबंध स्थापित करने की संभावनाएं धूमिल हो रही हैं। घरेलू हिंसा को रोकने या कम करने के लिए निम्न सुझाव अपनाए जाने आवश्यक हैं।

  - शिक्षा की सतुचित व्यवस्था हो
  - रोजगार की व्यवस्था हो
  - आश्रम की व्यवस्था हो

- ❖ महिला न्यायालयों की स्थापना
- ❖ बैचारिक परिवर्तन की आवश्यकता
- ❖ अधिकारों के प्रति चेतना

यद्यपि भारत में महिला संगठन घरेलू हिंसा के विरोध में समय-समय पर अपनी आवाज बुलन्द करते रहे हैं। महिलाओं के विरुद्ध हिंसा रोकने, इनके स्तर में सुधार करने एवं पुरूषों के समान दर्जा देने हेतु वर्ष 2002 में बनाई राष्ट्रीय नीति में महिला हिंसा रोकने के लिए निम्न संकेत दिए गए हैं -

- ❖ राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी निर्धारित की गई
- ❖ शिक्षा, स्वास्थ्य, सम्पत्ति का समान अधिकार
- ❖ लैंगिक मामलों में पुरूष के समान अधिकार
- ❖ वैधानिक प्रक्रिया में परिवर्तन
- ❖ महिला हिंसा एवं उत्पीड़न रोकने हेतु समुचित विकास

संसार के सभी सभ्य देश और समाज इस दिशा में कार्यरत हैं। यद्यपि पहले की अपेक्षा मानव चेतना का विकास भी हुआ है, किन्तु विकास की गति ने संस्थाओं को कमजोर किया है जिससें सामाजिक असंतुलन बढ़ा है और लिंग आधारित हिंसा में शर्मनाक बढ़ोत्तरी हुई है। केंद्र सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा से संबंधित परियोजनाओं के लिए अपने स्तर पर वर्ष 2013 में निर्भया कोष की स्थापना की थी। जिसके अंतर्गत 22 प्रस्ताव निरुपित और अनुशंसित किए गए हैं। इन 22 प्रस्तावों में 'वन-स्टॉप सेंटर' जैसी योजनाएं शामिल हैं, जिनकी स्थापना हिंसा की शिकार महिलाओं की सहायता के लिए चिकित्सकीय, कानूनी और मनोवैज्ञानिक सेवाओं की एकीकृत रेंज तक उनकी पहुंच सुगम बनाने के लिए की गई है। उन्हें '181' और अन्य हेल्पलाइन्स से जोड़ा जाएगा। अब तक, 151 वन-स्टॉप सेंटर्स शुरु किए जा चुके हैं। 'महिलाओं की हेल्पलाइन का सार्वजनीकरण' योजना का उद्देश्य हिंसा से पीड़ित महिला को रेफरल के माध्यम से 24 घंटे तत्काल और आपात राहत पहुंचाना है। यह हेल्पलाइन देश भर में महिलाओं से संबंधित सरकारी योजनाओं के बारे में भी जानकारी प्रदान करती है। "महिलाओं के खिलाफ हिंसा से मुक्त भारत" बनाने के लिए सामूहिक तौर पर इस बारे में चर्चा करना आवश्यक है।

4.7 कार्य स्थल पर शोषण (Workplace abuse)

विभिन्न कार्य स्थलों पर काम करने वाले लोग प्राय: तीन प्रकार के होते हैं जिनका शोषण किया जाता है

1.पुरूष 2. महिला 3. बच्चे

उच्च जाति द्वारा निम्न जाति पर, धनी व्यक्तियों द्वारा निर्धन व्यक्तियों पर, मालिक द्वारा श्रमिकों पर, पुरूषों द्वारा महिलाओं पर। शोषण अत्याचार प्राचीन समय से चला आ रहा है आज भी शोषण होता है ऐसे कार्य स्थल को हम निम्न भागों में बॉट सकते हैं।

- परिवार
- आफिस
- कारखाने या उद्योग धन्धे
- शिक्षण संस्थान
- होटल या ढॉवे

परिवार में सबसे ज्यादा शोषण महिलाओं का होता है। परिवार में प्रायः सास, पति, जेठानी या ननद द्वारा बहू पर अत्याचार होता है। ज्यादातर केस में अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष ही महिलाओं को ऐसे उत्पीड़न का शिकार बनाते हैं।ऑफिस में बॉस द्वारा महिला और पुरूष दोनों का ही शोषण किया जाता है। महिलाओं से काम पूरा लिया जाता है और पैसा बहुत कम दिया जाता है। बात बात पर उन्हें निकाल देने व दूसरे व्यक्ति को काम पर रखने की धमकी भी दी जाती है। ऑफिस में प्रमोशन आदि को लेकर परेशान करना, महिलाओं पर छीटाकशी द्वारा महिला कर्मचारी को बार-बार बिना किसी काम के अपने केविन में बुलाना, उसके साथ अभद्र व्यवहार करना आदि कार्य स्थल पर देखे जा सकते हैं। कार्य स्थलों में महिलाओं के खिलाफ सभी तरह के उत्पीड़न या हिंसा के पीछे का सामान्य कारणहमारे समाज में प्रचलित पितृसत्तात्मक संरचना है जहां एक पुरुष सदैव अपनेआप को जीवन के हरेक पहलू में महिलाओं से अधिक स्वंय को सर्वशक्तिमान समझताहै। ये श्रेष्ठता अपने आप में महिलाओं और कार्यशील महिलाओं के खिलाफ विभिन्न प्रकार के जटिल भेदभावों को व्यवहार में प्रकट करती है।

इस प्रकार, एक पुरुष कर्मचारी ये कभी नहीं चाहता कि उसके साथ कोई महिला सहयोगी बराबरीके साथ काम करे या वो कार्यालय में उससे ऊँचे स्तर पर पहुँचे, और उसे असहजबनाने, नीचा दिखाने के लिये उसका उत्पीड़न करते है। यद्यपि हमारे पास कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ हो रहे अत्याचार को रोकने केलिए विशेष प्रावधान है इसके अलावा भारत के सुप्रीम कोर्ट द्वारा पहले सेदिये गये ऐतिहासिक दिशा निर्देश भी है लेकिन इस बुराई को तब तक नियंत्रितनहीं किया जा सकता जब तक कि पुरुषों की सोच को नहीं बदला जा सकता। जब तक किपुरुषों के द्वारा महिलाओं की बुनियादी मानवता को सम्मान नहीं दियाजायेगा, कोई भी कानून प्रभावी नहीं हो सकेगा। कारखाने और उद्योग धन्धों में भी मजदूरों और कर्मचारियों का शोषण होता है- जैसे काम के घण्टे ज्यादा होना, बीमारी में छुट्टी लेने पर वेतन काट लेना, ज्यादा से ज्यादा काम लेना और कम वेतन देना, निश्चित मजदूरी न देना। कहीं-कहीं तो कारखानों में (जैसे चूड़ी उद्योग, कालीन उद्योग आदि) बाल श्रमिकों को रखा जाता है उनसे ये ज्यादा से ज्यादा काम लेते हैं

और बहुत कम पैसे देते हैं, उन्हें डराया धमकाया भी जाता है जिससे ये उनके खिलाफ आवाज न उठाये। प्राइवेट शिक्षण संस्थाएं भी लोगों का शोषण करने से नही चूकती। हमारे यहाँ शिक्षित बेरोजगारी की वजह से इन्हें शिक्षक आसानी से मिल जाते हैं। ये इनसे 8 घण्टे काम करवाते हैं और पैसा बहुत कम देते हैं। ज्यादातर कॉन्वेट स्कूल भिन्न-भिन्न फण्ड या अन्य चीजों के नाम पर पैसे वसूलते रहते हैं। पैसा न जमा करने पर वे बच्चों को बेइज्जत या दण्ड देने से नही चूकते और अविभावक बच्चों की वजह से चुपचाप इनकी मनमानी सहते रहते हैं। होटल या ढ़ाबों में सबसे ज्यादा शोषण बाल श्रम का होता है उन्हें सुबह जल्दी ही उठा कर काम पर लगा दिया जाता है और खाने के नाम पर -सूखा भोजन दिया जाता है, तन ढकने के लिए उनके पास ठीक से कपड़े नही होते हैं। उन्हें वेतन भी बहुत कम देते हैं। कभी कप या प्लेट टूट जाए तो उसकी पूर्ति वे उनके वेतन से काटकर करते हैं ।उन्हें हर समय अपशब्द बोलकर अपमानित करने से भी नही चूकते हैं।

4.7 सामाजिक समस्याओं के विभिन्न समाधान (Various solutions to social problems)

सामजिक समस्याओं के समाधान से पहले विभिन्न सामाजिक समस्याओं के बारे में जानना आवश्यक है कि वे कौन सी सामाजिक समस्यायें हैं जिनका समाधान अत्यन्त आवश्यक है।

- गरीबी या निर्धनता की समस्या
- वंचन की समस्या
- जनसंख्या विस्फोट की समस्या
- बेरोजगारी
- भिक्षावृत्ति
- भ्रष्ट्राचार
- अपराध
- बाल अपराध
- महिलाओं पर अत्याचार
- बाल शोषण
- वृद्धजनों की समस्यायें
- एड्स
- पर्यावरण प्रदूषण
- निम्न आय वर्ग में बढ़ती कुष्ठा
- यौन जनित समस्यायें

- आत्महत्या
- मादक पदार्थो का सेवन
- आतंकवाद
- वेश्यावृत्ति
- जातिवाद
- क्षेत्रवाद
- भाषावाद

पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्यायें, विवाह विच्छेद, टूटते परिवार, बंधुआ मजदूर आदि जैसी अनेक सामाजिक समस्यायें हमारे समाज में व्याप्त हैं जिनका समाधान अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये सभी समस्यायें हमारे देश के विकास से जुडी हैं। विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के प्रति मनुष्य में प्रारम्भ से ही चेतना रही और समय समय पर इनकी समाधान होता रहा है ऐसी समस्याओं का समाधान निम्न रुपों में बॉट कर किया जा सकता है।

❖ उपचारक विधियाँ

❖ निरोधक विधियाँ

उपचारक विधियों में उन विधियों को सम्मिलित किया जाता है जिसमें सामाजिक समस्या के परिणामों या लक्षणों की पहचान करके उस समस्या को दूर करने की कोशिश की जाती है। निरोधक विधि से तात्पर्य उन विधियों से होता है जिसमें सामाजिक समस्याओं के कारणों का पता लगाकर उन्हें दूर करने के उपाय सोचे जाते हैं जैसे गरीबी या निर्धनता से उत्पन्न तंगी की पहचान करके यदि इन समस्याओं को दूर करने का उपाय किया जाता है तो इसे उपचारक विधि कहा जायेगा परन्तु यदि इनके कारणों को ध्यान में रखकर उसे दूर करने का उपाय किया जाता है तो इसे निरोधक विधि कहा जाता है। सामाजिक समस्याओं का समाधान हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं-:

- अधिकांश लोगों का मानना है कि अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली ही अधिकांश समस्याओं की जड़ है अतः उपयुक्त शिक्षा प्रणाली द्वारा अधिकांश समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।
- कुछ सामाजिक समस्यायें ऐसी हैं (जैसे निर्धनता, बेकारी आदि) जिनके समाधान के रास्ते में धन की कमी होने से अवरोध उत्पन्न हो जाता है। विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए प्रर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध हो।
- सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए लोग खुलकर अपनी मनोवृत्ति चिन्तन भाव आदि की अभिव्यक्ति करें जिससे समस्या का समाधान ठीक ढंग से हो सके।

- पुलिस और न्याय व्यवस्था में सुधार करके क्योंकि पुलिस एवं न्याय व्यवस्था की सामाजिक समस्याओं के समाधान में अहम् भूमिका होती है।
- लोगों को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होना अत्यन्त आवश्यक है।
- मानसिकता में परिर्वतन- किसी वर्ग जाति व धर्म के प्रति लोगों में जो भेदभाव है उसके लिए उनकी मानसिकता में परिवर्तन करके हम काफी हद तक सामाजिक समस्याओं से छुटकारा पा सकते हैं।
- मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका-विभिन्न सामाजिक समस्याओं में मीडिया को अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझनी चाहिए।
- विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए कानून और समाज दोनों के समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होती है। प्राचीन समस्याओं के समाधान में इन दोनों कारकों का समन्वित सहयोग रहा है।
- सामाजिक समस्याओं के विरोध में अधिनियम को पारित करके सख्तीपूर्वक उसे समाज पर लागू किया जाए। समय समय पर उस अधिनियम से प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन किया जाए और आवश्यकता पड़ने पर पूर्व में पारित अधिनियम में संशोधन किया जाए और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नये अधिनियम का निर्माण किया जाए।
- सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए सरकार द्वारा जो कानून बनाये गये हैं उनका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए।
- सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए जो भी सरकारी व गैर सरकारी उल्लेखनीय कार्य करती है उन्हें समय -समय पर पुरस्कृत करके प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- आर्थिक विकास होने से व्यक्ति की उपलब्धि में वृद्धि होती हैं तथा सामाजिक समस्याएँ घटती हैं।

4.8 सारांश (Summary)

सामाजिक शोषण व सामाजिक समस्याओं के फलसवरूप हिंसा की प्रवृत्ति जन्म लेती है ये समस्या सिर्फ भारत के लिए ही नही वरन सम्पूर्ण विश्व के लिए चिन्ता का विषय है। सामाजिक शोषण हो या बाल श्रम, सामाजिक हिंसा हो या घरेलू हिंसा इन सभी समस्याओं के समाधान हेतु निरन्तर प्रयास होते रहे हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि बढ़ती हुई हिंसा ने द्वार-द्वार भय और फिर दहशत की दस्तक दी है। इस पर काबू पाना सहज प्रक्रिया नहीं है अपने आप पर काबू पाने में मानव जिस हद तक सफल हो जायेगा हिंसा उसी हद तक रुक जायेगी। कभी -कभी इन हिंसक वारदातों के कारण व्यक्ति अनेक मानसिक रोगों का शिकार भी जो जाता है।

विभिन्न सामाजिक पहलुओं चाहे वह सामाजिक शोषण या सामाजिक हिंसा हो या घरेलू हिंसा, स्वयं हमारी जागरुकता और प्रयास द्वारा ही इस पर अंकुश लगा सकते हैं।

4.9 शब्दावली (Vocabulary)

- स्वावलंबी: आत्म निर्भर
- परिश्रमिक: वेतन
- प्रताड़ना: पीड़ा कष्ट उत्पीड़न

4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न (Self-assessment questions)

किसी एक पर सही का निशान लगाऐं -

1) कितने वर्ष तक की आयु वाले बच्चे बाल श्रम के अन्तर्गत आते हैं।

(अ) 12 वर्ष (ब) 16 वर्ष

(स) 14 वर्ष (द) 18 वर्ष

2) बाल श्रम का मुख्य कारण नहीं है।

(अ) गरीबी (ब) अच्छी शिक्षा

(स) अति जनसंख्या (द) सरकारी प्रयासों में कमी

3) बाल श्रम उन्मूलन का उपाय है-

(अ) जनसंख्या नियंन्त्रण (ब) अशिक्षा का दूर करना

(स) कठोर कानूनों का निर्माण (द) बाल विवाह को प्रोत्साहन

4) निम्नलिखित में से कौन सा कारण घरेलू हिंसा के अन्तर्गत आता है -

(अ) शारीरिक दुर्व्यवहार (ब) बेमेल विवाह

(स) पारिवारिक समन्वय (द) बाल विवाह को प्रोत्साहन

5) भारत में दहेज निरोधक अधिनियम कब पारित किया गया -

(अ) 1960 में (ब) 1961में

(स) 1962 (द) 1970में

उत्तर :1) 14 वर्ष 2)अच्छी शिक्षा 3)उपर्युक्त सभी 4)शारीरिक दुर्व्यव्यवहार 5)1961 में

सत्य/असत्य बताइये-

1. बाल श्रम का मुख्य कारण गरीबी है।
   (सत्य/असत्य)
2. कार्य स्थल पर सबसे ज्यादा शोषण पुरूषों का होता है।
   (सत्य/असत्य)
3. सामाजिक क्रोध , भय, दहशत के फलस्वरूप हिंसा की उत्पत्ति होती है।
   (सत्य/असत्य)
4. शोषण आर्थिक विषमता का परिणाम है।
   (सत्य/असत्य)
5. घर के भीतर महिलाओं पर होने वाले अत्याचार सामाजिक हिंसा के अन्तर्गत आता है।
   (सत्य/असत्य)
6. अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली सामाजिक समस्याओं की जड़ हैं ।
   (सत्य/असत्य)
7. सामाजिक समस्याओं का समाधान में मीडिया की कोई भूमिका नहीं होती है।
   (सत्य/असत्य)
8. सामाजिक समस्याओं का समाधान अपचारक और निरोधक विधि की सहायता से किया जाता ह
   (सत्य/असत्य)

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay type question)

1. प्रमुख सामाजिक समस्यायें क्या है?
2. घरेलू हिंसा क्या है ?
3. केाई दो कार्य स्थल बताइये जहॉ बाल श्रम का सर्वाधिक शोषण होता है।
4. हिंसा का मुख्य कारण क्या है ?
5. बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने हेतु कुछ सुझाव दीजिए।
6. विभिन्न कार्य स्थलों पर होने वाले शोषण का वर्णन कीजिए।
7. विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए अपने कुछ सुझाव दीजिए।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- डा0 अरुण कुमार सिंह- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन मोती लाल बनारसी दस नई दिल्ली।
- डा0 एम0एम0 लवानिया- भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र प्रकाशन रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर।
- डा0 रविन्द्र नाथ मुखर्जी डा0 भरत अग्रवाल व्यावहारिक समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन दिल्ली।
- http://www.mediaforrights.org/infopack/hindi-infopack/551

इकाई-5 सीमांतता(हाशियाकरण) एवम सामाजिक पीडा, विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों में भलाई /कल्याण और आत्म-विकास की सुविधा प्रदान करना (Marginalization and social suffering; facilitating wellbeing and self-growth in diverse cultural and socio-political contexts)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 सीमांतता / हाशियाकरण का अर्थ

5.4 भारत में सामाजिक हाशियाकरण

5.5 हाशियाकरण की प्रक्रियाएं

5.6 हाशियाकरण के कारण

5.7 सामाजिक पीड़ा

5.8 हाशियाकरण/ सामाजिक पीड़ा से निपटने हेतु किए गए प्रयास

5.9 सारांश

5.10 शब्दावली

5.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5.12 निबंधात्मक प्रश्न

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी राष्ट्र का निर्माण वहां के वासियों के सम्यक विकास से जुड़ा होता है। यदि विकास की धारा समाज के एक एक व्यक्ति तक सही ढंग से पहुंच रही है तो वह समाज खुशहाल होगा और राष्ट्र समृद्ध होगा। परंतु, यदि किसी राष्ट्र के नागरिकों के बीच विकास व प्रगति के साधनों का दुरुपयोग हो या संसाधनों पर खास वर्ग का कब्जा हो तो समाज में बड़ी संख्या में लोग पिछड़ते चले जाएंगे, हाशियाकृत होते चले जाएंगे। यही सामाजिक सीमांतता कहलाती है। इसी प्रकार, यदि किसी समाज का सदस्य या पूरा समुदाय युद्ध, अकाल,महामारी, अवसाद या मानसिक क्षति से उत्पन्न हालातों को झेलने के लिए मजबूर होता है तो इसे सामाजिक पीड़ा कहते हैं। पिछले इकाइयों में आपने विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया। निरक्षरता, गरीबी, जनसंख्या विस्फोट, लैंगिक पक्षपात, सामाजिक शोषण, बाल-श्रम, घरेलू-हिंसा, कार्यस्थल के शोषण आदि के संबंध में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत इकाई का मुख्य उद्देश्य सीमांतता या सामाजिक हाशियाकरण एवं सामाजिक पीड़ा के अर्थ, प्रकार, प्रक्रियाएं, कारण तथा इनसे निपटने के उपायों पर प्रकाश डालना है।

5.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप -

1. सीमांतता एवं सामाजिक पीड़ा के संप्रत्यय को समझ सके।
2. सामाजिक हाशियाकरण की प्रक्रियाएं बता सके।
3. हाशियाकरण के कारणों पर प्रकाश डाल सकें।
4. सीमांतता एवं सामाजिक पीड़ा से निपटने के विभिन्न उपायों पर चर्चा कर सकें।

5.3 सीमांतता/हाशियाकरण का अर्थ (Meaning of Marginalization)

हाशियाकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समुदाय सामाजिक विकास की मुख्यधारा में शामिल होने से वंचित रह जाता है, वह समाज की मुख्यधारा के हाशिए से बाहर हो जाता है। हाशियाकरण की प्रक्रिया दुनिया के कोने कोने में, हर तरह के समाज में चलती रहती है, कहीं धर्म के आधार पर, कहीं क्षेत्र तो कहीं भाषा के आधार पर। लिंग के आधार पर भेदभाव एवं हाशियाकरण तो लगभग पूरे संसार में व्याप्त है तभी तो नारी सशक्तिकरण की ओर आज पूरे विश्व का ध्यान है और मानवाधिकार तथा महिला अधिकार को लेकर पूरी दुनिया सजग है। फिर भी हाशियाकरण जारी है और व्यक्ति तथा समुदाय दुनिया के कोने कोने में इसका शिकार हो रहे हैं। हाशियाकरण एक ऐसा संप्रत्यय है जो अस्थिर एवं बहु स्तरीय होता है। यदि सामाजिक व्यवस्था काफी प्रभुत्व शाली हो तो वैश्विक स्तर पर भी किसी भी समुदाय को पूर्णत: हाशियाकृत किया जा सकता है और किसी खास क्षेत्र में कोई जातीय

समूह, कोई परिवार या कोई व्यक्ति भी हाशियाकृत हो सकता है। एक निश्चित सीमा के भीतर , हाशियाकरण सामाजिक स्तर से जुड़ा हुआ एक परिवर्तनीय घटना है। कोई व्यक्ति या समूह एक समय में उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त कर सकता है जबकि कुछ कालखंड के पश्चात वही हाशिया कृत भी हो सकता है। ऐसा प्राय: सामाजिक परिवर्तन की स्थिति में होता है। इसी प्रकार जीवन वृत्त की अवस्थाओं के परिवर्तन के साथ व्यक्ति की हाशियाई स्थिति भी परिवर्तित हो सकती है।

चार्ल्सवर्थ (2000) ने इंग्लैंड के एक स्टील निर्माण करने वाले शहर के कर्मचारियों के जीवन में होने वाले परिवर्तन का उदाहरण प्रस्तुत कर सामाजिक परिवर्तन के साथ हाशियाकरण की स्थिति की चर्चा की है। जीवन वृत्त की एक खास अवस्था में हाशियाकरण के जोखिम में वृद्धि या कमी हो सकती है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि बचपन में जो व्यक्ति हाशियाकरण के अंदर हो वह वयस्क होने पर भी उसी स्थिति में रहे। इसी प्रकार, एक गरीब मां बाप भी बच्चों के बड़े होने एवं होनहार निकलने पर अपनी हाशियाकृत स्थिति से बाहर निकल सकता है। ठीक विपरीत, नालायक संतानों की स्थिति में एक सामान्य मां बाप भी हाशियाकृत हो सकता है। इस दिशा में कगन एवं स्कॉट -रॉबर्ट्स (2002) का अध्ययन महत्वपूर्ण है जिन्होंने कोलकाता की एक स्लम बस्ती में वहां के लोगों की मदद करने वाले एक एनजीओ के सहयोग से किए गए अपने एक अध्ययन में पाया कि अपंग बच्चों के माता-पिता की स्थिति शनैः शनैः हाशियाकृत हो गई। इसी तरह के एक अन्य अध्ययन में वेंजेल केवोगेल,तथा गेलवर्ग (2000) ने पाया कि गृह विहीन अवस्था में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की स्थिति ज्यादा दयनीय और जोखिम भरा होती है। पीटर लियोनार्ड(1984) मैं अपनी पुस्तक"पर्सनालिटी एंड आईडियोलॉजी" में लिखा है कि सामाजिक हाशियाकरण का तात्पर्य समाज की उत्पादक गतिविधियों और/या पुनरूत्पादक गतिविधियों की मुख्यधारा से बाहर हो जाना है"। इसमें दो तरह के समूह पाए जाते हैं- एक ऐसा समूह है जो ऐच्छिक रूप से किसी सामाजिक व्यवस्था से हाशियाकृत हो जाते हैं। यह समूह प्रायः बहुत छोटा होता है, जैसे-कुछ खास धार्मिक समूह, नई उम्र के यात्री, समुदाय के कुछ सदस्य, कुछ कलाकार आदि। परंतु दूसरा समूह जो अनैच्छिक रूप से, उसके ना चाहते हुए भी, पूंजीवादी उत्पादक और पुनरूत्पादक गतिविधि की मुख्य धारा से अलग कर दिया जाता है-वास्तव में वहीं सामाजिक हाशियाकरण के अंतर्गत आता है। ऐसा समूह सामाजिक भेदभाव (रंगभेद, जातिभेद आदि) के कारण सामाजिक व्यवस्था से अलग अलग कर दिया जाता है और जीवन पर्यंत सामाजिक हाशियाकरण का दंश भोगता रहता है। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिनके लिए हाशियाकरण अर्जित होता है। ऐसा जीवन वृत्त की किसी अवस्था में विकलांगता के कारण या सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन के कारण होता है। उदाहरण स्वरूप-सोवियत संघ के धराशाई होने के पश्चात बेरोजगारी के कारण बड़ी संख्या में लोग सामाजिक हाशियाकरण का शिकार हुए। अकाल, बाढ़, युद्ध, भूकंप, महामारी आदि जैसी आपदाओं के कारण बड़ी संख्या में लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन होता है और सामाजिक हाशियाकरण में वृद्धि हो जाती है। चोम्स्की (2000),

पिल्गर (2002) आदि ने बताया कि जैसे-जैसे वैश्विक पूंजीवाद का विस्तार होता है इस तंत्र के अंतर्गत अधिकाधिक लोगों को आर्थिक विकास का मौका मिलता है, परंतु काफी संख्या में लोगों को अपनी जमीन, जीविका एवं सामाजिक सहायता के उपायों से हाथ भी धोना पड़ता है जिसके कारण सामाजिक हाशियाकरण को बढ़ावा मिलता है। हाशियाकरण के कारण ऐसे व्यक्ति जो इसका शिकार होते हैं उन्हें अपनी जीविका पर नियंत्रण नहीं रह पाता। वे उपलब्ध जीविका स्रोतों से वंचित रह जाते हैं और अन्ततः समाज में अपना उपयोगी योगदान दे सकने में असमर्थ हो जाते हैं। अतः किसी भी व्यक्ति अथवा समुदाय का हाशियाकरण ना सिर्फ समाज बल्कि पूरी मानवता के उपयुक्त विकास पर बुरा प्रभाव डालता है। जिस समाज में हाशियाई लोगों यह समुदायों की संख्या अधिक होती है वहां सामाजिक उपद्रव बना रहता है, सामाजिक मानक हीनता की स्थिति बनी रहती है, उस समाज का समूह मनोबल हमेशा निम्न स्तर का रहता है। उस समाज में हमेशा उथल-पुथल की स्थिति रहती है, नतीजतन समाज की उत्पादकता घट जाती है और समाज पिछड़ता चला जाता है।

5.4 भारत में सामाजिक हाशियाकरण (Marginalization in India)

भारतीय संदर्भ में सामाजिक हाशियाकरण का एक लंबा इतिहास है। इसमें यहां की जाति व्यवस्था, जो वर्ण व्यवस्था का विकृत रूप है, शनै शनै सामाजिक वंचना और अछूत वाद जैसी विकृति से ग्रसित हो गई और बड़े पैमाने पर सामाजिक हाशियाकरण एवं उपेक्षा की जन्म दात्री बनी। वैसे भारत में वर्तमान जातिगत व्यवस्था का विकास मुगल साम्राज्य के पतन और अंग्रेजी शासन के प्रारंभ के साथ ही हो गया था और सन 1860 से 1920 के मध्य तो अंग्रेजों ने भारतीयों को जाति के आधार पर बांटना भी प्रारंभ कर दिया था, परंतु इसका आधार वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक वर्ण आधारित व्यवस्था का जाति आधारित व्यवस्था में बदलाव की एक अनवरत प्रक्रिया है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री सुसान बेली (2001) ने अपनी पुस्तक "कास्ट, सोसाइटी एंड पॉलिटिक्स" मैं लिखा है कि भारत में जाति भारतीय जीवन का स्थिर तथ्य कभी नहीं रही और आज जो जाति प्रथा दिखाई दे रही है और इसका जो सामाजिक स्तरीकरण हुआ है वह मुगल काल के पश्चात दो चरणों में विकसित हुआ। 18वीं शताब्दी और मध्य 19वीं शताब्दी के कालखंड में तीन व्यवस्थाओं के तहत जाति व्यवस्था को बढ़ावा मिला- 1. पुरोहित पदानुक्रम,2. शासन और 3. सशस्त्र सन्यासी। इसमें ब्रिटिश उपनिवेशवाद की बडी महत्वपूर्ण भूमिका रही। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए जो नियम बनाएं उसमें हिंदू और मुस्लिम कानूनों के लिए अलग-अलग औपनिवेशिक प्रशासनिक प्रैक्टिस शुरू कर दिया और शनै: शनै: धर्मगत और जातिगत भेदभाव भारतीय समाज का हिस्सा बन गया। स्वभावत: समाज के पढ़े-लिखे लोग, आर्थिक रूप से मजबूत लोग सामाजिक स्तर को प्राप्त हुए और विभिन्न सेवाओं में निचले स्तर के लोग, मजदूरी करके जीने वाले लोग निम्न सामाजिक स्तर को प्राप्त हुए और धीरे-धीरे ऐसे लोग सामाजिक हाशियाकरण के शिकार हो गए। भारत में जाति व्यवस्था जाति का एक अलग किस्म का नृवंशविज्ञानी उदाहरण हैजिसका

उद्गम तो प्राचीन भारत में ही हो गया था। इसका रूपांतरण एवं विकास मध्यकालीन पूर्व आधुनिक एवं आधुनिक भारत में भी विभिन्न शासकों के समय में होता रहा, खासकर मुगल शासन और अंग्रेजी शासन में। भारतीय महाद्वीपों में भी जाति आधारित अंतर विभिन्न क्षेत्रों और धर्मों में दिखाई देता रहा। इनमें नेपाली, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, यहूदी, सिख आदि शामिल है, सुधारवादी हिंदू आंदोलनों द्वारा इस्लाम, सिख, ईसाई आदि धर्मों द्वारा वर्ण एवं जाति प्रथा के प्रति आवाज बुलंद होती रही, फिर भी जाति प्रथा व्याप्त रही और विकृत रूप लेती गई। 'वर्ण ' की व्याख्या वर्ग के रूप में की गई जो वैदिक काल के 4 सामाजिक वर्गों को इंगित करता है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। शूद्रों को, जो आज दलित के रूप में भी जाने जाते हैं, अतीत में वर्ण व्यवस्था से बाहर कर दिया गया तथा उन्हें अछूत करार कर दिया गया। वर्ण जो वर्ग आधारित था जाति में परिणत होकर जन्म आधारित हो गया। जाति आधारित पेशा और प्रतिष्ठा निर्धारित हो गई, नतीजतन बड़ी संख्या में निम्न श्रेणी की जातियों का हाशियाकरण हो गया। वर्ण से जाति और वर्ग से जन्म आधारित सामाजिक व्यवस्था उत्तर वैदिक काल से प्रारंभ होकर एक लंबे कालखंड तक चलती रही। एक गैर सरकारी आंकड़े के अनुसार आज की तिथि में भारत में लगभग 30 करोड लोग सामाजिक हाशियाकरण के शिकार हैं। जाति आधारित विभेद के कारण विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक निष्कासन, पृथक्कीकरण, अस्वीकरण एवं अन्यनिषेध एवं प्रतिबंध भी देखने को मिल रहे हैं। दासता एवं बंधुआ मजदूरी भी इसी का परिणाम है। हालांकि कुछ कानूनी संरक्षण और और धनात्मक प्रयासों के कारण जाति-आधारित हाशियाकरण में वर्तमान में कुछ कमी आई है।

भारतीय समाज में सर्वाधिक हाशियाकरण अनुसूचित जाति और जनजाति का हुआ है। भारत में जनजातियां सामाजिक व आर्थिक वंचना का शिकार रही हैं इसका कारण उनकी संजातीयता है। इनके पास ना जमीन है और ना आए के ऐसे स्रोत जिन पर इनका नियंत्रण है। जंगल में रहकर भी ये जमीन, पानी और वन संपदा से वंचित हैं। इनमें से ज्यादातर कृषि, उद्योग या बागवानी के क्षेत्रों में कार्य करने वाले श्रमिक हैं। इनमें भुखमरी, गरीबी, अशिक्षा एवं अस्वस्थता व्याप्त है। अनुसूचित जातियों की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। वे अछूतवाद का शिकार है। गांव या शहर में में उन्हें सवर्णों के साथ रहने की छूट नहीं है। उनके लिए गांव का बाहरी हिस्सा, सरकारी जमीन का टुकड़ा, सड़क किनारे, रेलवे लाइन के किनारे स्लम बस्तियों में या बहुत ही निर्धन आवासीय अवस्था भी मुश्किल से उपलब्ध होती है। दलितों को हाशियाकरण के चलते नागरिक, राजनीतिक व सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है। हजारों साल से उन्हें उच्च वर्ग के लोगों या ऊंची/ दबंग जातियों के रहमो करम पर निर्भर रहना पड़ता है। न इन के पास अपना घर है ,न खेत या खलिहान। इनकी बड़ी संख्या आज भी दूसरों के खेतों में मजदूरी करके, उद्योगों में श्रमिक बन कर या जमींदारों के यहां बंधुआ मजदूर बनकर जिंदगी बसर करते हैं।

कई समाज शास्त्रियों का कहना है कि दलित आज एक खास जाति न रह कर एक ऐसा समूह बन गया है जो सामाजिक अयोग्यता, उत्पीड़न, निस्सहायता , गरीबी, अशिक्षा, अल्प क्रय शक्ति और बहुत ही दीन हीन आवासीय अवस्था का सामना कर रहा है ,जो आज भी शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सांवेगिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव का शिकार है तथा जिसे न तो किसी तरह की सामाजिक हकदारी है और न ही जीविका हेतु कोई संसाधन और यदि है भी तो बहुत ही निम्न स्तर का। भारतीय समाज में आज निम्नलिखित स्तर के लोग सामाजिक हाशियाकरण के अधिक शिकार हैं –

- स्त्रियां:-भारतीय समाज में किसी भी जाति या धर्म की महिलाएं तुलनात्मक रूप से अधिक हाशियाकृत दिखाई देती हैं क्योंकि उन्हें विभिन्न प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया । मनुस्मृति के समय से ही महिलाओं को "बचपन में पिता के संरक्षण में, जवानी में पति के संरक्षण में और बुढ़ापे में पुत्र के संरक्षण में " रखने की बात कही गई । दुनिया के ज्यादातर समाजों का पुरुष प्रधान होने के कारण महिलाओं की भूमिका तय करने का कार्य भी पुरुषों द्वारा हुआ, नतीजतन लगभग दुनिया के ज्यादातर समाज ने पुरुषों की तुलना में महिलाओं को कम अधिकार दिए,साथ ही उनके लिए पेशे की सीमाएं भी तय की गई । भारत में तो महिलाओं के लिए घर की चारदीवारी से बाहर निकलने तक की मनाही थी । बाद में शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में व्यवसाय के दरवाजे खुले । परंतु धीरे-धीरे व्यवसाय के लगभग सारे दरवाजे खुलते चले गए।

- अपंग व्यक्ति:- सामाजिक हाशियाकरण का बड़े पैमाने पर प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है जो किसी ना किसी प्रकार की अपंगता के शिकार होते हैं - चाहे पोलियो ग्रस्त होने के कारण शारीरिक विकलांगता हो अथवा अंधापन, बहरापन या मानसिक मंदता। समाज हर प्रकार की अपंगता को कार्य करने कीअक्षमता से जोड़ता है और उन्हें अलग थलग कर देता है । परिणामत भेज सामान्य व्यक्तियों को प्राप्त होने वाले लाभ व सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं ।

- वयोवृद्ध:-उम्र का अंतिम पड़ाव विभिन्न प्रकार की शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक वह सामाजिक समस्याओं को लेकर आता है। इन समस्याओं को हल कर पानी में असफल होने पर वयोवृद्ध व्यक्ति सामाजिक हाशियाकरण का शिकार हो जाता है और नतीजतन न सिर्फ उसे अनेक प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है बल्कि अकेलेपन की जिंदगी गुजारने को भी विवश होना पड़ता है ।

- जातीय अल्पसंख्यक:- जातीय अल्पसंख्यक से तात्पर्य किसी देश की आबादी के वैसे हिस्से से है जो अपनी अलग संस्कृति, रहन सहन, रीति रिवाज, पर्व त्यौहार के कारण मुख्य आबादी से भिन्न दिखता है और इस भिन्नता के कारण उसे मुख्य आबादी को प्राप्त सामाजिक लाभ व

सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है। ऐसा समूह आर्थिक पिछड़ेपन का शिकार तो होता है, शैक्षिक और स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं से भी वंचित रहता है। कुछ समूह तो आवारा समूह होता है जो कभी एक स्थान पर टिक भी नहीं पाता, हमेशा स्थान बदल बदल कर घुमक्कड़ की जिंदगी जीना। ऐसे समूह छोटे होते हैं और प्राय: सड़क के किनारे या किसी सरकारी मैदान या जमीन में टेंट लगाकर कुछ दिन रह लेते हैं, फिर वहां से चल देते हैं। ऐसे समूह सामाजिक हाशियाकरण के अंदर हमेशा बने रहते हैं।

- जाति समूह: भारत में सामाजिक हाशियाकरण के अंतर्गत बड़े पैमाने पर यहां की वैसी जातियां आती हैं जो निम्न-सामाजिक स्तर प्राप्त होने के कारण समाज की मुख्यधारा से काफी पिछड़ी हुई है। इनमें अनुसूचित जाति एवं अति पिछड़ा वर्ग की संख्या सर्वाधिक है जो आज भी सामान्य वर्ग के लोगों की तुलना में शिक्षा, स्वास्थ्य, रहन सहन आदि के मामले में काफी पीछे हैं। इनकी क्रय शक्ति अत्यंत निम्न स्तर की है, शिक्षा का स्तर गिरा हुआ है, रहने को आवास नहीं है- बल्कि यूं कहें की आजादी के 75 वर्षों के बाद भी इन्हें शौचालय संबंधी सीख दी जा रही है और पीने के पानी की व्यवस्था की जा रही है । यानी, सामान्य अधिकार के उपयोग, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों के उपयोग के मामले में अज्ञानता और अनभिज्ञता के कारण ये जातियां लंबे समय से सामाजिक हाशियाकरण का शिकार बनी हुई हैं।

- जनजातियां: भारत में अनुसूचित जनजातियों की संख्या लगभग10 करोड़ है और एक सामाजिक एवं आर्थिक रूप से काफी पिछड़े हुए हैं। भारत में ये वनवासी के नाम से जाने जाते हैं, ज्यादातर आबादी जंगलों में ही छोटे-छोटे कच्चे घरों, झोपड़ियों में रहती है। इनके पास जंगल में रहते हुए भी न अपनी जमीन है, न जल और न हीं जंगल। बहुत कम लोगों के पास आर्थिक विकास हेतु सुविधाएं उपलब्ध हैं। ज्यादातर वंचित समूह है और मुख्यधारा से कटे हुए हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का घोर अभाव है। वास्तव में, भारत में ज्यादातर जनजातीय समूह सामाजिक हाशियाकरण का शिकार हैं। अतः लगभग पूरी जनजाति को हाशियाकृत समूह कहा जा सकता है।

5.5 हाशियाकरण की प्रक्रियाएं (Process of Marginalization)

बर्टन एवं कगन (1996) ने हाशियाकरण में सामूहिक सामाजिक क्रियाओं को बढ़ावा देने अथवा रोकने की कुछ सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है जो निम्नवत है –

- गरीबी एवं आर्थिक सीमांतता:-सामाजिक हाशियाकरण के अंतर्गत आने वाले लोगों या समुदायों मैं समाज की आर्थिक गतिविधियों में बहुत ही कम संलग्नता होती है । उनकी आय

के स्रोतों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ तो दैनिक मजदूरी पर जीवन गुजारते हैं तो कुछ सरकार से प्राप्त सहायता पर। इनके पास नियमित काम धंधे नहीं होते, चैरिटी पर जीने की आदत विकसित हो जाती है। गरीबी, निर्भरता एवं शर्मिंदगी की भावना इनके दिन-प्रतिदिन की आर्थिक अव्यवस्था एवं सामाजिक हाशियाकरण के पहलू होते हैं।

- खराब समर्थन नेटवर्क्स एवं सामाजिक हाशियाकरण :-सामाजिक हाशियाकरण कीसमस्याकी जड़ में सामाजिक नेटवर्क से हाशियाकृत व्यक्तियों या समुदाय का सापेक्षिक अथवा पूर्णता बहिष्करण है। वैसे व्यक्ति जो जन्मजात रुग्ण अथवा दिव्यांग (विकलांग) होते हैं, यदि वह धनी परिवार से हैं तब तो सामाजिक नेटवर्क उपलब्ध हो जाता है, अन्यथा खराब समर्थन नेटवर्क के कारण सामाजिक हाशियाकरण के अंतर्गत आ जाते है। ऐसे लोगों का अपने आस-पड़ोस अथवा विभिन्न सहायता समूह से संपर्क कट जाता है, और यदि रहता भी है तो बहुत ही कमजोर। ऐसे व्यक्तियों के पास सामाजिक समस्याओं का अंबार होता है और वह कार्य की दुनिया से पृथक होकर बेकारी की जिंदगी जीने को मजबूर होते हैं। वैसे व्यक्ति जो असहाय हैं अथवा जिनके बच्चे दिव्यांग/असहाय हैं वे अपने मित्रों,रिश्तेदारों से अस्वीकृत कर दिए जाते हैं अथवा अलग अलग हो जाते हैं।

5.5.1 हाशियाकरण के वैचारिक पहलू:-हाशियाकरण के शिकार व्यक्ति अथवा समुदाय जहां एक तरफ आर्थिक अव्यवस्था से गुजर रहे होते हैं वहीं दूसरी तरफ सामाजिक अव्यवस्था के शिकार भी हो जाते हैं। यह दोनों ही मौलिक पदार्थमुलक अपमान है। इसके परे, एक हाशियाकृत समूह का सदस्य होने के कारण इन्हें कहीं अधिक मनोसामाजिक- वैचारिक धमकियों का जोखिम उठाना पड़ता है। इसमें प्रथम है अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी व्यक्ति की पहचान की परिभाषा- यानी समाज में प्रभावशाली समूहों के हित में किसी व्यक्ति के हाशियाकृत पहचान की वैचारिक परिभाषा। उदाहरण स्वरूप, ऐसा कोई भी सामाजिक आंदोलन नहीं है जो दबे कुचले और हाशियाकृत समूहों के लिए चलाया गया हो और उसकी इस आधार पर आलोचना न हुई हो कि "अरे ये लोग ऐसे ही होते हैं,इनका चरित्र ही ऐसा है"। हाशियाकृत व्यक्ति या समूह के संबंध में इस तरह की वैचारिक धारणा इनके लिए अन्य कई तरह की सामाजिक समस्याएं भी खड़ी करती हैं और अंत में खुद भी स्वीकार करने लगते हैं कि इनकी किस्मत में यही लिखा हुआ है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है (फैनन ,1986 ; मार्टिन- बेरो,1996-अ) कि हाशियाकृत व्यक्ति और उनका समूह अत्यंत ही भाग्यवादी होते हैं और भाग्यवादिता को वे अंगीकार कर चुके होते है। इस कारण उनका एक विशेष सांस्कृतिक संदर्भ, जैसे- निर्धनता की संस्कृति, में व्यक्तित्व गुण विकसित हो जाते हैं। मनो सामाजिक रूप से, हाशियाकृत समूह भाग्यवादिता को अंगीकार कर लेने के कारण सामाजिक प्रभुत्व को भी स्वीकार करना अपनी नियति समझते हैं। दबंग समूह द्वारा किए गए अत्याचार

और हिंसा को स्वीकार करने की लाचारी उन्हें भाग्यवादी अभिवृत्ति को विकसित करने में मदद करती है और उनका पूरा परिवेश शोषितोँ का हो जाता है।

5.6 हाशियाकरण के कारण (Causes of Marginalization)

सामाजिक हाशियाकरण किसी भी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत तब उत्पन्न होता है जब उस व्यवस्था को बनाए रखने और उसे उन्नत बनाने के क्रम में उसके ऐसे सदस्यों को व्यवस्था से अलग कर दिया जाता है जिन जिनके पास उस सामाजिक व्यवस्था में बने रहने हेतु उपयुक्त क्षमता नहीं होती या जो उस व्यवस्था के लिए अवांछित होते हैं। सामाजिक व्यवस्था से तिरस्कृत किए गए लोगों का एक समूह बन जाता है जो हाशियाकृत समूह कहलाता है। यह समूह अपनी सुरक्षा और साधन का उपाय खुद करता है । सामाजिक व्यवस्था की मुख्यधारा से इसका संबंध कट जाता है। निम्नलिखित कारणों से कोई व्यक्ति या समुदाय सामाजिक व्यवस्था की मुख्यधारा से तिरस्कृत होकर अपना एक हाशियाकृत समूह बना लेता है -

- बहिष्करण:-अपनी अयोग्यता या सामाजिक व्यवस्था के हाशिए पर खड़े होने के कारण जब सामाजिक व्यवस्था के द्वार को व्यक्ति या समुदाय बंद पाता है तो उसे मुख्यधारा से अलग होना पड़ता है। जबकि वैसे व्यक्ति जो सामाजिक व्यवस्था के मध्य स्थित होते हैं उन्हें हर सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। हाशियाकृत व्यक्ति को सामाजिक वंचना एवं निषेध का सामना करना पड़ता है, न तो उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक सहायता मिल पाती है और न ही कोई अन्य सामाजिक लाभ।

- वैश्वीकरण:- वैश्वीकरण के कारण विश्व बाजार तो सबके लिए खुल गया है, परंतु यह मानवीय मूल्यों की कीमत पर खुला है। वैश्वीकरण ने अमीरों और गरीबों के बीच एक गहरी खाई बना दी है- अमीर और अमीर हुआ है, गरीब और गरीब। इससे न्यूनीकरण को बढ़ावा मिला है। सामाजिक हाशियाकरण की वृद्धि में यह एक महत्वपूर्ण कारक है।

- विस्थापन:- दुनिया में जैसे-जैसे विकास की गति बढ़ती है, विस्थापन की समस्या भी उसी गति से बढ़ती है और परिणामतः न्यूनीकरण को बढ़ावा मिलता है। नदी घाटी योजना, विद्युत परियोजना, हवाई अड्डे का निर्माण, कारखानों का निर्माण, सड़कों एवं रेलवे लाइनों का विस्तार-ये सभी निस्संदेह विकास के प्रतीक हैं, परंतु इनके कारण बड़ी संख्या में लोगों का पलायन होता है, उसके पूर्व स्थापित रोजगार छीन जाते हैं तो कुछ के प्रभावित हो जाते हैं। विस्थापन के कारण सामाजिक हाशियाकरण को बढ़ावा मिलता है।

- आपदा:-आपदाओं का स्वरूप विश्वव्यापी है और इससे मनुष्य द्वारा किए जा रहे हैं विकासात्मक कार्यों की वास्तविक परीक्षा होती है, आपदाएं प्राकृतिक भी होती हैं, मानव निर्मित भी। दोनों ही

तरह की आपदाएं हाशियाकृत व्यक्ति में रक्षा हीनता उत्पन्न करती हैं, साथ ही नए व्यक्तियों/समुदायों को हाशियाकृत कर देती हैं। महामारी, भूकंप, बाढ़, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाएं हैं जबकि किसी फैक्ट्री से विषैली गैस का लीक होना, तटबंधों का टूटना, परमाणु बम गिराना, युद्ध से उत्पन्न हालात आदि मानव निर्मित आपदाएं हैं। इन दोनों ही आपदाओं से सामाजिक हाशियाकरण में वृद्धि होती है।

5.7 सामाजिक पीड़ा (Social Pain/Suffering)

सामाजिक पीड़ा से तात्पर्य व्यक्ति की उस दयनीय स्थिति से है जिसमें वह युद्ध, अकाल, महामारी, अवसाद या मानसिक क्षति से उत्पन्न हालातों को झेलने के लिए विवश होता है, मजबूर होता है उसे किसी प्रकार की सहायता उपलब्ध नहीं हो पाती और उसके समक्ष मानवीय समस्याएं विकराल रूप धारण किए खड़ी नजर आती हैं। ये सभी समस्याएं राजनीतिक, आर्थिक एवं संस्थागत शक्ति की उपज होती है तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति इन शक्तियों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न मानवीय अनुक्रियाएं होती हैं। सामाजिक पीड़ा के कई रूप हैं, जैसे-तनाव, उत्पीड़न, गरीबी का अनुभव, किसी के प्रभुत्व या वर्चस्व का अनुभव। ये सभी व्यक्ति को दयनीय अवस्था में ला देते हैं और शनै: शनै;व्यक्ति सामाजिक रूप से हाशियाकृत हो जाता है।

इमैनुएल, रेनॉल्ट ने अपनी पुस्तक "सोशल सफरिंग" में स्पष्ट किया है कि दुख के विविध रूपों में सामाजिक पीड़ा भी एक महत्वपूर्ण दुख है जो सामाजिक सरोकार का विषय है। सामाजिक विज्ञानों में उपेक्षित इस महत्वपूर्ण विषय को रेनॉल्ट ने समकालीन बहस का विषय बना दिया, उनके ज्ञान-मीमांसा और राजनीतिक दांव को जोड़ा, सामाजिक पीड़ा एवं सुसंगत अवधारणा का निर्माण किया ताकि व्यक्ति को उसकी सामाजिक दुनिया की बेहतर समझ हो सके। रेनॉल्ट का तर्क है कि सामाजिक पीड़ा को सामाजिक सिद्धांत के साथ-साथ सामाजिक आलोचना में गंभीरता से लिया जाना चाहिए। रेनॉल्ट उन तरीकों का एक व्यवस्थित विवरण प्रदान करता है जिसमें सामाजिक पीड़ा की अवधारणा की जा सकती है। वह सामाजिक पीड़ा के राजनीतिक संदर्भों के राजनीतिक उपयोगों की जांच करता है, सामाजिक विज्ञान में समकालीन विवादों का सर्वेक्षण करता है, और एक एकीकृत मॉडल का प्रस्ताव करने और सामाजिक आलोचना के प्रभावों पर चर्चा करने से पहले आर्थिक, सामाजिक चिकित्सा, समाजशास्त्रीय और मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों के बीच अंतर करता है। सामाजिक पीड़ा के कुछ महत्वपूर्ण कारक है:-

1. बेरोजगारी एवं अर्द्ध - रोजगारी,
2. जनसंख्या का बड़े स्तर पर गांव से शहर के केंद्रों में स्थानांतरित होना,
3. मूल्यों का टकराव

4. सामाजिक तनाव
5. हिंसा एवं संघर्ष
6. गृह-युद्ध।

5.8 हाशियाकरण से निपटने हेतु किए गए प्रयास (Efforts to deal with marginalization)

हाशियाकरण या सीमांतता से निपटने के लिए न सिर्फ हाशियाई समूहो एवं सामाजिक पीड़ा से ग्रसित लोगों द्वारा आवाज उठाई गई है बल्कि दबंगों एवं अन्यों के वर्चस्व का विरोध करने हेतु ये लगातार संघर्ष करते आ रहे हैं। इन्होंने अपने लंबे इतिहास में अनेकों रणनीतियों के सहारे हालात को बदलने का प्रयास किया है। धार्मिक सांत्वना, सशस्त्र संघर्ष, शिकार, आर्थिक बेहतरी, आदि के सहारे अपनी स्थिति में सुधार हेतु इन समूहों द्वारा तरह तरह के रास्ते अपनाए गए हैं। आजादी के 7 दशक बीत जाने के बाद भी इस तरह का संघर्ष और दलीलें जारी हैं, हालांकि उनका स्वरूप बदल गया है। आज हमारे देश के आदिवासी, दलित, मुसलमान एवं अन्य अल्पसंख्यक समूह, महिलाएं एवं अन्य हाशियाकृत समूह यह दलील दे रहे हैं कि एक लोकतांत्रिक देश का नागरिक होने के नाते उन्हें भी बराबर का हक मिलना चाहिए और उनके अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए। इन संघर्षों एवं आंदोलनों का परिणाम है कि आज इन समूहों को विकास का लाभ प्रदान करने के लिए सरकार की ओर से अनेकों नीतिगत प्रयास किए गए हैं ताकि इस सीमांत समूहों की भलाई एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके। मौलिक अधिकारों का उपयोग: -सीमांत समूहों ने अपने मौलिक अधिकारों का उपयोग 2 तरह से किया है –

- अपने मौलिक अधिकारों पर जोर देकर उन्होंने सरकार को अपने साथ हुए अन्याय पर ध्यान देने के लिए मजबूर किया है।
- कानूनों को लागू करने के लिए इन समूहों ने सरकार पर दबाव डाला है।

कई बार सीमांत समूहों के संघर्ष के कारण ही सरकारों को मौलिक अधिकारों की भावना के अनुरूप कानून भी बनाने पड़े हैं। उदाहरण स्वरूप, संविधान के अनुच्छेद-17 के अनुसार अस्पृश्यता या छुआछूत का उन्मूलन किया जा चुका है। अब दलितों को स्कूलों, मंदिरों या अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जाने और सार्वजनिक सुविधाओं का उपयोग करने से कोई रोक नहीं सकता। इसी प्रकार, संविधान के अनुच्छेद-15 में कहा गया है कि भारत के किसी भी नागरिक के साथ धर्म, नस्ल ,जाति, लिंग, भाषा या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। समानता के अधिकार का हनन होने पर वंचित समूह इस प्रावधान का सहारा लेते हैं। यदि व्यक्ति या सत्ता द्वारा कानून का पालन नहीं किया जाता है तो हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट उसके अधिकारों की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहता है। मुसलमानों एवं अन्य

अल्पसंख्यक समुदायों को भी अपने धर्म और सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकारों की स्वतंत्रता बनाए रखने का अधिकार प्राप्त है और हमारा संविधान इन अल्पसंख्यकों को इनके सांस्कृतिक अधिकारों की व्यवस्था करके इन्हें सांस्कृतिक न्याय देने का प्रयास करता है ताकि इन समूहों की संस्कृति पर ना तो बहुत संख्यक समुदाय की संस्कृति का वर्चस्व और ना ही वह नष्ट हो।

सीमांत समूहों के लिए कानून: -सीमांत या हाशियाकृत समूहों के कल्याण और विकास के लिए, इन्हें देश की मुख्यधारा में शामिल करने के लिए सरकार ने न विभिन्न आयोगों का गठन किया है, बल्कि आयोग और समितियों की सिफारिशों के आधार पर इन समूहों के संरक्षण, कल्याण व विकास के लिए तरह तरह की योजनाओं का निर्माण भी किया है। सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देने के लिए दलितों, आदिवासियों, महिलाओं के लिए मुफ्त या रियायती दरों पर छात्रावास की व्यवस्था की गई है, शिक्षण संस्थानों, नौकरियों, पंचायतों, विधानसभाओं, पार्लियामेंट आदि में आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों के लिए वजीफे की व्यवस्था, विशेष थानों का गठन,सरकारी स्कूलों में छात्राओं के लिए विशेष योजनाएं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहन देने हेतु प्रदान की गई हैं। दलितों और आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा हेतु 1989 में एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण कानून बनाया गया जिसे" अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989" के नाम से जाना जाता है। यह कानून 1989 में दलितों तथा अन्य समुदायों की मांगों के जवाब में बनाया गया था। उस समयइस बात के लिए सरकार पर भारी दबाव पड़ रहा था कि वह दलितों और आदिवासियों के साथ दिन प्रतिदिन होने वाले दुर्व्यवहार और अपमान पर रोक लगाने के लिए ठोस कदम उठाए। इसी प्रकार, हाथ से मैला उठाने की प्रथा समाप्त करने हेतु कानून, मुस्लिम महिलाओं की मांग पर उन्हें तलाक की सामाजिक पीड़ा से बचाने हेतु तीन तलाक कानून इस दिशा में उठाए गए महत्वपूर्ण कदम हैं।

5.9 सारांश (Summary)

सीमांतताएक सामाजिक प्रक्रिया है इसे सामाजिक हाशियाकरणभी कहते हैं। हाशियाकरण के कारण व्यक्ति यासमुदाय समाज की मुख्यधारा के हाशिए में चला जाता है, यानी हाशियाकरण की स्थिति मेंव्यक्ति या समुदाय को अपनी जीविका पर नियंत्रण नहीं रह पाता। वे उपलब्ध जीविका स्रोतोंसे वंचित रह जाते हैं और समाज के विकास में अपना योगदान सहीढंग सेनहीं दे पाते हैं। भारत में सामाजिक हाशियाकरण का एक लंबा इतिहास है। वैदिक काल से लेकर अब तक शनैःशनैः कुछखास समूह के लोग, विशेषकर दलित व आदिवासी समुदाय के लोग, महिलाएं, विकलांग सामाजिकहाशियाकरण का शिकार होतेआए हैं। सामाजिक हाशियाकरण के निम्नलिखित व्यक्तिव व्यक्ति समूहज्यादा शिकार होते हैं- स्त्रियों, अपंग व्यक्ति, वयोवृद्ध, जातीय अल्पसंख्यक, जाति समूह एवं जनजातियां। हाशियाकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत गरीबी एवंआर्थिक सीमांतता, खराब समर्थन नेटवर्क्स एवं सामाजिक हाशियाकरण तथा हाशियाकरण के वैचारिकपहलुओं की चर्चाबर्टन एवं कगन (1996) द्वाराकी गई है। सामाजिक हाशियाकरणके कारणों में

1.बहिष्करण 2.वैश्वीकरण 3.विस्थापन तथा 4.आपदा महत्वपूर्ण हैं। सामाजिक पीड़ा से तात्पर्यव्यक्ति या समुदायकी उस दयनीय स्थिति से हैजिसमें वह युद्ध, अकाल, महामारी, अवसाद या मानसिकक्षति से उत्पन्न हालातों को झेलने के लिए विवश होता है। हाशियाकरण और सामाजिक पीड़ा से निपटने के लिएसरकार द्वारा उठाए गए कदम /किए गए उपाय निम्नवत हैं-मौलिक अधिकारों की रक्षा के उपाय, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम1989, मानवाधिकार, महिला अधिकार, अनुसूचित जाति जनजाति आयोग, वंचित वर्गों हेतु शिक्षा, नौकरी, पंचायत, स्थानीय निकाय, विधानसभा, पार्लियामेंट में आरक्षण आदि।

5.10 शब्दावली (Vocabulary)

- **सीमांतता:-** समाज की उत्पादक गतिविधियों या/और पुनरूत्पादक गतिविधियों की मुख्यधारा से बाहर हो जाना सीमांतता या हाशियाकरण कहलाता है।

- **सामाजिक पीड़ा:-** वह स्थितिजिसमें व्यक्ति युद्ध, अकाल, महामारी, अवसाद या मानसिक क्षति से उत्पन्न हालातों को झेलने के लिए विवश व मजबूर होता है, सामाजिक पीड़ा कहलाती है।

- **आर्थिक सीमांतता:-**समाज की आर्थिक गतिविधियों मेंबहुत कम संलग्नता होने के कारण आय के स्रोतों पर नियंत्रण न होनाऔर घोर गरीबी का सामना करना आर्थिक सीमांतता कहलाती है।

5.11 स्व मूल्यांकनहेतु प्रश्न (Questions for Self-Assessment)

1. भारत में इनमें से कौन से सामाजिक हाशियाकरणके अंतर्गत नहीं रखे गए हैं ?

   अ.अनुसूचित जातिब.स्त्रियां

   स.जनजातियांद.इनमें से कोई नहीं

2. समाज में उपलब्ध आय के स्रोतों पर नियंत्रणना रहने के कारण जब व्यक्तिहाशियाकृतहो जाता है तो उसे कहते हैं -

   अ.सामाजिक पीड़ाब. आर्थिक सीमांतता

   स.सामाजिक हाशियाकरणद.इनमें से कोई नहीं

5.12 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. सीमांततासे आप क्या समझते हैं ? भारत में सामाजिकसीमांतता पर प्रकाश डालें ।
2. सामाजिक सीमांतता के अंतर्गत आने वालेव्यक्तियों या समुदायों को रेखांकित करें।
3. हाशियाकरण की प्रक्रियाओं का उल्लेख करें। सामाजिक हाशियाकरण क्यों होता है?

5.13 संदर्भ ग्रंथ सूची (Reference)

1. रेनॉल्ट , ई. , सोशल सफरिंग: सोशियोलॉजी, सायकोलॉजी, पॉलिटिक्स, रोमैनएंडलिटिल फिल्डइंटरनेशनल, 2017.
2. आशीषसक्सेना, मार्जिनलिटी, एक्सक्लूजन एंड सोशल जस्टिस, रावत पब्लिकेशंस , 2013.

इकाई 6 - संस्कृति एवं व्यक्तित्व का अर्थ, संस्कृति एवं व्यक्तित्व के प्रकार
(Meaning of culture, personality and types of culture and personality)

इकाई संरचना-

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप

6.4 संस्कृति की सामान्य विशेषतायें

6.5 संस्कृति के प्रकार

6.6 संस्कृति के अध्ययन एवं उसकी तुलना की विधि

6.7 व्यक्तित्व का अर्थ

6.8 व्यक्तित्व के प्रकार

6.9 सारांश

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

जन्म के समय शिशु न सामाजिक होता है और न ही असामाजिक, वह केवल कुछ जैविक गुणों वाला एक जीवित प्राणी होता है, जो धीरे-धीरे वह समाज की विशेष संस्कृति में पलते हुए सामाजिक प्राणी बन जाता है तथा उस संस्कृति के अनुसार ही उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। शिशु जिस समाज में पैदा होता है उस समाज की भाषा बोली रहन सहन हाव-भाव एवं व्यवहार से संस्कृति को सीखने लगता है अर्थात बच्चा वहीं करता है जो वह अपने आस-पास के वातावरण में देख रहा होता है विकास के साथ-साथ बच्चा भाषा बोली रहन-सहन मूल्य विश्वास आदि सभी कुछ सीखने लगता है, जो उसके

व्यक्तित्व के विकास का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ होते हैं।प्रत्येक समाज समूह एवं देश की एक अलग संस्कृति होती है। उसका अपना ताना बाना होता है। प्रत्येक समाज अपने लोगों को अपने मूल्य परम्परायें विश्वास, रूढियों कानून आदर्श सभी कुछ यानि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यवहार के द्वारा शिशु को अपनी संस्कृति हस्तान्तरित करता है। जैसे बच्चा बड़ा होता है, परिवार व अन्य लोगों से अर्न्तक्रिया करने लगता है, व भाषा मूल्य आदर्श परम्परायें, विश्वास, रूढ़िया, कानून, नैतिकता आदि सभी कुछ सीखने लगता है। उस संस्कृति का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर दिखाई देता है। अगर हम यों कहें कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसकी संस्कृति की देन है, तो यह कहना गलत नहीं होगा। व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना व्यक्ति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं द्वारा निर्धारित की जाती है, अर्थात व्यक्तित्व एवं संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शायद इसलिए व्यक्तित्व को संस्कृति का आधार और संस्कृति का परिणाम कहा जाता है। अतः किसी व्यक्ति के सामाजीकरण को समझने से पूर्व और व्यक्तित्व के सन्दर्भ में बताने से पूर्व उसके सांस्कृतिक परिवेश को समझना आवश्यक होगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संस्कृति व व्यक्तित्व का अर्थ, संस्कृति के प्रकार व अध्ययन विधियों से अवगत हो सकेंगे।

6.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

1. संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप बता सकेंगें।
2. संस्कृति को परिभाषित कर सकेंगें।
3. संस्कृति की विशेषतायें बता सकेंगें।
4. संस्कृति के प्रकार बता सकेंगें।
5. व्यक्तित्व का अर्थ बता सकेंगें व उसे परिभाषित कर सकेंगें।
6. संस्कृति के अध्ययन एवं उसकी तुलना की विधियों को समझ सकेंगे ।

6.3 संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and nature of culture)

शाब्दिक रूप से संस्कृति शब्द की उत्पत्ति "संस्कृत" शब्द से हुई है संस्कृत का अर्थ होता है''परिष्कृत''इस प्रकार संस्कृति का सम्बन्ध उन सभी तत्वों की समग्रता से है जो समूह में व्यक्ति को परिष्कृत कर सकें । प्रत्येक मानव शिशु पर संस्कृति का प्रभाव ही नहीं पड़ता वरन वह उसको आत्मसात भी करता है और बदले में दूसरों को देता है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते

हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे अमूर्त/अभौतिक भाव और विचार भी सम्मिलित हैं जो हम एक परिवार और समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं।

एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ उसकी संस्कृति से प्रेरित कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके, और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं। व्यक्ति किसी एक समाज में जन्म लेता है तथा वहीं पाला पोषा जाता है। स्वयं समाज की संरचना उस समाज की संस्कृति के आधार पर बनती है। इसका स्पष्ट अर्थ तब यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण न केवल सामाजिक कारकों बल्कि सांस्कृतिक कारकों द्वारा भी होता है। सामान्यतः संस्कृति से तात्पर्य उन सभी सीखे गये व्यवहारों की समग्रता से होता है। जिनका सम्बन्ध प्रथा, मानक, विश्वास, कला, ज्ञान मूल्यों आदि से होता है। संस्कृति की कुछ आधुनिक वैज्ञानिक परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

- **क्रचफील्ड एवं बैलकी (1962) के अनुसार** "भौतिक तथा अभौतिक सभी व्यवस्थाओं का ऐसा प्रतिमान, जिसका सदस्यों की समस्याओं के पारस्परिक रूप में समाधान हेतु उपयोग होता रहता है संस्कृति कहा जाता है। इसमें व्यवहार (आचरण) निर्देशित करने सम्बन्धित सभी तरीकों तथा अव्यक्त, विश्वास, प्रतिमान मूल्य तथा आधार वाक्य (Premises) आदि सन्निहित होते हैं"।
- **लिण्डग्रेन (Lindgren,1973) के अनुसार** "संस्कृति मूल्यों विश्वासों, मानकों कौशलों तथा प्रतीकों से बना होता है जो एक समाज द्वारा विकसित होते हैं तथा उनके सदस्यों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं।"
- **सार्टेन, नार्थ स्ट्रेन्ज तथा चैपमैन (Sartain, Strange, North, Chapman1973) के अनुसार**, "संस्कृति से हम लोगों का अभिप्राय उन खास तरीकों से होता है जिनके अनुसार समाज के सदस्य व्यवहार करते हैं तथा जिसे वे नयी पीढ़ियों तक पहुंचाते हैं। संस्कृति के तत्वों में व्यक्तियों की भाषा, कौशल, कला, धर्म ,नियम, प्रथा तथा भौतिक सम्पत्ति सम्मिलित होते हैं।"
- **होवेल (Hobble, 1956) के अनुसार** "संस्कृति संगठित व सीखे गये व्यवहार प्रतिमानों का एक ऐसा सम्पूर्ण येाग है, जो समाज के सदस्यों की विशेषताएं होती हैं और इसलिए वे जैविक विरासत का परिणाम नहीं होते हैं"।

इन परिभाषाओं के अध्ययन करने के बाद हमें संस्कृति के स्वरुप के बारे में कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं जो निम्नांकित हैं-

- संस्कृति के तत्व जैसे- भाषा, कला, धर्म, नियम विश्वास मूल्य तथा भौतिक सम्पत्ति अर्जित होते हैं न कि वे जैविक विरासत होते हैं। दूसरे शब्दों में संस्कृति के तत्व सीखे गये या अर्जित होते हैं,न कि व्यक्ति में जन्म से ही अपने आप मौजूद होते हैं।
- संस्कृति का प्रभाव समाज के सभी व्यक्तियों पर पड़ता है।
- संस्कृति के तत्वों को व्यक्ति सीखकर उसका हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी करते हैं।

6.4 संस्कृति की सामान्य विशेषतायें (General Characteristics of Culture)

- **संस्कृति सीखी जाती है और प्राप्त की जाती है:** अर्थात् मानव के द्वारा संस्कृति को प्राप्त किया जाता है। इस अर्थ में कि कुछ निश्चित व्यवहार हैं जो जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त होते हैं। व्यक्ति कुछ गुण अपने माता-पिता से प्राप्त करता है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों को पूर्वजों से प्राप्त नहीं करता हैं। वे पारिवारिक सदस्यों से सीखे जाते हैं, इन्हें वे समूह से और समाज से जिसमें वे रहते हैं,उनसे सीखते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव की संस्कृति शारीरिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती है। जिनके माध्यम से वे कार्य करते हैं।

- **संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है-** एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है, यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है।

- **संस्कृति संचयी होती है-** संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ज्यादा से ज्यादा ज्ञान उस विशिष्ट संस्कृति में जुड़ता चला जाता है, जो जीवन में परेशानियों के समाधान के रूप में कार्य करता है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। यह चक्र बदलते समय के साथ एक विशिष्ट संस्कृति के रूप में बना रहता है।

- **संस्कृति परिवर्तनशील होती है-**ज्ञान, विचार और परम्परायें नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं। समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं।

- **संस्कृति गतिशील होती है-**कोई भी संस्कृति स्थिर दशा में या स्थायी नहीं होती है। जैसे समय बीतता है संस्कृति निरंतर बदलती है और उसमें नये विचार और नये कौशल जुड़ते चले जाते हैं और पुराने तरीकों में परिवर्तन होता जाता है। यह संस्कृति की विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है।

- संस्कृति हमें अनेक प्रकार के स्वीकृति व्यवहारों के तरीके प्रदान करती है- यह बताती है कि कैसे एक कार्य को संपादित किया जाना चाहिये, कैसे एक व्यक्ति को समुचित व्यवहार करना चाहिए।

- **संस्कृति भिन्न होती है-** यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पारस्परिक भाग एक-दूसरे पर आश्रित हैं। यद्यपि ये भाग अलग होते हैं। वे संस्कृति को पूर्ण रूप प्रदान करने में एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।

- **संस्कृति अक्सर वैचारिक होती है-**एक व्यक्ति से उन विचारों का पालन करने की आशा की जाती है, जिससे उसी संस्कृति के अन्य लोगों से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की जा सके।

6.5 संस्कृति के प्रकार (Type of Culture)

संस्कृति के दो तत्व बताये गयें हैं। भौतिक तत्व तथा अभौतिक तत्व। मकान मंदिर, कपड़े बर्तन सड़के आदि भौतिक तत्व के उदाहरण हैं तथा प्रथा विश्वास, मानक, मूल्य, धर्म आदि अभौतिक तत्व के उदाहरण है। इन दोनों तत्वों के आधार पर कुछ लोगों ने संस्कृति के निम्नांकित दो प्रकार बतलाए हैं।

- **भौतिक संस्कृति-**भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है जो हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से सम्बद्ध होते हैं, जैसे हमारी वेशभूषा, भोजन, मन्दिर, मकान, उपकरण, दुकान, औजार,घरेलू सामान आदि। है। इन तत्वों द्वारा व्यक्तियों का मनोवृत्ति एवं व्यवहार परोक्ष रूप से प्रभावित होता है।
- **अभौतिक संस्कृति-**अभौतिक संस्कृति के निर्माण में अभौतिक तत्वों का समावेश होता है। इसके अंतर्गत समाज के मानक मूल्यों, विश्वासों, प्रथाओं,परम्पराओं आदि की गणना की जाती है। अभौतिक संस्कृति का प्रभाव समाज के व्यक्तियों के व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों पर सीधा पड़ता है। फलस्वरुप यह लोगों के अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों का भी प्रत्यक्ष निर्धारण करता है।

क्रेच, क्रेचफिल्ड तथा वैलेची ने संस्कृति को निम्नांकित दो भागों में बांटा है-

- **व्यक्त संस्कृति-**व्यक्त संस्कृति से तात्पर्य समाज के सदस्यों के शाब्दिक तथा अशाब्दिक व्यवहार में प्रत्यक्ष रुप से देखे गये निरन्तरता तथा नियमितता से होता है। सदस्यों के व्यवहारों में दिखाई देने वाले सभी तरह के व्यवहार प्रतिमान इस संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।

- **अव्यक्त संस्कृति-**अव्यक्त संस्कृति में समाज के मानक मूल्य, विश्वास, परम्परा आदि सम्मिलित होते हैं। समाज मनोवैज्ञानिक एवं मानवशास्त्रियों द्वारा समाज के व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न तरह के असम्बन्धित व्यवहारों को समझने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

6.6 संस्कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study of Culture)

जब भी किसी समाज की संस्कृति का विस्तृत अध्ययन करते हैं तो उन्हें उस संस्कृति का विश्लेषण करना पड़ता है, ताकि वे उससे सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन ठीक ढंग से कर सकें। इसके लिए समाज मनोवैज्ञानिकों कुछ विधियों का प्रतिपादन किया है। ऐसी प्रमुख विधियां निम्नांकित हैं।

- **क्षेत्र विधि (Field Method)-**इस विधि में अध्ययनकर्ता को उन व्यक्तियों के साथ रहना पड़ता है जिनकी संस्कृति का वे अध्ययन कर रहा होता है। वह उनके व्यवहारों का प्रेक्षण घर,बाहर तथा अन्य जगहों में करता है। वइ इन व्यक्तियों के शादी विवाह तथा अन्य सामाजिक कार्यक्रमों में एक अध्ययनकर्ता की हैसियत से भाग लेता है तथा उन सभी के व्यवहारों का एक रिकार्ड तैयार करता है। इस तरह से इस विधि में अध्ययनकर्ता एक सहभागी प्रेक्षक के रुप में कार्य करता है। व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन करनें में वह प्रेक्षण प्रविधि के अलावा साक्षात्कार का भी प्रयोग करता है। इसमें वह अध्ययन की जा रही संस्कृति में पले व्यक्तियों से उनके रहन सहन एवं जीवन के अन्य पहलुओं के बारे में पूछताछ कर एक रिकार्ड तैयार करता है। तैयार किये गये रिकार्ड का विश्लेषण कर अध्ययनकर्ता संस्कृति के बारे में कुछ निष्कर्षों पर पहुँचता है।इस विधि का प्रमुख गुण यह है कि यह सरल विधि है तथा इसके द्वारा चूंकि अध्ययनकर्ता वास्तविक परिस्थिति में रहकर तथ्य को प्राप्त करता है। अतः इसका परिणाम अधिक निर्भर योग्य होता है। इस विधि का प्रधान अवगुण यह है कि इसमें विश्वसनीयता कम पायी गयी है। रेडफील्ड (Redfield,1946) तथा लेविस (Lewis,1951) ने एक ही गांव की संस्कृति का अलग-अलग स्वतंत्र रुप से अध्ययन कर यह पाया कि दोनों व्यक्तियों द्वारा तैयार किये गये रिकार्ड में काफी अन्तर थे, जिनसे इन लोगों ने यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला कि क्षेत्र विधि में विश्वसनीयता अर्थात संगति नहीं होती है।

- **विषय विश्लेषण-**एक शोध प्रविधि के रुप में इस विधि का उपयोग बेरेलसन (Berelson,1952) द्वारा सबसे अधिक किया गया है। इस विधि में प्राप्त संचारों के विषय का क्रमबद्ध वस्तुनिष्ठ वर्णन किया जाता है। इस विधि द्वारा किसी संस्कृति के अध्ययन करने या विभिन्न संस्कृतियों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन करने में एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह होती है कि समाज के लोकप्रिय संचार जो मैगजीन, नाटक, रेडियो, टेलीविजन अखबार आदि द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। उसके द्वारा समाज के व्यक्तियों की सामान्य मनोवृत्तियां रहन सहन तथा अन्य व्यवहारों का सही-

सही स्पष्टीकरण होता है। इस विधि द्वारा संस्कृति के अध्ययन करने में निम्नांकित चार प्रधान चरण बतलाये गये हैं।

i. अध्ययन के पहले चरण में अध्ययनकर्ता को यह निश्चित करना होता है कि संचार के किस रुप को चुना जाय। उदाहरणार्थः किसी संस्कृति के अध्ययन करने के लिए अध्ययनकर्ता वहाँ से प्रकाशित अखबारों के सम्पादकीय विचारों को विषय के रुप में चुन सकता है।

ii. अध्ययन के दूसरे चरण में वह विषय के तत्वों की गणना करता है। यहां तत्व से मतलब विषय की मुख्य घटनाओं जैसे दूसरों की मदद करने की घटना, उपलब्धि, लड़ाई झगड़ा आदि। तत्वों की गणना के लिए वह विश्लेषण की इकाई तैयार करता है। विश्लेषण की इकाई शब्द, वाक्य, पैराग्राफ कुछ भी हो सकता है।

iii. अध्ययन का तीसरा चरण जो सबसे महत्वपूर्ण होता है में अध्ययनकर्ता उपयुक्त विश्लेषणात्मक श्रेणियों को चुनता है। विश्लेषणात्मक श्रेणी मूल्य श्रेणी के हो सकते हैं, या विषय वस्तु श्रेणी के हो सकते हैं या फिर पक्ष प्रतिपक्ष श्रेणी के हो सकते हैं।

iv. अध्ययन के अन्तिम चरण में अध्ययनकर्ता तैयार किये गये विश्लेषणात्मक श्रेणियों के आधार पर मात्रात्मक व्याख्या करता है। कभी-कभी वह इस मात्रात्मक व्याख्या के अलावा गुणात्मक व्याख्या भी सम्पूरक के रुप में कार्य करती है। चाइल्ड तथा उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययनों में इस विधि की उपयेागिता को साबित किया है। इस विधि का एक प्रमुख अवगुण यह बतलाया गया है कि इसका प्रयोग संस्कृति के हर पहलुओं के अध्ययन में नहीं किया जा सकता है। खासकर अव्यक्त संस्कृति के कुछ पहलुओं के अध्ययन में इसका प्रयोग संभव नहीं हो पाता है।

❖ **क्रास सांस्कृतिक विधि (Cross Cultural Method)**-इस विधि का प्रयोग मूलतः कुछ सीमित संख्या में चुने गये समाज के संस्कृतियों का आपस में तुलना करने के लिए किया जाता है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य चुने गये विभिन्न संस्कृतियों के बीच समानता तथा अन्तर पर प्रकाश डालना होता है। इस विधि में सबसे पहले अध्ययनकर्ता कुछ खास-खास सांस्कृतिक पहलुओं को चुनता है। और उन्हीं पहलुओं पर वह चुने गये समाज के संस्कृतियों की तुलना करता है। प्रत्येक समाज की संस्कृति को वह उन पहलुओं जैसे- कोई विशेष प्रथा, रीति रिवाज विश्वास, मूल्य पर एक प्राप्तांक प्रदान करता है, और बाद में वह इन्हीं प्राप्ताकों की तुलना करके विभिन्न संस्कृतियों के बीच व्याप्त समानता तथा अन्तर के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष पर

पहुँचता है। व्हाटिंग (Whiting,1954), मुरडॉक (Murdock]1954) ने अपने अध्ययनों में इस विधि की उपयोगिता का वर्णन किया है।

- **प्रक्षेपी विधियां एवं मनोवृत्ति मापनी (Projective Methods and Attitude Scale)-** कुछ अध्ययनकर्ताओं ने प्रक्षेपी प्रविधि तथा मापनी विधि द्वारा भी संस्कृति का अध्ययन किया है। प्रक्षेपी प्रविधि में संस्कृति के मूल्यों मानकों आदि से सम्बन्धित तस्वीरें होती हैं जिन्हें देखकर कुछ प्रश्नों का उत्तर उन व्यक्तियों को देना होता है, जो उस संस्कृति में पाले पोसे गये होते हैं। उनके दिये गए उत्तरों का विश्लेषण कर अध्ययनकर्ता सम्बन्धित सांस्कृतिक मूल्यों तथा सांस्कृतिक मानकों के बारे में अंदाज लगाते हैं। गोल्डस्किमड तथा एडगर्टन (Goldschmidt &Adgerton1961) ने इस प्रक्षेपी प्रविधि द्वारा अमेरिका के एक जनजाति के सांस्कृतिक मूल्यों का सन्तोषजनक अध्ययन किया। मनोवृत्ति मापनी द्वारा भी संस्कृति के तत्वों का अध्ययन किया गया है। मनोवृति मापनी विशेष रुप से एक प्रश्नावली विधि के समान है जिसमें अंकित कथनों के प्रति की गयी अनुक्रियाओं के आधार पर संस्कृति के तत्वों अर्थात मूल्यों, प्रथाओं आदि के बारे में अनुमान लगाया जाता है। टर्नर (Turner,1960) ने एक मनोवृत्ति मापनी जो गटमैन प्रविधि पर आधारित थी, बनाकर अमेरिकन छात्रों एवं अंग्रेजी छात्रों के सांस्कृतिक मूल्यों का संतोषजनक तुलनात्मक अध्ययन किया।इन प्रविधियों का एक दोष यह बतलाया गया है कि व्यक्ति अध्ययनकर्ता के साथ खुलकर सहयोग नहीं देते और उत्तरों की वास्तविक दिशा का ज्ञान अध्ययनकर्ता को नहीं होने देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस विधि द्वारा प्राप्त आंकड़ों पर पूर्णरुपेण विश्वास नहीं किया जा सकता है।
- **कारक विश्लेषण विधि (Factor analysis Method)-**कारक विश्लेषण आधुनिक सांख्यिकीय अध्ययनों की देन है। मूलतः इस विधि का प्रतिपादन व्यक्तियों में विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों को एक दूसरे से अलग करने के लिए किया गया था। परन्तु कुछ लोगों ने इस विधि का प्रयोग संस्कृति के तत्वों को पता लगाने में किया है। कारक विश्लेषण एक जटिल सांख्यिकीय विधि है जिसमें सहसम्बन्धों के आधार पर कुछ प्रमुख कारकों का पता लगाया जाता है। कैटेल (Cattle,1949) ने इस विधि का प्रयोग कर संस्कृति की मुख्य विमाओं का पता लगाया है। इस अध्ययन में उन्होंने 69 राष्ट्रीय संस्कृतियों से 2 चरों पर विभिन्न जीवन सम्बन्धी घटनाओं, स्रोतों से आंकडे इकट्ठा पर 2,556 अन्तर सहसम्बन्ध ज्ञात किये। इन अन्तर सहसम्बन्धों के आधार पर उन्होंने कुल 12 कारकों को अलग किया जिसे उस संस्कृति विशेष की प्रमुख विमा माना गया।इस विधि का प्रमुख अवगुण यह बतलाता है कि यह एक ऐसी सांख्यिकीय विधि है जो काफी जटिल है जिसके कारण इसका प्रयोग हर परिस्थिति में संभव नहीं है। विशेषकर जहां चरों की संख्या अधिक होती है, वहां इस प्रविधि का उपयोग करके कम

समय में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है।इस तरह से हम देखते हैं कि संस्कृति के तत्वों अर्थात सांस्कृतिक मूल्यों, मानकों, प्रथाओं, आदि का अध्ययन तथा उनकी तुलना दूसरे संस्कृति के तत्वों से करने की अनेक विधियाँ है। इन विधियों में से प्रथम तीन अर्थात क्षेत्र विधि, विषय विश्लेषण विधि तथा क्रास सांस्कृतिक विधि अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

6.7 व्यक्तित्व का अर्थ (Meaning of Personality)

अनेक वर्षों से व्यक्तित्व को जीवन की सफलता व असफलता के निर्धारक के रुप में माना जाता रहा है, जैसे यदि किसी व्यक्ति में कुछ सामाजिक वांछनीय शीलगुण हैं, तो निश्चय ही उसने अपने माता-पिता से विरासत में प्राप्त किये होंगे। यदि वह आलसी है तो वह सक्रिय व प्रसन्न नहीं रह सकता। इसका यह अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी इच्छा या प्रशिक्षण से अपनी उन विशेषताओं को नहीं बदल सकता जो उसके पास पहले से हैं। व्यक्ति अपने जीने का दास होता है। यदि हम इस विश्वास को स्वीकार कर लेते हैं तो व्यक्तित्व को परिमार्जित करने के लिए कुछ नहीं बचता। दैहिक शीलगुणों का पीढ़ी दर पीढ़ी अनुक्रमण होता है और उसमें परिवर्तन नहीं होता है, लेकिन उनके सहवर्ती व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता रहता है। सर्व स्वीकृत विश्वास है कि शरीर में परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्तित्व में परिवर्तन होता रहता है। चूंकि शारीरिक परिर्वतन विकासात्मक चरण का एक भाग है, जिस पर व्यक्तित्व का कोई नियंत्रण नहीं होता। यह माना जाता है कि सहवर्ती व्यक्तित्व परिवर्तन भी अनियत्रिंत होते हैं। शारीरिक परिवर्तन या आमूल व्यक्तित्व परिवर्तन जीवन में दो बार होता है। पहला वयः सन्धि की अवस्था में जब बच्चे के शरीर का विकास वयस्क के समान होने लगता है और दूसरा वृद्धावस्था के समय जब उनकी पुनरुत्पादन क्षमता में ह्रास आ जाता है। पारम्परिक विश्वास है कि दैहिक व व्यक्तित्व परक विशेषताएं एक साथ चलती हैं। यह इतना अधिक लोकप्रिय है कि लोग शारीरिक विशेषताओं को देखकर व्यक्तित्व का आंकलन कर लेते हैं।कुछ प्रतीकों का प्रयोग व्यक्तित्व के विश्लेषण हेतु होता है। वे आत्मन के महत्वपूर्ण प्रतीक होते हैं जैसे ,कपड़े, बोलचाल, नाम, खाली समय का उपयोग। बहुत से पारस्परिक विश्वास के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उसी प्रकार से होता है जैसे कि उसके माता-पिता का। यह भी विकास की इच्छा को रोक देता है। यह माता-पिता और अध्यापकों की उस अभिप्रेरणा को अवरुद्ध कर देता है, जो वे बच्चों के प्रारम्भिक जीवन में व्यक्तित्व विकास हेतु प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तित्व की कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं-:

- **आलपोर्ट (Allport 1937) के अनुसार** "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रो का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं"। व्यहारवाद के जन्मदाता वाटसन (1924) ने सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचना व्यवहारवाद में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा व्यक्तित्व का तात्पर्य विश्वसनीय सूचना हेतु एक लंबे समय तक निरीक्षण की जाने वाली क्रियाओं के योगफल से है।

- **चाइल्ड (Child,1966) के अनुसार** "व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोवेश स्थायी आन्तरिक कारकों से होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाता है तथा तुल्य परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से अलग करता है"।
- **आइजेंक (Eysenck,1952) के अनुसार** "व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र ,चित प्रकृति ज्ञान प्रकृति तथा शरीर गठन का करीब करीब एक स्थायी एवं टिकाउ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है।"
- **बैरोन (1993) के अनुसार** "व्यक्तियों के संवेगों, चितनों तथा व्यवहारों के अनूठे एवं सापेक्ष रूप से स्थिर पैटर्न के रूप में व्यक्तित्व को सामान्यतः परिभाषित किया जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का संयुक्त विश्लेषण कर हम व्यक्तित्व के अर्थ को और अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकते हैं, जो कि इस प्रकार है -

- **मनोशारीरिक तंत्र (Psychophysical System)-**व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र (System) है जिसका मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अंतः क्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशक्ति, चित्रप्रकृति, चरित्र तथा अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं, परन्तु इनका आधार शारीरिक अर्थात् व्यक्ति के ग्रंथीय प्रक्रियाएँ एवं तांत्रिकीय प्रक्रियाएँ हैं। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न ही पूर्णतः शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

- **गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization)-**गत्यात्मक संगठन से यह तात्पर्य होता है कि मनोशारीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे- शीलगुण, चित्रप्रकृति, चरित्र आदि एक-दूसरे से इस तरह संबन्धित होकर संगठित होते हैं कि उन्हें एक-दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन सम्भव है। यही कारण है कि इसे एक गत्यात्मक संगठन कहा गया है। उदाहरणस्वरूप, कोई व्यक्ति नौकरी पाने के पहले एक ईमानदार, उत्तरदायी तथा समयनिष्ठ गुणों को दिखा सकता है, परंतु नौकरी मिलने के कुछ वर्षों बाद उसमें उत्तरदायित्व तथा समयनिष्ठता का शीलगुण ज्यों-का-त्यों हो सकता है। परंतु सम्भव है कि उसमें ईमानदारी का गुण बदलकर बेइमानी का गुण विकसित हो जाय। इन शीलगुणों के संगठन में इस तरह का परिवर्तन गत्यात्मक संगठन का उदाहरण है इस तरह के संगठन में विसंगठन भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार की व्याख्या होती है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी व्यक्ति के शीलगुणों के संगठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित हो जाता

है तथा जिसके परिणामस्वरूप वह असमान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है, तो इसे भी गत्यात्मक संगठन की श्रेणी में ही रखेंगे।

- **वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण-**प्रत्येक व्यक्ति में मनोशारीरिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन पाया जाता है कि उसकाव्यवहार वातावरण में अपने-अपने ढंग का होता है। इसका मतलब यह हुआ कि वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, चिंतन प्रक्रिया, संवेग आदि अपूर्व होता है जिसके कारण वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है। आइजेंक, आलपोर्ट तथा मिसकेल ने इस पक्ष पर करीब-करीब समान रूप से अपनी-अपनी परिभाषाओं में बल डाला है। यही कारण है कि आलपोर्ट ने इस बात पर बल डाला है कि व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ अभियोजन या अनुकूलन ही नहीं करता है बल्कि इस वातावरण के साथ वैसी अंतः क्रिया भी करता है जिससे वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूल या अभियोजन योग्य होना पड़ता है। हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का होता है।

6.8 व्यक्तित्व के प्रकार (Type of Personality)

शारीरिक गुणों के आधार पर-

शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्त को शरीर गठन सिद्धान्त कहा गया है। शारीरिक गुणों के आधार पर दो वैज्ञानिकों अर्थात् क्रेश्मर तथा शेल्डन द्वारा किया गया व्यक्तित्व का वर्गीकरण काफी महत्वपूर्ण है।

उनके द्वारा वर्णित व्यक्तित्व के चार प्रकार निम्नांकित हैं-

(1) स्थूलकाय प्रकार- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस तरह के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ खास-खास विशेषता होती हैं। जैसे- एसे व्यक्ति सामाजिक होते हैं, खाने-पीने तथा सोने में काफी मजा लेते हैं तथा वे खुशमिजाज होते हैं।

(2) कृशकाय प्रकार- इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियां विकसित नहीं होती हैं और शरीर का वजन उम्र के अनुसार होने वाले समान्य वजन से कम होता है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से इनमें दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है।

(3) पुष्टकाय प्रकार- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठी होती हैं तथा शरीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न ही अधिक छोटा होता है। इनका पूरा शरीर सुडौल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चंचलता और न ही अधिक मंदता होती है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ आसानी से समायोजन कर लेते हैं।

(4) विशालकाय प्रकार- इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें ऊपर के इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है। परन्तु बाद में क्रेश्मर के वर्गीकरण को कुछ वैज्ञानिकों ने जैसे- शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया और इसमें विधि से संबंधित कई दोष पाये। शेल्डन ने 1940 में शरीर गठन के ही आधार पर एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाईप सिद्धान्त कहा गया। इन्होंने शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने के लिए 4,000 कॉलेज के छात्रों की नग्न तस्वीरों का विश्लेषण कर यह बतलाया है कि व्यक्तित्व को मूलतः तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार के कुछ खास-खास शीलगुण होते हैं जिनसे उसके स्वभाव या चित्तप्रकृति का भी पता चलता है। प्रत्येक प्रकार तथा उससे संबंधित शीलगुणों के बीच का सहसंबंध 0.78 से अधिक था जो अपने आप में इस बात का सबूत है कि प्रत्येक शारीरिक प्रकार तथा उससे संबंधित गुण आपस में काफी मजबूत हैं। शेल्डन द्वारा बताये गये वे तीन प्रकार तथा उससे संबंधित चित्तप्रकृति के संबंधित गुण निम्नांकित हैं-

(1) एण्डोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं और इनका शरीर गोलाकार दिखता है। इस तरह के शरीरिक गठन वाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखलाने वाले होत हैं।

(2) मेसोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की हड्डियां एवं मांसपेशियां काफी विकसित होती हैं तथा शरीरिक गठन काफी सुडौल होता है ऐसे व्यक्ति के स्वभाव को सौमैटोटोनिया कहा गया है जिसमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृत्ति, दृढ़ कथन, आक्रामकता आदि का गुण पाया जाता है। ऐसे लोग अन्य लोगों को आदेश देने में अधिक आनन्द उठाते हैं।

(3) एक्टोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है परन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं। इनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती हैं और इनका पूरा गठन इकहरा होता है। ऐसे व्यक्ति को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलना-जुलना अधिक पसंद आता है। ऐसे लोग संकोची और लजालु भी होते हैं। इनमें नींद-संबंधी शिकायत भी पायी जाती है।

ब. मनोवैज्ञानिक गुणों के आधर पर:

इसमें युंग, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अधिक मशहूर है। युंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित दो प्रकार बताये है।

1. **बहिर्मुखी**: इस तरह के व्यक्ति की अभिरुचि सामाजिक कार्यों की ओर अधिक होता है। वह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करते हैं तथा खुशमिजाज किस्म के होते हैं।ऐसे व्यक्ति आशावादी

होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता से अधिक और आदर्शवाद से कम रखते हैं। ऐसे लोगों को खाने पीने की तरफ अधिक अभिरुचि होती है।

2. **अन्तर्मुखी:** ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति कम लोगों से मिलना पसंद करते है और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है।इनमें आत्मकेंन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन पसंद होता है तथा ऐसे लोग रुढिवादी प्रकृति के होते हैं तथा पुराने रीति रिवाजों एवं नियमों को आदर देने वाले होते है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा युंग के इन दो प्रकारों की आलोचना की है और इन लोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में से किसी एक श्रेणी में आए ही यह जरुरी नहीं है। अधिकतर लोगों में ये दोनों गुण पाये जाते है। फलस्वरुप एक रुप में वो बहिर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है तथा दूसरे रुप में अन्तर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है।

1.6.2 शीलगुण उपागम

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों से ठीक वैसी ही बनी होती है जैसे एक मकान की संरचना छोटी-छोटी ईटों से बनी होती है। शीलगुण का सामान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन। जैसे-सतर्क, सक्रिय, अवसादित आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके सहारे मानव व्यवहार का वर्णन होता है। प्रश्न उठता है कि क्या सभी शब्द जिनसे मानव व्यवहार का वर्णन होता है, शीलगुण हैं? कदापि नहीं। शीलगुण कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संगति का गुण हो। उदाहरणस्वरुप, यदि कोई व्यक्ति हर तरह की परिस्थिति में ईमानदारी का गुण दिखलाता है तो हम कह सकते हैं कि उसके व्यवहार में संगति है तथा उसमें ईमानदारी का शीलगुण है। किसी व्यवहार को शीलगुण कहलाने के लिए संगति के अलावा उसमें स्थिरता का भी गुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शीलगुण कहलाने के लिए कम-से-कम थोड़े समय के लिए स्थायित्व का गुण भी होना चाहिए। अगर व्यक्ति एक महीने तक हर परिस्थिति में ईमानदारी दिखलाता है परन्तु बाद में नही तो इसे शीलगुण नहीं कहा जाएगा। अतः शीलगुण एक ऐसी विशेषता होती है जिसके कारण व्यक्ति संगत ढंग से तथा साक्षेप रूप से स्थायी तौर पर एक-दूसरे से भिन्न होता है।

एटकिंसन, एटकिंसन तथा हिलगार्ड (1983) ने भी शीलगुण को इसी तरह परिभाषित किया है। इनके अनुसार, ''शीलगुण से तात्पर्य एक ऐसी विशेषता से होता है जो एक व्यक्ति से दूसरें व्यक्ति में सापेक्ष रुप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न-भिन्न होता है।''

(1) **सामान्य शीलगुण**: सामान्य शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी संस्कृति के अधिकतर लोगों में पाया जाता है। फलतः सामान्य शीलगुण ऐसा शीलगुण है जिसके आधार पर किसी समाज या संस्कृति के अधिकतर लोगों की तुलना आपस में की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रभुत्व की माप पर सोहन का शीलगुण यदि 70 शततमक पर है, तो इसका मतलब हुआ कि 70 प्रतिशत व्यक्तियों

का गुण सोहन की तुलना में कम है। स्पष्टतः यहां प्रभुत्व के शीलगुणों के आधार पर सोहन की तुलना अन्य व्यक्तियों से की जा रही है। अतः शीलगुण प्रभुत्व का उदाहरण हुआ।

(2) **व्यक्तिगत शीलगुण**: आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत शीलगुण एक दूसरा महत्वपूर्ण शीलगुण है जिसे उन्होंने व्यक्तिगत प्रवृत्ति कहना उचित ठहराया है। उनका कहना है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति अधिक विवरणात्मक है तथा इससे संभ्रान्ति भी कम होती है।

व्यक्तिगत प्रवृत्ति से तात्पर्य ऐसे शीलगुणों से होता है जो किसी समाज या संस्कृति के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, अर्थात उस समाज या संस्कृति के सभी व्यक्तियों में वह नहीं पाया जाता है। यहही कारण है कि इस तरह के शीलगुण के आधार पर व्यक्तियों के बीच तुलना नहीं की जा सकती है परन्तु एक ही व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हो सकता है। जैसे यदि हम यह कह सकते है कि श्याम सक्रिय कम परन्तु निष्क्रिय ज्यादा है, तो यह व्यक्तिगत प्रवृत्ति का उदाहरण होगा। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति तथा सामान्य शीलगुण में निम्नांकित दो अंतर बताये है

(1) सामान्य शीलगुण समाज के अधिकतर व्यक्तियों में पाया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति समाज के कुछ व्यक्ति विशेष में पायी जाती है।

(2) सामान्य शीलगुण के आधार पर कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति के आधार पर एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुणों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुण की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अध्ययन पर बल डाला है। उन्होंने यह भी बताया है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति की संख्या करीब करीब 18,000 है। उनके अनुसार कुछ व्यक्तिगत प्रवृत्तियां ऐसी होती हैं जो व्यक्तित्व की परिधि पर होती हैं। उन्हें स्पष्टतः समझा जा सकता है। परन्तु कुछ प्रवृत्ति व्यक्तित्व के भीतर अपनी केन्द्र में होती है जिन्हें सीधे और स्पष्टतः तो समझना थोडा कठिन है। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति को तीन भागों में बाटा है -

(1) कार्डिनल प्रवृत्ति - इस तरह की व्यक्तिगत प्रवृत्ति व्यक्तित्व का इतना प्रमुख एवं प्रबल गुण होता है कि उसे छुपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह से कार्डिनल प्रवृत्ति के रुप में आसानी से की जा सकती है। सभी व्यक्तियों में कार्डिनल प्रवृत्ति नही होती है। परन्तु जिसमें होती है, वह व्यक्ति पूर्णरुपेण उस प्रवृत्ति या गुण से चर्चित होता है। जैसे, महात्मा गांधी के व्यक्तित्व में कार्डिनल गुण शांति एवं अहिंसा थे और इन गुणों के कारण वो पूरे संसार में चर्चित है। उसी तरह से हिटलर तथा नेपोलियन की कार्डिनल प्रवृत्ति क्या थी? इसे पाठक स्वंय ही सोच सकते हैं।

(2) केन्द्रीय प्रवृत्ति - यह सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 गुण या प्रविक्तियॉ ऐसी पायी जाती हैं जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। यदि कहा जाए कि व्यक्तित्व इन 5 से 10 गुणों के भीतर जिंदा रहता है तो कोई अतिशोक्ति नहीं होगी। इस तरह के गुणों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहा जाता है। सामाजिकता, आत्मविश्वास, उदासी आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्ति के उदाहरण है।

(3) गौण प्रवृत्ति- गौण प्रवृत्ति वैसे गुणों को कहा जाता है जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट होते हैं, जैसे-खाने की आदत, हेयर स्टाइल, पहनावा आदि कुछ ऐसी प्रवृत्तियां है जिनके आधार पर व्यक्तित्व को समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती और न ही इनके आधार पर व्यक्तित्व के बारे में कुछ खास अर्थ ही लगाया जा सकता हैं। आलपोर्ट ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि एक व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्रीय प्रवृत्ति हो सकता है परन्तु दूसरे के लिए वही गुण गौण प्रवृत्ति हो सकता है। उदाहरणार्थ वहिर्मुखी के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति है परन्तु अन्तर्मुखी के लिए सामाजिकता एक गौण प्रवृत्ति है। इस तरह आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के शीलगुणों को कई भागों में बाटकर एक यथोचित व्याख्या प्रस्तुत की है।

कैटल ने शीलगुणों को कई भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया। सबसे मशहूर वर्गीकरण वह था जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व के शीलगुणों को सतही शीलगुण तथा मूल या स्त्रोत शीलगुण के रुप में विभाजन किया है। वर्णन इस प्रकार है-

I. **सतही शीलगुण-** इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के उपरी सतह या परिधि पर होता हैं यानी, इस तरह के शीलगुण ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में आसानी से अभिव्यक्त हो जाते है। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती है कि संबधित शीलगुण के बारे में व्यक्ति में कोई दो मत हो ही नही सकते है। जैसे प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा कुछ ऐसे गुण हैं जो सतही शीलगुण के उदाहरण हैं। इनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में स्पष्ट रुप से होती है।

II. **स्त्रोत या मूल शीलगुण-** कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण संरचना है। इसकी संख्या सतही शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रुप से व्यक्त नहीं हो पाती है। अतः इसका प्रेक्षण सीधे नहीं किया जा सकता है। कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना होती है जिसके बारे में ज्ञान तब होता है जब उससे संबन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे -सामुदायिकता, निःस्वार्थता, तथा हास्य-तीन ऐसे सतही शीलगुण होते है जिन्हें एक साथ मिलाने से एक नया मूल शीलगुण बनता हैं जिसे मित्रता की संज्ञा दी जा ती हैं। यह स्पष्ट है कि मूल शीलगुण की अभिव्यक्ति सतही शील गुण के रुप में की जाती है। इसलिए कैटल ने सतही शीलगुण को शीलगुण सूचक भी कहा है। कैटल के अनुसार 23 मूल शीलगुण ऐसे हैं जो सामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैतथा 12 ऐसे मूल शीलगुण है जो असामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैं। 23 में से 16 को कैटल ने अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया हैऔर इसे मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली भी तैयार की जिस सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली या 16 पी.एफ. की संज्ञा दी।

सामान्य रुप से मूल शीलगुण को कैटल ने दो भागों में बांटा है। पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण तथा स्वाभाविक शीलगुण। कुछ मूल शीलगुण ऐसे होते है जिनके विकास में आनुवांशिता की अपेक्षा वातावरण संबंधी कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हें पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण कहते हैं। कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं जिनके विकास में वातावरण की अपेक्षा आनुवंशिकता का अधिक प्रभाव पड़ता है, इस तरह के शीलगुण को स्वाभाविक शीलगुण कहा जाता है।

कैटल ने शीलगुणों का विभाजन उस व्यवहार पर भी किया है जिससे वे संबंधित होते हैं। इस कसौटी के आधार पर शीलगुण के तीन प्रकार होते है। गत्यात्मक शीलगुण, क्षमता शीलगुण, तथा चित्तप्रकृति शीलगुण।

गत्यात्मक शीलगुण वैसे शीलगुण को कहा जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। मनोवृत्ति, मूलवृत्ति तथा मनोभाव गत्यात्मक शीलगुण के कुछ उदाहरण है। क्षमता शीलगुण से तात्पर्य उन शीलगुणों से होता है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। चित्तप्रकृति शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो किसी लक्ष्य पर पहुचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका संबंध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति, अनुक्रिया करने की शक्ति तथा दर आदि से संबंधित होता है। सांवेगिक स्थिरता, मस्त-मौलापन आदि चित्तप्रकृति शीलगुण के उदाहरण है।

कैटल ने बताया कि शीलगुणों का अध्ययन करने के लिए मूलतः तीन स्त्रोत हैं। जीवन अभिलेख ,आत्म रेटिंग तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण। पहले स्त्रोत से प्राप्त आकड़ों को एल प्रदत्त, दूसरे स्त्रोत से प्राप्त आकडों को क्यू-प्रदत्त तथा तीसरे को ओट कहा जाता है।

6.9 सारांश (Summary)

व्यक्ति किसी एक समाज में जन्म लेता है तथा वहीं पाला पोषा जाता है। स्वयं समाज की संरचना उस समाज की संस्कृति के आधार पर बनती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण न केवल सामाजिक कारकों बल्कि सांस्कृतिक कारकों द्वारा भी होता है। सामान्यतः संस्कृति से तात्पर्य उन सभी सीखे गये व्यवहारों की समग्रता से होता है। जिनका सम्बन्ध प्रथा, मानक, विश्वास, कला, ज्ञान मूल्यों आदि से होता है।संस्कृति के दो तत्व बतलाये हैं। भौतिक तत्व तथा अभौतिक तत्व। मकान मंदिर, कपड़े बर्तन सड़कें आदि भौतिक तत्व के उदाहरण हैं तथा प्रथा, विश्वास, मानक, मूल्य, धर्म आदि अभौतिक तत्व के उदाहरण है। संस्कृति के अध्ययन हेतु कई विधियों का प्रयोग किया जाता है प्रमुख विधियां- क्षेत्र विधि,क्रास सांस्कृतिक विधि, प्रक्षेपी विधि, कारक विश्लेषण विधि आदि हैं। व्यक्तित्व विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का होता है।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. संस्कृति क्या है? परिभाषित कीजिये। तथा संस्कृति के अध्ययन की विभिन्न विधियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2. संस्कृति क्या है? संस्कृति को परिभाषित कीजिए।

3. संस्कृति की विशेषतायें बताते हुए उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

4. व्यक्तित्व का अर्थ बताते हुए उसके प्रकारों का वर्णन कीजिये|

5. युंग द्वारा व्यक्तित्व के प्रकार का वर्णन कीजिये|

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

1. होवेल (1956) मैन इन द प्रिमिटिव वर्ड,पेज- 7

2. लिंडग्रेन (1973) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल साइकोलोजी. पेज- 270

3. सिंह ,अरुण कुमार (2015).समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा.मोतीलाल बनारसी दास.बंगलो रोड,जवाहर नगर, नई दिल्ली

इकाई 7- संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध, व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का प्रभाव, व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम (Relationship between culture and personality, influence of culture on personality development, approaches to personality study)

इकाई संरचना-

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध

7.4 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव

7.4.1 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ पुरातन अध्ययन

7.4.2 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ आधुनिक अध्ययन

7.4.3 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव

7.5 व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागम

7.6 सारांश

7.7 निबन्धात्मक प्रश्न

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

कहा गया है कि 'व्यक्ति अपनी संस्कृति का आईना होता है''संस्कृति एवं व्यक्ति हमेशा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व एवं संस्कृति में सम्बन्ध बताते हुए रयूटर एवं हार्ट (Reuter and Hart) ने कहा है कि''समाज मनुष्य को पशु जीवन से अवश्य अलग करता है, लेकिन इस बात का निर्धारण संस्कृति ही करती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूप किस प्रकार होगा।''अर्थात जब बच्चा जन्म लेता है वह मात्र शरीर होता है अर्थात कच्चे माल की तरह। वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है वह संस्कृति उसके अनुभवों व व्यवहारों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर देती है। संस्कृति में ही बच्चे का व्यक्तित्व विकसित होने लगता है। व्यक्ति को भी अगर अपनी संस्कृति में किसी प्रकार की बुराई नजर आती है तो उसमें परिवर्तन करने के लिए वह अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित करता है।

इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति लगातार एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं ओर यही प्रभाव संस्कृति में एक निरन्तरता बनाये रखता है, व्यक्ति अपने आगामी पीढ़ी को अपनी संस्कृति को हस्तान्तरित करता है। इसलिए मानव अपनी बुद्धि विवेक एवं संस्कृति के कारण निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

7.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1. संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध जान सकेंगे।
2. व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति के प्रभाव को समझ सकेंगे।

व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागमों का वर्णन कर सकेंगे।

7.3 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध (Relationship between culture and personality)

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति की अहम भूमिका है। व्यक्ति का व्यक्तित्व संस्कृति के अनुरूप होता है। जन्मकाल से ही शिशु का पालन-पोषण तथा सामाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है। प्रत्येक संस्कृति में शिशु के सामाजीकरण की एक विधि होती है क्योंकि इसी विधि के द्वारा संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। जिस संस्कृति में बालक का लालन-पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते हैं। मैकाईवर और पेज (MacIver and Page) के शब्दों में "संस्कृति हमारे रहने व सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्यकलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है"।इस तरह संस्कृति कार्य करने की शैलियों, मूल्यों, भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियान का क्षेत्र है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से इन्हीं गुणों के आधार पर भिन्न होती है। अलग-अलग संस्कृतियों के अलग-अलग मूल्य होते हैं। जैसे-प्राचीन काल में भारतीय लोग धर्मपरायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक एवं धार्मिक नहीं हैं। फिर भी उनमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसका कारण भारतीय संस्कृति का प्रभाव ही है। पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक व मानसिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसी तरह अलग-अलग संस्कृति के समाजों में रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, कला, मूल्यों और परम्पराओं में भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। कुछ संस्कृतियों की जातियों में मनुष्य हत्या को पाप समझते हैं तो दूसरी ओर नागा संस्कृति में उन लोगों का बड़ा सम्मान होता है जो नर मुण्ड काट के लाते है। जो व्यक्ति जितने ज्यादा नर मुण्ड काटता है उतनी ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और उतने ही ज्यादा स्त्रियों के विवाह के प्रस्ताव आते हैं। जबकि दूसरी संस्कृति में नर हत्या करने वाले के साथ समाज के लोग अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहते। भारतीय संस्कृति

के कुछ परिवारों में तलाक देना अच्छा नहीं माना जाता परन्तु कुछ जनजातियों में जो स्त्री जितने अधिक तलाक पाती है, उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक बढ़ती है। पाश्चात्य देशों में तलाक को बुरा नहीं माना जाता है। कुछ समाज में कुंआरी कन्या के गर्भवती हो जाने पर कोई उससे विवाह नहीं करता, परन्तु कुछ जन-जातियों में विवाह से पहले संतानोत्पत्ति करना लड़की के विवाह में सहायक होता है। इस तरह की सांस्कृतिक भिन्नताएं बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालती हैं। संस्कृति की छाप व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर सीधी पड़ती है। संस्कृति विशेष पालन-पोषण प्रक्रिया एवं अन्य समान प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व के शीलगुणों को विकसित करता है तथा उसे खास सांचे में ढालता भी है।

7.4 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव (Influence of culture on personality)

प्रत्येक समूह या समाज की अपनी मान्यतायें होती है। मानव को उन मान्यताओं के अनुरूप ही व्यवहार करना पड़ता है, ऐसा न करने पर समूह तथा समाज व्यक्ति को दण्ड, आलोचना एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। चूंकि शिशु जब पैदा हेाता है तो उसे मानव निर्मित पर्यावरण मिलता है। उसी पर्यावरण में वह जीवन जीने का सलीका सीखता है, यह पर्यावरण ही उसकी संस्कृति होती है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन संस्कृति से होकर गुजरता है अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित करती रहती है। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए वैज्ञानिकों ने जितने भी अध्ययन किये हैं उन्हे मूलतः दो भागों में बांटा जा सकता है -

- ❖ पुरातन समाजों में संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ अध्ययन
- ❖ आधुनिक समाज में संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ अध्ययन

7.4.1. संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ पुरातन अध्ययन

व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए रुथ बेनेडिक्ट तथा मारगैरेट मीड रुथ बेनेडिक्ट ने अपनी पुस्तक पैटर्नस् आफ कल्चर में निम्नांकित तीन पुरातन समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व उनके संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन की चर्चा की है। ये तीन समाज हैं- क्वाकिटयूटल समाज, डोबूसमाज, जूनि समाज।

- ❖ **क्वाकियूटल समाज-**क्वाकियूटल समाज के जनजाति के लोग प्रशान्त उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में रहते हैं। इस समाज में वर्ग व्यवस्था के नियमों का पालन काफी कठोरता से किया जाता है। प्रत्येक वर्ग के मुखिया या प्रधान को धार्मिक या राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। समाज में उन व्यक्तियों की प्रतिष्ठा सबसे अधिक होती है जो धन अधिक मात्रा में इकट्ठा करते है तथा उनकी बर्बादी भी अधिक मात्रा में करते हैं। समाज में पितृसत्तात्मक परिवार होते हैं जिसके अनुसार पिता के बाद परिवार के समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बड़ा भाई होता है। सबसे छोटे लड़के

को काफी चतुर एवं चालाक समझ जाता है। ऊँचे कुल की लड़कियों से शादी हो जाने पर उस परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं स्तर बढ़ी हुई मानी जाती है। असाधारण बहादुरी दिखलाने पर भी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उँचा उठ जाता है। इस समाज में अपने सामाजिक स्तर को उँचा करने के लिए विशेष संस्थागत प्रविधि भी हेाती है जिसे पोटलैच कहा जाता हे। क्वाकियूटल जनजाति के इस सांस्कृतिक प्रतिमानों का प्रभाव उनके व्यक्तित्व विकास पर काफी अधिक पड़ता है। चूकि समाज में वर्ग व्यवस्था अधिक कटुरुप में होती है तथा उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्रभुत्व करने के लिए एक होड़ सी रहती है। अतः इन लोगों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना तीव्र होती है। प्रतिस्पर्द्धा की भावना के अलावा इन लोगों में तीव्र ईर्ष्या की भावना होती है। चूँकि बड़े भाई को ही समस्त सम्पत्ति मिल जाती है। इस जनजाति में धार्मिक विश्वास का अभाव पाया जाता है क्योंकि इनकी संस्कृति भौतिकवादी होती है

- **डोबू समाज-**डोबू जनजाति के लोग पूर्वी न्यू गिनिया के नजदीक एक द्वीप में रहते हैं। इस मसाज की संस्कृति में धोखेबाजी, चोरी, दूसरों को क्षति पहुँचाना आदि कार्यों को अच्छा समझा जाता है। पति एवं पत्नी के बीच विद्वेष अधिक पायी जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी तरह के शक की निगाह से देखा जाता है। इन लोगों में ऐसा विश्वास पाया जाता है कि दूसरों के आक्रमण से बचने के लिए तथा दूसरों पर आक्रमण करने के लिए जादू का ट्रिक जानना जरुरी है। डोबू समाज के इस सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम उनके व्यक्तित्व विकास पर अधिक पड़ता है। बेनेडिक्ट के अनुसार इस जनजाति के लोग अधिक ईष्यालू, विद्वेषी तथा शक्की होते हैं। जो व्यक्ति इस समाज में सबसे सामान्य होता है, उसे हम लोग अपने समाज में असामान्य कह सकते हैं।

- **जूनि समाज-**इस समाज में नेतृत्व सम्बन्धी कार्यों एवं प्रभुत्व को बुरा समझा जाता है और जो व्यक्ति इस तरह का कार्य करते हैं उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ये लोग शान्ति तथा दोस्ताना सम्बन्धी कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। जूनि समाज के इन सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम यह होता है कि इन लोगों के व्यक्तित्व में सहनशीलता, सांवेगिक स्थिरता तथा क्रमबद्धता आदि जैसे शीलगुणों का विकास तेजी से होता है।

इसके अलावा 1935 में मारगैरेट मीड (Margaret Mead) ने अपनी पुस्तक श्सेक्स एण्ड टैम्परामेंट इन थ्री प्रिमिटिव सोसाइटीजश् के निम्नांकित तीन जनजातियों के व्यक्तित्व के विकास में उनके सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रभावों को दिखलाकर रुथ बेनेडिक्ट के विचारों को पुष्ट किया-

- **एरापेश जनजाति-**जैसा कि कहा जा चुका है यह जनजाति न्यू गिनिया में पायी जाती है। इस जनजाति के लोग न्यू गिनिया के ऐसे पहाड़ी क्षेत्र में रहते हैं जो बाहरी दुश्मनों से पूर्ण रुपेण सुरक्षा प्रदान करता है। ये लोग कृषि व्यापार एवं शिकार द्वारा अपना रोजी रोटी चलाते हैं। इस जनजाति के लोगों में कोई सामाजिक संगठन नहीं होता है क्योंकि इसकी कोई जरूरत नहीं महसूस की जाती है। बिना इस तरह के संगठन के ही लोगों में एक दूसरे को मदद करने की भावना तीव्र होती है। चूंकि उनके क्षेत्र की सड़के एवं गलियां काफी चिकनी होती हैं। अतः उनमें कोई बड़ी सामाजिक पार्टी या कार्यक्रम अक्सर नहीं हो पाता है। इस जनजाति के पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों में ही नारीगुण की श्रेष्ठता पायी जाती है। इन लोगों में शिशुओं के पालन पोषण में माता और पिता समान रुप से हाथ बंटाते हैं। ऐरापेश जनजाति के इन सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम यह होता है कि ऐसे लोगों के व्यक्तित्व में सहानुभूति, प्रेम सदभावना एवं सहयोग आदि का शीलगुण पाया जाता है।

- **मुण्डुगुमोर जनजाति-**यह जनजाति भी न्यू गिनिया में ही पायी जाती है। इस जनजाति की भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु करीब-करीब एरापेश जनजाति के भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के ही समान है। फिर भी इनके व्यक्तित्व के शीलगुण ऐरापेश जनजाति के शीलगुणों से काफी भिन्न होते हैं। मुण्डुगुमोर जनजाति में बच्चों के पालन पोषण करने का तरीका ही कुछ ऐसा है, जिससे बाद में चलकर उनमें असुरक्षा एवं निराशा की भावना ही नहीं बल्कि निर्दयता एवं आक्रामकता की भावना तीव्र रुप से उत्पन्न हो जाती है। इस जनजाति की स्त्रियां अपने शिशुओं का पालन पोषण करने में उन्हें स्तन पान नहीं कराना चाहती है। या बहुत कम समय तक करा कर बंद कर देती हैं। जब शिुश रोते हैं तो स्त्रियां उन्हें थप्पड़ मार मारकर चुप कराती हैं। शिशुओं के पालन पोषण से वे काफी दूरी रहना चाहती हैं तथा वे उनका तिरस्कार भी काफी करती हैं। ऐसा देखा गया है कि कभी- कभी माँ की उपेक्षा के कारण शिशुओं की मृत्यु भी हो जाती है। शिशुओं को अपनी माता से इस प्रकार मिलने वाला दुर्व्यवहार ,तिरस्कार एवं फटकार का परिणाम यह होता है कि वयस्क होने पर वे लोग निर्दयी, आक्रामक, प्रतिद्वन्द्वी, ईष्यालु, शंकालू एवं अहंवादी स्वभाव के हो जाते हैं।

- **शाम्बूली जन-जाति-**इस जनजाति की संस्कृति स्त्री प्रधान होती है। इसमें महिलाऐं कठिन एवं सभी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं और समाज पर उन्ही की हुकूमत चलती है। पूरे समुदाय का शासन प्रबन्ध स्त्रियां ही करती हैं। पुरुष घर का कामकाज सम्भालते हैं। तथा रसोई एवं बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी उन्हीं की होती है। पुरुष क्लब में जाते हैं और नाचते भी हैं। स्त्रियां उनके नाचों को देखने के लिए दूर दूर से आकर एकत्रित होती हैं। स्त्रियां स्वयं ही अपने पति का चुनाव

करती हैं परन्तु पुरुषों में विनम्रता, सहनशीलता एवं भावुकता का शीलगुण अधिक होता है जबकि स्त्रियों में प्रभुत्व आकार्मकता, उत्तरदायित्व आदि का शीलगुण अधिक होता है। इन सभी के अलावा कुछ समाजशास्त्रियों तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने कुछ और जनजातियों के संस्कृति का व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है। इनमें न्यू मैक्सिको के होपी जनजाति तथा ग्रीनलैंड के एस्किमो आदि प्रधान हैं। होपी जनजाति में वर्णव्यवस्था नहीं पाया जाती है तथा समाज की आर्थिक व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए लोग आपस में अधिक सहयोग करते हैं। इस जनजाति में धार्मिक व्यवस्था को छोड़कर अन्य सभी तरह की सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान प्रमुख हाता है। इन लोगों में सहयोगिता के अलावा धर्मपरायणता भी पायी जाती है। इस तरह की संस्कृति में पलने के कारण होपी लोग दयालु, सहयोगी तथा समाजसेवी अधिक होतें हैं। इन लोगों में दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है तथा घमंड एवं स्वार्थ सम्बन्धी इच्छाओं का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

एस्किमों जनजाति की संस्कृति में व्यक्तिवादिता अधिक पायी जाती है। शिकार करके जीविका चलाना यहां के लोगों का मुख्य धन्धा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए अलग अलग शिकार करता है और यहां तक कि औजारों एवं हथियारों का निर्माण भी स्वयं ही करता है। कोई भी दूसरा व्यक्ति उन औजारों एवं हथियारों का प्रयोग नहीं कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहे जिस तरीके से क्यों न हो आर्थिक योगदान करना होता है। एस्किमो के इस सांस्कृतिक प्रतिमान का प्रभाव यह होता है कि इन लोगों में आत्मनिर्भरता, प्रतिद्वन्द्विता, आक्रामकता, नेतृत्व आदि शीलगुणों की प्रधानता होती है। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर सीधा एवं प्रत्यक्ष रुप से पड़ता है। संस्कृति में जिन-जिन कार्यों पर अधिक बल डाला जाता है इन कार्यों से सम्बन्धित शीलगुणों का विकास तीव्रता से होता है।

7.4.2 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ आधुनिक अध्ययन

कुछ समाजशास्त्रियों मानवशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने संस्कृति का आम व्यक्तियों पर अध्ययनों के आधार पर संस्कृति का व्यकित्व विकास पर प्रभाव दिखाया है। एन्थोनी (Anthony,1974)) के अध्ययन के अनुसार जिस संस्कृति में पारिवारिक कलह एवं झगड़े होते रहते हैं। उनके बच्चों की बुद्धि, सर्जनात्मक क्षमता तथा संज्ञानात्मक शैली का विकास मन्दित हो जाता है। ब्रोर्नफेनब्रेनर (Bornfenbrenner,1970) के अध्ययन में अमेरिकन बच्चों की मनोवृत्ति साथी उन्मुखी अधिक तथा वयस्क उन्मुखी कम थी जबकि रुसी बच्चों की मनोवृत्ति वयस्क उन्मुखी अधिक, साथी उन्मुखी कम थी। स्टैनली मिलग्राम (Stanley Milgram,1961) ने फ्रेंच बच्चों की तुलना नार्वेनियन बच्चों के साथ की। परिणाम में पाया कि फ्रेंच बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण तुलनात्मक रुप से अधिक था, परन्तु नार्वेयिन बच्चों में अनुरुपता

का गुण फ्रेंच बच्चों को अपेक्षा अधिक था। कोनिंग (Koening,1971) ने एक अध्ययन में तीन संस्कृति के व्यक्तियों की तुलना की गयी। वे तीन संस्कृति थे- अमेरिकन, फ्रेंच, तथा स्वेडिस , परिणाम में यह देखा गया कि अमेरिकन प्रयोज्यों द्वारा फ्रेंच प्रयोज्यों की तुलना में सहमति जन्य अनुक्रियाएं अधिक की गयी। इन्होंने अपने इस अध्ययन में यह पाया कि इन तीनों संस्कृतियों में प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चों में सहमतिजन्य अनुक्रियाएं बाद के जन्म क्रम वाले बच्चों की अपेक्षा अधिक थी। कोनिंग ने यह भी बतलाया है कि स्वेडिस माता-पिता अमेरिकन या फ्रेंच माता-पिता की तुलना में अपने बच्चों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील नहीं होते। ग्रीकवासियों की संस्कृति में समझौते को एक तरह से समूह निष्ठा के प्रति धोखा समझा जाता है।

फलस्वरुप, ग्रीकवासियों का स्वाभिमान पश्चिमी देशों के लोगों के स्वाभिमान से काफी भिन्न है। राष्ट्रीय चरित्र या मॉडल व्यक्तित्व के क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से भी व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का प्रभाव प्रमाणित होता है। गोरेर तथा रिकमैन (Gorer and Rickman,1949) ने रुसी राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन कर बतलाया कि इन लोगों में सत्तावादी तथा अनुशासन पालन जैसे गुणों की अधिकता होती है। लैचमैन (Lachman,1969) ने जापानी एवं पुर्तगाली राष्ट्रीय चरित्रों का अध्ययन किया और बतलाया कि जापानी लोगों में क्रमबद्धता बाध्यता तथा दमित आक्रामकता का शीलगुण अधिक पाया जाता है। जबकि पुर्तगालियों में विनम्रता, धूर्तता आदि जैसे शीलगुणों की प्रधानता होती है। व्यक्तित्व निर्माण में पड़ने वाले संस्कृति प्रभाव का कुछ उदाहरण हमें मानसिक विकारों तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तित्व शीलगुणों के अध्ययन से भी मिलता है। कांडिल तथा लिन (Candil and Lin,1969) वॉन मेरिंग तथा कासदान (Von Mering & Kasdan,1970) आदि मानवशास्त्रियों ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष दिया है-

- ❖ मानसिक अवस्था के बदलाव से संबंधित बीमारियों एवं व्यवहार में विकृतियां विकसित देशों की संस्कृतियों में कम तथा अविकसित देशों की संस्कृतियों में अधिक होती हैं।

- ❖ अफ्रीका एवं एशिया के देहाती क्षेत्रों में व्यवहारों एवं विचारों की अनावश्यक पुनरावृत्ति से संबंधित लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं। हालांकि भारत जैसे देश के बड़े-बडे शहरों में ऐसे लक्षण प्राय देखने को मिलते हैं।

- ❖ अशिक्षित समाज की संस्कृतियों में यौन भूमिका से संबंधित मनोवृत्ति कम देखने को मिलती है। परन्तु शिक्षित एवं विकसित समाज की संस्कृतियों में यह प्रायः देखने को मिलती है।

- ❖ जापान,स्वीटजरलैंड, स्वीडन तथा डेनमार्क की संस्कृतियों में आत्महत्या एवं उससे संबंधित व्यवहारों की आवृत्ति अधिक पायी जाती है। परन्तु भारत, पाकिस्तान, लंका,वर्मा आदि की

संस्कृतियों में ऐसी प्रवृत्तियों की कमी पायी गयी है।ऊपर किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व निर्माण में संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ता है।

7.4.3 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव

जिस तरह से संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है। उसी तरह से व्यक्तित्व का भी प्रभाव संस्कृति के विकास पर पड़ता है। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए जितने अध्ययन किये गये हैं तथा जितने सबूत प्रस्तुत किये गये हैं। उतने संस्कृति पर व्यक्तित्व के प्रभावों को दिखलाने के लिए नहीं किये गये हैं। फिर भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सबूत उपस्थित कर यह दिखलाया है कि संस्कृति भी व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित होती है। क्रेच, क्रचफिल्ड, तथा वैलेची के अनुसार निम्नांकित चार तरह की भूमिकाओं द्वारा व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति को प्रभावित करता है-

- व्यक्ति संस्कृति के एक विशेष सृष्टि जीव के रुप में कार्य करता है। इस तरह की भूमिका में संस्कृति के विभिन्न भौतिक तथा अभौतिक तत्वों के साथ वह अनुपालन दिखलाता है। और प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त ढंग से व्यवहार करने को प्रेरित रहता है।

- व्यक्ति संस्कृति के वाहक के रुप में कार्य कर संस्कृति के तत्वों को प्रभावित करता है। वाहक के रुप में वह एक सक्रिय एवं धनात्मक भूमिका निभाता है। तथा सांस्कृतिक तौर तरीकों, मूल्यों, मानकों तथा उपयोगिताओं का वर्णन दूसरों के सामने करके एक पीढ़ी से उसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है।

- संस्कृति के परिचालक के रुप में व्यक्ति समाज की सामान्य मनोवृत्तियों, मूल्यों ,मानकों, आदि का प्रयोग कर एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करता है। इस भूमिका में पूर्ण सफलता मिलने पर व्यक्ति सांस्कृतिक तत्वों की महत्ता को अधिक प्रभावकारी बना पाता है।

- संस्कृति के सृष्टिकर्ता के रुप में व्यक्ति संस्कृति में आवश्यक परिवर्तन लाता है। तथा इसमें से अमानवीय तत्वों को निकालकर बाहर फेंक देता है। इससे संस्कृति की उज्जवलता बढ़ जाती है। भारतीय संस्कृति में राजा राम मोहनराय तथा महात्मा गांधी की भूमिका इसके सटीक उदाहरण हैं। राजा राम मोहन राय ने भारतीय संस्कृति से सती प्रथा को हटाकर तथा महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति से छुआछूत जैसे कुप्रथा को हटाकर इस संस्कृति की उज्जवलता को काफी बढ़ाया है। इस तरह से इन दोनों महान व्यक्तियों ने भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन लाकर उसमें चार चांद लगाया है।

ऊपर किये गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का प्रभाव भी संस्कृति पर पड़ता है।

संस्कृति एवं व्यक्तित्व के सम्बन्धों के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष-

संस्कृति तथा व्यक्तित्व के बीच में दोहरा सम्बन्ध होता है। संस्कृति व्यक्तित्व विकास को काफी प्रभावित करती है तथा स्वयं महान व्यक्तियों से प्रभावित भी होती है।जब संस्कृति के तत्व महान व्यक्तियों से प्रभावित होते हैं तो उसमें महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं।

7.5 व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागम (Theoretical approaches of Personality)

व्यक्तित्व के स्वरुप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न तरह के उपागमों को सैद्धान्तिक उपागम कहा गया है। ऐसे प्रमुख उपागमों का वर्णन यहां अपेक्षित है , जो निम्नांकित है –

- **मनोविश्लेषणात्मक उपागम-**व्यक्तित्व का अध्ययन करने का सबसे पहला उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम है, जिसका प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया। इस उपागम में मानव प्रकृति के निराशावादी तथा निश्चयवादी छवि पर बल डाला गया है। इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए अचेतन की इच्छाओं, यौन एवं आक्रामकता के जैविक आधारों आरंभिक बाल्यावस्था के मानसिक संघर्षों को महत्वपूर्ण समझा गया है और इन्हें व्यक्तित्व का प्रमुख निर्धारक माना गया है।
- **नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम-**इस उपागम का विकास दो श्रेणी के मनोवैज्ञानिकों द्वारा हुआ है। एक श्रेणी में वैसे मनोवैज्ञानिक हैं जो कभी पहले फ्रायड के काफी नजदीक और निष्ठावान थे, परंतु फ्रायड द्वारा व्यक्तित्व के स्वरुप की एक स्वतंत्र व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इनमें एडलर एवं युंग के नाम मशहूर हैं।

  अतः नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम के तहत हम एडलर, युंग, हार्नी, सुल्लीभान, फ्रोम, तथा मर्रे के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे। नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम से निम्नांकित दो बिन्दुओं पर स्पष्ट रुप से भिन्न है-

  - **नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम** में व्यक्तित्व के सामाजिक कारकों या प्रभावों पर तुलनात्मक रुप से अधिक बल डाला गया है, जबकि मनोविश्लेषणात्मक उपागम में व्यकित्त्व के जैविक कारकों पर अधिक बल डाला गया है। ध्यान रहे कि नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम के जैविक कारकों को सिर्फ गौण कारक समझा गया है न कि उसे अस्वीकृत कर दिया गया है।
  - **मानव मनोविश्लेषणात्मक उपागम** में मानव प्रकृति के आशावादी छवि पर अधिक बल डाला गया है और इसमें यह माना गया है कि व्यकित्तव पर्यावरणी कारकों का प्रतिफल अधिक होता है जबकि मनोविश्लेषणात्मक उपागम में मानव प्रकृति के

निराशावादी छवि पर अधिक बल डाला गया है तथा व्यक्तिव को जन्मजात दैहिक कारकों का प्रतिफल अधिक माना गया है।

- **शारीर गठनात्मक उपागम-**इस उपागम की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व पैटर्न तथा विकास की व्याख्या शरीर के संगठन एवं उनके आकार- प्रकार तथा उससे संबंधित चितप्रकृति के रुप में किया जाता है। इसके तहत क्रेश्मर तथा शेल्डन द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों को रखा जाता है।

- **जीवन अवधि उपागम-**इस उपागम की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति के व्यवहारों में हाने वाले परिवर्तनों के आलोक में किया जाता है। व्यक्तित्व के सभी पहलुओं की व्याख्या जन्म से लेकर मृत्यु तक की आठ अवस्थाओं में से प्रत्येक अवस्था में उत्पन्न संकट या परिवर्तन बिन्दुओं से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के रुप में की जाती है। इसके तहत इरिक इरिक्सन के सिद्धान्त की व्याख्या की जाती है।

- **प्रकार उपागम-**व्यक्तित्व के वर्णन का यह एक क्लासिकी उपागम है जिसमें व्यक्तित्व को विभिन्न प्रकारों में बांटकर अध्ययन किया जाता है। इस उपागम के अनुसार कोई व्यक्ति सामाजिक प्रकार का हो सकता है तो कोई प्रभावकारी प्रकार का तो कोई एकांतवासी प्रकार का। प्रकार उपागम की व्याख्या के साथ एक महत्वपूर्ण कठिनाई यह आती है कि शायद ही कोई व्यक्ति का व्यक्तित्व किसी एक प्रकार में स्पष्ट रुप से पूर्णतः फिट करता हो।

- **शीलगुण उपागम-**व्यक्तित्व के इस उपागम के तहत हम ऑलपोर्ट तथा कैटेल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे। इस तरह के शीलगुण उपागम में व्यवहार के व्यक्तिगत निर्धारक पर बल डाला जाता है इस उपागम की प्रमुख मान्यता यह है कि शीलगुणों के ही कारण व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में संगत ढंग से व्यवहार करता है। परिस्थिति का प्रभाव व्यक्ति पर बहुत थोड़ा पड़ता है।

- **विमीय उपागम-**इस उपागम के तहत व्यक्तित्व की व्याख्या विमा के रुप में की जाती है। अतः व्यक्ति को संबंध विमा पर उच्च या निम्न के रुप में रेट किया जा सकता है। जैसे- वहिमुर्खता व्यक्तित्व की एक विमा है जिस पर कोई व्यक्ति उच्च या निम्न प्राप्तांक प्राप्त कर सकता है।

- **सांवृत्तिक या मानवतावादी उपागम-**इस उपागम द्वारा व्यक्तित्व के अध्ययन में व्यक्ति के आत्मगत अनुभूतियों पर ध्यान डाला जाता है। दूसरे शब्दों में अध्ययनकर्ता इस बात पर ध्यान देता है कि व्यक्ति वातावरण को किस तरह से प्रत्यक्षण करता है। सचमुच में देखा जाय तो

व्यक्तित्व अध्ययन का यह सांवृत्तिक उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम तथा व्यवहारवादी उपागम दोनों के प्रति एक तरह की प्रतिक्रिया है। ठीक उसी तरह व्यवहारवादी उपागम का यह दावा कि व्यवहार सिर्फ पर्यावरणी कारकों द्वारा प्रभावित हाता है, को भी सांवृतितक उपागम में अधिक महत्व नहीं दिया गया। सावृत्तिक उपागम में मानवतावादी संप्रत्ययों जिस पर मैस्लो ने अधिक बल डाला अतः सांवृतिक उपागम में मैस्लो तथा रोजर्स द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है।

- **संज्ञानात्मक उपागम-**इस उपागम द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन में इस बात पर बल डाला गया है कि व्यक्ति किन तरीकों से अपने पर्यावरण तथा अपने आप को जानता है। वे उनका किस तरह से प्रत्यक्षण करता है, मूल्यांकन करता है, सीखता है, सोचता है, निर्णय लेता है तथा समस्या का समाधान करता है। यद्यपि यह सही है कि व्यक्तित्व अध्ययन के अन्य उपागमों में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है, परंतु इस उपागम में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही उसके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रुप में समझने की कोशिश की जाती है।

- **व्यवहारात्मक एवं अधिगम उपागम-**इस उपागम में व्यक्तित्व को उद्दीपकों के प्रति विशेष सीखी गई अनुक्रियाओं का एक संग्रहण तथा स्पष्ट व्यवहारों या आदत तंत्रों का एक सेट माना गया है। अतः इस उपागम में व्यक्तित्व से तात्पर्य सिर्फ उन तथ्यों से होता है जिसे वस्तुनिष्ठ रुप से प्रेक्षण किया जाए तथा जिसमें जोड़ तोड़ किया जाए इन दोनों पूर्व कल्पनाओं के आलोक में यह कहा जा सका है कि इस उपागम में व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए लोगों के अर्जित या सीखे गये व्यवहारों को समझना जरुरी होता है और लोगों के अर्जित व्यवहारों को समझने के लिए उनके अधिगम इतिहास या उनके वर्तमान वातावरण या दोनों को ही समझना आवश्यक है।

- **सामाजिक-संज्ञानात्मक उपागम-**इसे पहले सामाजिक सीखना उपागम कहा जाता था। व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए पर्यावरण या परिस्थिजिन्य कारकों के महत्व पर बल डाला गया है। सामाजिक संज्ञानात्मक उपागम की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यवहार व्यक्तिगत चरों एवं पर्यावरणीय चरों के सतत अन्तःक्रिया तथा उनके संज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव का परिणाम होता है। पर्यावरणी कारक सीखने या अधिगम की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार को निर्धारित करते हैं और व्यकित के इस व्यवहार से पर्यावरण तथा संज्ञान में कुछ परिमार्जन होता है। किसी व्यक्ति के व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने के लिए हम लोगों को यह जानना आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति के गुण किस तरह से परिस्थिति के गुणों के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। इस उपागम के तहत

अल्बर्ट वैन्डूरा वाल्टर मिशकेल तथा मार्टिन सेलिगमैन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है।

- **सीमित क्षेत्र उपागम-**आजकल कुछ व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को ठीक ढंग से समझने के लिए हम लोगों को कई अलग-अलग ऐसे सिद्धान्तों की जरुरत होती है। जिसमें व्यक्तित्व के मात्र एक या दो पहलुओं की विस्तृत व्याख्या की जाए इसमें मूलतः उपलब्धि आवश्यकता सिद्धान्त तथा संवेदन खोज सिद्धान्त का वर्णन किया जाता है। स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व के स्वरुप को समझने तथा उसका अध्ययन करने के लिए कई तरह के उपागमों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक उपागम के तहत विभिन्न तरह के सिद्धान्तों का वर्णन भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है।

भावमूलक एवं नियमान्वेषी उपागम- व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को अध्ययन करने के लिए कई तरह के शोध विधियों का प्रतिपादन किया है जिनमें निम्नांकित दो शोध उपागम अधिक लोकप्रिय हैं।

- **भावमूलक उपागम-**इस अध्ययन विधि में किसी एक व्यक्ति का विस्तृत विश्लेषण करके तथा उन विमाओं को जो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए आवश्यक होते हैं, का विश्लेषण करके व्यक्तित्व के बारे में जानने की कोशिश की जाती है। दूसरे शब्दों में इस उपागम में विशिष्ट व्यक्तियों के अनोखेपन या अपूर्वता के अध्ययन पर बल डाला जाता है। इसमें शोधकर्ता उन शीलगुणों के संयोगों की पहचान करने की कोशिश करता है जो किसी विशिष्ट व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या उचित ढंग से करता है। इस उपागम में कभी-कभी कई व्यक्तियों पर एक ही तरह के मापन प्रविधियों का उपयोग किया जाता है परंतु किसी एक मापनी पर ही व्यक्ति के प्राप्तांक की तुलना उसी व्यक्ति के अन्य मापनियों पर के प्राप्तांकों के साथ, न कि प्रत्येक मापनी पर अन्य लोगों के प्राप्तांकों के साथ की जाती है। जैसे-कभी-कभी यह जानना आवश्यक हो जा सकता है कि क्या व्यकित राजनैतिक मूल्य को सैद्धान्तिक मूल्य से अधिक महत्व देता है इस तरह की परिस्थिति के लिए भावमूलक उपागम की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि यहां तुलना एक ही व्यक्ति के भीतर की जा रही है। इस उपागम के प्रमुख समर्थक गौर्डन आलपोर्ट हैं। भावमूलक उपागम में एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यकितत्व के अध्ययन पर बल डाला जाता है।और जो मनोवैज्ञानिक इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं वे व्यक्तित्व के विकासात्मक सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था अधिक व्यक्त करते हैं।

❖ **नियमान्वेषी उपागम**-नियमान्वेषी उपागम भी व्यक्तित्व का अध्ययन करने का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। इस उपागम में अध्ययन किये जाने वाले सभी व्यक्तित्यों की तुलना व्यकित्त्व के चुने गये खास विमाओं पर की जाती है। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व अध्ययन के इस दृष्टिकोण में अध्ययनकर्ता व्यक्तियों के कुछ खास खास विमाओं जैसे वर्हिमुखता, स्नायुविकृति, आदि का चयन कर लेता है । आलपोर्ट का मत था कि नियमान्वेषी उपागम में व्यक्ति के भीतर होने वाले प्रक्रियाओं को नजर अंदाज किया जाता है। अतः इस उपागम को उनके द्वारा तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी उतना प्रबल एवं महत्वपूर्ण नही बतलाया गया है जितना की भावमूलक उपागम को।

7.6 सारांश (Summary)

जब बच्चा जन्म लेता है वह मात्र शरीर होता है अर्थात कच्चे माल की तरह वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है। संस्कृति उसके अनुभवों व व्यवहारों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर देती है। संस्कृति में ही बच्चे का व्यक्तित्व विकसित होने लगता है। व्यक्ति को भी अगर अपनी संस्कृति में किसी प्रकार की बुराई नजर आती है तो उसमें परिवर्तन करने के लिए वह अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति लगातार एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं और यही प्रभाव संस्कृति में एक निरन्तरता बनाये रखता है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। संस्कृति विभिन्न प्रकार जैसे- धर्म, भाषा, नैतिकता, परम्पराओं, प्रथाओं आदि से व्यक्तित्व को लगातार प्रभावित कर विकसित करती है। व्यक्ति संस्कृति के वाहक के रुप में कार्य कर संस्कृति के तत्वों को प्रभावित करता है। वाहक के रुप में वह एक सक्रिय एवं धनात्मक भूमिका निभाता है। सांस्कृतिक तौर तरीकों, मूल्यों, मानकों तथा उपयोगिताओं का वर्णन दूसरों के सामने करके एक पीढ़ी से उसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है।व्यक्तित्व के स्वरुप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न तरह के उपागमों के तहत कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनमें मनोविश्लेषणात्मक उपागम, प्रकार उपागम, शीलगुण उपागम, मानवतावादी उपागम, सामाजिक संज्ञानात्मक उपागम आदि प्रमुख हैं।

7.7 अभ्यास प्रश्न (Question for Practice)

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के बाह्य रूप को कहते हैं। (सत्य / असत्य)
2. व्यक्तित्व एवं संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। (सत्य / असत्य)
3. संस्कृति के तत्व हैं-
   - भाषा

- धर्म एवं नैतिकता
- परम्परायें
- उपरोक्त सभी

4. संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। (सत्य / असत्य)

7.8 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Question)

1. व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. जनजातीय उदाहरणों द्वारा सांस्कृतिक प्रभावों का विवेचन कीजिए।
3. टिप्पणी लिलिखिए -
   - संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध।
   - व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक।

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

1. डा0 श्रीवास्तव, डी0एन0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
2. डा0 सिंह, ए0 के0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
3. डा0 सिंह, आर0एन0-आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान
4. डा0 सिंह, अरूण कुमार- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा
5. डा0 अग्रवाल पी0के, डा0 पाण्डेय, एस0एस0- सामाजिक मनोविज्ञान

ईकाई-8 व्यक्तित्व निर्माण,स्व का मनोविश्लेषणात्मक उपागम, सामाजिक स्वतंत्रता और निर्भरता (Personality Formation, Psychoanalytic Approach to Self, Social Independence and Dependence)

इकाई संरचना-

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय

8.3.1 आत्म संप्रत्यय

8.3.2 शीलगुण

8.4 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

8.5 व्यक्तित्व विकास के चरण

8.6 व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या

8.7 आत्मन के विकास का सिद्धान्त

8.8 स्वतंत्रता बनाम आश्रयता

8.9 सारांश

8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.1 प्रस्तावना (Introduction)

पिछली इकाई में आपने जाना कि व्यक्तित्व क्या है और संस्कृति से इसका क्या सम्बन्ध है और यह भी जाना कि व्यक्तित्व संस्कृति को कैसे प्रभावित करता है और स्वयं संस्कृति से कैसे प्रभावित होता है।प्रस्तुत इकाई में आप इससे आगे की प्रक्रिया को समझेंगे अर्थात व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होता है तथा इसके निर्माण में किन किन तत्वों कि भूमिका होती है, साथ ही स्व के मनोविश्लेषणात्मक उपागम को समझेंगे और अंत में स्वतंत्रता एवं निर्भरता के बारे में जानेंगे।

8.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1) व्यक्तित्व विकास के बारे में जान पाएंगे।
2) व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया समझ पाएंगे ।
3) विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्तित्व विकास को स्पष्ट कर सकेंगे ।
4) व्यक्तित्व विकास की सैदान्तिक व्याख्या कर पाएंगे।
5) स्वतंत्रता तथा आश्रयता के महत्त्व को समझ पाएंगे।

8.3 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय (The Concept of Personality Development)

एक ऐसा संप्रत्यय है जिससे इस क्षेत्र के मनोवैज्ञानिकों को सबसे अधिक उलझा कर रखा है। अतः इसके अर्थ को गंभीरतापूर्वक समझना आवश्यक है। व्यक्तित्व विकास का अर्थ बतलाने के पहले हम यह बतला देना उचित समझते हैं कि विकास का अर्थ मनोविज्ञान में क्या होता है। विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ परिपक्वता तथा पर्यावरण के साथ होने वाले अंतःक्रिया के परिणामस्वरुप व्यक्ति के वर्द्धन तथा क्षमता में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता तथा अनुभूति के परिणामस्वरुप परिवर्तनों के होने के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। वॉन डेन डेली के अनुसार विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकास का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि व्यक्ति की लम्बाई या उसका वजन पहले से अधिक हो गया है या उसकी क्षमता पहले से अधिक हो गयी है। बल्कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें बहुत सारे संरचनाएं तथा क्रियाएं सम्मिलित होती हैं। जहां व्यक्तित्व विकास का प्रश्न है, इससे तात्पर्य व्यक्तित्व संरुप (Pattern) के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्संबंधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है। अतः इन दोनों तत्वों पर हम स्वतंत्र रुप से विचार करेंगें-

8.3.1आत्म संप्रत्यय (Self-concept):-आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है कि जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का दर्पण प्रतिमा होता है जो व्यक्ति द्वारा किये गए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा किये गए प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है। प्रत्येक आत्म संप्रत्यय के दो पहलू होते हैं-दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक। दैहिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते है जो व्यक्ति अपने रुप, रंग, यौन उपयुक्तता, किये जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में शरीर का महत्व तथा दूसरे लोगों से उनके शरीर को मिलने वाली प्रतिष्ठा आदि सम्मिलित होते हैं। मनोवैज्ञानिक पहलू में सारे सम्प्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के

अपनी क्षमता तथा अक्षमता, अपनी योग्यता तथा अन्य लोगों के साथ सबंध आदि के बारे में होते हैं। प्रारंभ में ये दोनों पहलू अलग-अलग होते हैं परंतु जैसे- जैसे व्यक्तित्व का विकास होते जाता है, वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं।चूंकि आत्म संप्रत्यय व्यक्तित्व पैटर्न का सारभाग होता है अतः इससे शीलगुणों का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे-यदि व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय धनात्मक होता है तो व्यक्ति में अपने आत्म विश्वास, आत्म सम्मान तथा अपने आप को यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूंल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है। दूसरी तरफ यदि आत्म संप्रत्यय नकारात्मक होता है तो व्यक्ति में हीनता तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उनमें आत्म विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बुरा असर पड़ता है।

8.3.2 शीलगुण (Traits)-शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों, से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व सहनशीलता आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण है। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में सयांजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएं होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता। वैयक्तिकता से तात्पर्य यह होता है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है । संगतता से तात्पर्य यह होता है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।व्यक्तियों में शीलगुण का विकास अंशतः अधिगम तथा अंशत: आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करता है। शीलगुणों में परिवर्तन घर तथा स्कूल में दिए गए बाल्यावस्था के प्रशिक्षण द्वारा तथा उसे मॉडल व्यक्ति द्वारा होता है। जिसका व्यक्ति अपनी जिंदगी में अनुकरण करता है- जैसे- जिस बच्चे का बाल्यावस्था में सख्त सत्तावादी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रायः आगे चलकर उसमें एक अदम्य समायोजी पैटर्न विकसित हो जाता है। अन्य बातों के अलावा वयस्कावस्था में ऐसे लोग अतिनियंत्रित, अंतर्मुखी, रुढ़िवादी, परम्परागत अवरोधी आदि व्यवहार दिखाने वाले हो जाते हैं। इन सबों से मिलकर जिस व्यक्तित्व संलक्षण का विकास होता है, उसे सत्तावादी व्यक्तित्व संलक्षण कहा जाता है। स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास का अर्थ उतना सरल नहीं है जितना कि यह ऊपर से दिखता है। इस विकास में न केवल आत्म संप्रत्यय बल्कि शीलगुणों का विकास भी सम्मिलित होता है ।

8.4 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया (The Process of Personality Development)

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में संपन्न होती है। उन विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले व्यक्तित्व विकास पर प्रकाश डालने

के पहले यह अनिवार्य है कि हम पहले ऐसे विकास की कुछ सामान्य विशेषताएं है उन पर एक दृष्टि डालें। इन विशेषताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं-

- **व्यक्तित्व विकास में आरंभिक नींव महत्वपूर्ण होती है**- इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जो मनोवृत्ति, आदत तथा व्यवहार का पैटर्न स्थापित होता है, वह बहुत सीमा तक बाद के व्यक्तित्व विकास में होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करता है।
- **व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों की भूमिका प्रधान होती है**- व्यक्तित्व विकास में परिपवता मौलिक संसाधनों को प्रदान करता है जिसके अनुसार व्यक्ति सीखकर व्यवहार के सामान्य क्रम एवं पैटर्न को दिखाता है।
- **विकास का एक निश्चित एवं पूर्वानुमेय पैटर्न होता है**-जब तक पर्यावरण या अन्य समान कारकों का हस्तक्षेप नहीं होता है तब तक व्यक्ति के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाला विकास एक निश्चित पैटर्न के अनुसार चलता रहता है जो पूर्वानुमेय होता है। अब तक कोई ऐसा सबूत प्राप्त नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाय कि व्यक्तित्व का अपना विकास विशेष पैटर्न होता है। हां यह अवश्य होता है कि व्यक्तित्व विकास का दर अलग-अलग होता है।
- **सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं**-व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते है। यह विशेषता एकांकी जुड़वों में भी पाया जाता है।
- **व्यक्तित्व विकास का प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है**-व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ खास ढंग का विशेष व्यवहार करता है। प्रत्येक अवस्था में कुछ अवधि संतुलन की होती है तो कुछ अवधि असंतुलन की होती है। संतुलन की अवधि में व्यक्त अपने वातावरण की मांगो के साथ आसानी से समायोजन कर लेता है तथा उत्तम समायोजन करता हे।

  परंतु असंतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण के मांगों के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है जिससे उसके सामाजिक समायोजन में कठिनाइयां होती है।
- **व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में कुछ जोखिम होते है**-विकास का प्रत्येक अवस्था में कुछ भौतिक, मनोवैज्ञानिक या पर्यावरणी जोखिम कारक हाते हैं। जिनसे व्यक्तित्व विकास थोड़ा अवरुद्ध होता है।
- **व्यक्तित्व विकास पर सांस्कृतिक परितर्वनों का प्रभाव पड़ता है**- प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार के सांस्कृतिक मानकों एवं मूल्यों से बंधा होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व विकास पर उन सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े ।

❖ **व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी सामाजिक प्रत्याशाएं होती हैं-** विकास को प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ कौशलों को सीखता है तथा व्यवहार के विभिन्न अनुमोदित पैटर्न को सीखता है। इस हाविंगहर्स्ट ने विकासात्मक कार्य कहा है।

8.5 व्यक्तित्व विकास के चरण (Steps in Personality Development)

व्यक्तित्व विकास के चरण निम्नलिखित हैं।इनका वर्णन इस प्रकार है-

❖ **पूर्वप्रसूति अवस्था में व्यक्तित्व विकास-**पूर्व प्रसूति काल गर्भधारण से लेकर जन्म तक की अवधि जो सामान्यतः 20 दिनों तक विस्तारित रहती है। यह अवस्था तीन भागों में बंटी होती है। युग्मनंज की अवस्था, भ्रूण की अवस्था तथा फेटस की अवस्था। अध्ययनों से पता चलता है कि इस अवधि में हुए घटनाओं का मॉ के गर्भ में पल रहे बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बोवेस एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि यदि गर्भवती माता किसी कारण से कुनैन का उपयोग करती है तो उनके बच्चे में बहरापन रोग हो जाता है। उसी तरह एसपिरीन तथा एण्टीबायटिक्स का उपयोग करने से बच्चें में हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। उसी तरह गर्भावस्था में जब माताएं कुपोषण का शिकार हो जाती है तो उनके बच्चों में मानसिक मंदता उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। सोनटैग ने फेल्स शोध संस्था में शोध करके यह दिखलाया है कि जब गर्भवती माताओं में तनाव एवं चिंता अधिक बढ़ जाती है तो उनके गर्भ में पल रहे बच्चें का शारीरिक क्रियाओं में कई गुना बढ़ोत्तरी हो जाती है। इतना ही नहीं यदि माताएं तीव्र सांवेगिक तनाव से बहुत दिनों तक परेशान रहती हैं तो वैसी परिस्थिति में तो उनके ऐसे बच्चें में जन्म मे बाद तरह तरह की समायोजन समस्याएं उत्पन्न होती है। विशेषतः डाऊन संलक्षण के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है। इन दोनों तरह की परिस्थिति में बच्चों का व्यक्तित्व विकास सामान्य नहीं हो पाता है।

❖ **शैशवावस्था में व्यक्तित्व विकास**- शैशवावस्था जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है तथा यह अवस्था सभी अवस्थाओं से छोटी होती है। इसे दो भागों में बांटा गया है- प्रसव अवधि जो जन्म से लगभग 30 मिनट तक का होता है तथा न्योनेट की अवधि जो नाभि को काटकर बांधने से दूसरे सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है। शैशवावस्था की क्रियाओं एवं घटनाओं से न केवल भविष्य में विकसित होने वाले व्यक्तित्व के पटर्न का पता चलता है बल्कि इनका ऐसे व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव भी पड़ता है। इस अवधि में बच्चों में तरह-तरह की भिन्नता पायी जाती है। कुछ बच्चे बहुत सोते हैं तो इस अवधि में कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो तुलनात्मक रुप से कम सोते हैं। इन सभी तरह की क्रियाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभाव पड़ते देखा गया है। हरलॉक के अनुसार जो बच्चे इस अवधि

में अधिक पेशीय क्रियाएं जैसे- हाथ पर फेंकना आदि करते हैं, उनमें आगे चलकर समायोजन संबंधी कठिनाइयां कम होती हैं क्योंकि उनका व्यक्तित्व विकास सामान्य होता है।

❖ **बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास**- बाल्यावस्था का प्रारंभ जन्म के दो सप्ताह बाद से प्रारंभ होकर अगले दो साल तक रहती है। बचपनावस्था को व्यक्तित्व विकास का विवेचित या क्रान्तिक अवस्था कहा जाता है। इसे विवेचित इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसी अवधि में उन सारे विशेषताओं की नींव पड़ती है जिस पर वयस्क व्यक्तित्व संरचना का आगे चलकर निर्माण होता है। निम्नांकित पांच ऐसे साक्ष्य प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क व्यक्तित्व संरचना की नीव इस अवधि में पड़ती है-कोट्स एवं उनके सहयोगियों तथा रुट्टर ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि इस अवधि में बच्चों में सांवेगिक वंचन होने पर आगे उनके व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी कमियां उत्पन्न होती है। चूंकि इस अवधि में बच्चे की अन्तक्रिया मां के साथ सबसे ज्यादा होती है अतः माँ के अपने व्यक्तित्व तथा बच्चे के साथ उसके संबंध का प्रत्यक्ष प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। इस अवधि में जब कोई अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल घटना घटती है तो उस समय बच्चों में विकसित हो रहा शीलगुण का बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे-स्टोन एवं चर्च ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि इस अवधि में जब बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण का निर्माण हो रहा होता है और यदि उस समय माता पिता से उसे अति संरक्षण मिलता है तो यह बच्चे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और उस शीलगुण का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जराई एवं स्कीनफिल्ड- के अध्ययन के अनसार इसी अवस्था में बच्चों में यौन अंतर की नीव भी पड़ जाती है जो बाद में पुरुष बच्चे को एक प्रकार से तथा स्त्री बच्चे को दूसरे प्रकार से व्यवहार करने एवं सोचने के लिए बाध्य करता है । इस अवस्था में व्यक्तित्व पैटर्न का सार आत्म संप्रदाय का जो जन्म होता है, वह बाद में करीब-करीब वैसा ही रह जाता है। वैसी परिस्थिति में व्यक्तित्व शीलगुणों में किसी तरह का परिवर्तन से व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है। बाल्यावस्था में कुछ व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता है इस परिवर्तन का स्वरुप मात्रात्मक या गुणात्मक कुछ भी हो सकता है। मात्रात्मक परिवर्तन होने पर पहले से उपस्थित शीलगुण दूसरे शीलगुण द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। जैसे- यदि इस अवस्था में सामाजिक रुप से कोई अवांछनीय शीलगुण वांछनीय द्वारा प्रतिस्थापित होता है तो यह गुणात्मक परिवर्तन का उदाहरण होगा।

❖ **बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास**- बाल्यावस्था 2 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक की होती है। इसमें 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक को आरंभिक बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष की आयु तक को उत्तर बाल्यावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था को प्राक्स्कूल अवस्था या प्राक टोली अवस्था तथा उत्तर बाल्यावस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था

में बच्चों का शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। बाल्यावस्था समाप्त होते-होते सांवेगिक अभिव्यक्ति का ढंग अधिक परिपक्व हो जाता है। वे सामाजिक रुप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से उसे उन्हें दूसरों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नही हो सकेगा । मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह संयुक्त रुप से स्पष्ट हुआ है कि बाल्यावस्था समाप्त होते ही बच्चों के व्यक्तित्व में कुछ खास प्रकार के सामाजिक व्यवहार विकसित होते है जिनमें प्रमुख है- सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रतियागिता करना उत्तरदायित्व लेना, सामाजिक सूझ, सामाजिक विभेद, पूर्वाग्रह तथा यौन प्रतिरोध आदि दिखाना।

- **पूर्व किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-**यह अवस्था सामान्यतः 12-13 वर्ष से 15-16 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास संबंधी परिवर्तन काफी स्पष्ट होते हैं और लड़कों की तुलना में लडकियों का व्यक्तित्व विकास अधिक प्रभावित होता है। लड़कों तथा लड़कियों दोनों में इस अवस्था में प्रायः सरदर्द, पीठ दर्द तथा पूरे शरीर में सामान्य दर्द की शिकायत भी होती है जो स्पष्टतः उनके ग्रन्थीय विकास के कारण होते हैं।

- **किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास**- यह अवस्था 16-17 साल की आयु से लगभग 19-20 साल की आयु तक होती है। व्यक्तित्व विकास की यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसमें बहुत तरह के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते है। गैसेल तथा मोर ने अपने अध्ययन में पाया कि 16-17 साल के बालक बालिकाओं दोनों में ही क्रोध के संवेग की तीव्रता अधिक होती है। इनमें विषम लैंगिकता का शीलगुण भी विकसित होने लगता है क्योंकि लड़के एवं लड़कियां अपने विपरीत यौन के व्यक्तियों के साथ मिलने-जुलने में काफी आनंद उठाते है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति का संज्ञानात्मक विकास एक नया रुख अपनाता है और इनके द्वारा क्रमबद्ध निगमनात्मक चिंतन का उपयोग किसी समस्या के समाधान में अधिक होने लगता है। इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियों में आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इस अवस्था में जो व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण करने में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते है तथा जो अपनी क्षमताओं एवं कमजोरियों का सही मूल्यांकन करते है, उनका व्यक्तित्व पैटर्न का विकास अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं समुचित होता है।

- **प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास**- यह अवस्था 21 वर्ष से लगभग 40 वर्ष की होती है। इस अवस्था में सामान्यतः व्यक्ति शादी करके अपना घर परिवार बसाता है और किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है तथा अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ाता है। इन्हीं कारणों

से इस व्यवस्था या बसाने की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की अभिरुचियां थोड़ी सीमित हो जाती है। परन्तु यदि उनका सामाजिक आर्थिक स्तर प्रतिकूल होता है तो ऐसी सामाजिक क्रियाएं काफी कम एवं सीमित ही हो पाती है। इस उम्र में अविवाहित व्यक्ति विवाहित व्यक्ति की तुलना में सामान्यतः अधिक सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं । अतः इनमें सामाजिकता का शीलगुण तुलनात्मक रुप से अधिक तेजी से विकसित होता है।

❖ **मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास**- मध्यावस्था या मध्यवयस्कावस्था की अवधि 40 से 60 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में कई कारणों से तनाव अधिक होता पाया गया है । मारमोर के अनुसार इस अवस्था में चार तरह के तनाव मुख्य रुप से होते हैं जिनका व्यक्तित्व पैटर्न के विकास पर सीधा असर पड़ता है। वे चार तनाव निम्नांकित हैं-

- दैहिक तनाव- उम्र के परिणाम स्वरुप गिरते स्वास्थ्य के कारण इस तरह का तनाव उत्पन्न होता है।
- सांस्कृतिक तनाव- इस तरह के तनाव का मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में यौवन शक्ति को उनके तुलना में अधिक महत्व दिया गया होता है।
- आर्थिक तनाव- इसका कारण सेवामुक्त होने पर आय में कमी तथा इस सीमित आय से परिवार के सदस्यों को शिक्षित करके स्तर संकेत प्रदान करने के प्रयास से होता है।
- मनोवैज्ञानिक तनाव- इस तरह के तनाव के कई कारण होते हैं जिनमें पति या पत्नी का देहांत, घर से बच्चों का व्यवसाय या नौकरी पर चला जाना, वैवाहिक जीवन की उम्र मृत्यु के करीब होने का अनुमान आदि प्रमुख है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि इस अवस्था में दैहिक क्षमता में गिरावट आने के साथ ही साथ मानसिक क्षमता में भी गिरावट आती है। टरमैन एवं ओडेन ने पुरुषों तथा महिलाओं के समूह पर एक अनुदैर्ध्य अध्ययन किया और पाया कि उच्च बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों में इस मध्यावस्था में भी बौद्धिक तथा मानसिक ह्रास के कोई सबूत नहीं मिलते हैं। केसलर ने भी अपने अध्ययन में इस तथ्य की संपुष्टि करते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्तियों में तो इस अवस्था में समस्या समाधान तथा शाब्दिक क्षमताएं और विकसित हो जाती है। मध्यावस्था में कुछ व्यक्तियों में सामाजिक समायोजन पहले से परिपक्व हो जाता है क्योंकि उनके पास अब सामाजिक क्रियाओं के लिये पर्याप्त समय मिलता है।

❖ **वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास**-जीवन अवधि की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था होती है जो सामान्यतः 60 वर्ष से प्रारंभ होकर मृत्यु तक की अवधि तक विस्तारित होती है। 60 से 70

साल की अवधि को आरंभिक वृद्धावस्था तथा 70 से मृत्यु तक की अवधि को प्रगत वृद्धावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कुछ विशेष दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। जिनसे वृद्धों के समायोजन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनके खुशियों को कुप्रभावित करता है।

हरलॉक के अध्ययनानुसार इस अवस्था में व्यक्ति के रुप रंग, एवं ढील ढौल से स्पष्ट परिवर्तन आते हैं। दैहिक कारणो में शक्ति की कमी, जोड संधियों में कड़ापन हाथ सिर एवं निम्न जबड़े में कमी मुख्य है। अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि इस अवस्था के लोगों के आगमनात्मक तथा निगमनात्मक तर्कणा में पर्याप्त कमी हो जाती है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास अवधि के विभिन्न अवस्थाओं में चलने वाले एक निरंतर प्रक्रिया है जिनका इन सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव पडता है।

8.6 व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या (Theoretical explanation of personality development)

जैसा कि हम जानते है व्यक्तित्व विकास जीवन की विभिन्न अवधियों या अवस्थाओं में होने वाली एक निरंतर प्रक्रिया है। फलस्वरुप, व्यक्तित्व विकास एवं उसके संबंधित पहलुओं की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है । इस खंड में हम इन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा सिर्फ व्यक्तित्व विकास की गयी सैद्धान्तिक व्याख्या पर प्रकाश डालेंगें। इन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों में निम्नांकित मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी व्याख्या अधिक मशहूर है-

- ❖ फ्रायड की विचारधारा
- ❖ इरिक्सन की विचारधारा
- ❖ पियाजे की विचारधारा
- ❖ मूलर एवं डोलार्ड की विचारधारा
- ❖ बैंदुरा की विचारधारा
- ❖ युग की विचारधारा
- ❖ सुल्लिभान की विचारधारा

इन सब का वर्णन इस प्रकार है-फ्रायड, इरिक्सन तथा पियाजे द्वारा प्रदत्त व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में एक उभयनिष्ठ बिंदु यह है कि इन तीनों में व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या विभिन्न संबंध

अवस्थाओं में बांटकर किया है। यही कारण है कि इन्हें व्यक्तित्व विकास का अवस्था सिद्धान्त कहा गया है जिसका वर्णन हम यहां अलग-अलग करेंगे-

8.7 आत्मन के विकास का सिद्धान्त (Theory of 'Self Development')

आत्मन् के विकास की व्याख्या करने के लिए समाज वैज्ञानिकों का संयुक्त प्रयास हुआ है। फलस्वरुप जितने भी ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण किया है उसे मौटे तौर पर दो भागों में बांटा गया है-

- ❖ मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त
- ❖ समाजशास्त्रियों एवं दर्शनशास्त्रियों का सिद्धान्त

इन दोनों तरह के श्रेणियों के सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्तों का वर्णन यहां अपेक्षित है जो इस प्रकार है-

मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त- इस श्रेणी के सिद्धान्तों में मुख्य रुप से यहां विलियम जेम्स फ्रायड, आलपोर्ट तथा रोजर्स के सिद्धान्तों पर विचार किया जाएगा।

- ❖ **विलियम जेम्स की विचारधारा**-जेम्स का आत्मन से तात्पर्य वही था जो आधुनिक समय में मनोवैज्ञानिकों का व्यक्तित्व से है। आत्मन् से उनका विशिष्ट मतलब मुझे या आनुभविक या अनुभूतिमूलक आत्मन से था जिसमें उनके अनुसार तीन पहलुओं का एक पदानुक्रम होता है- सांसारिक आत्मन्, सामाजिक आत्मन या आध्यात्मिक आत्मन्। सांसारिक आत्मन् पदानुक्रम के निचली सतह पर, आध्यात्मिक आत्मन सबसे ऊपर तथा सामाजिक आत्मन् पदानुक्रम के बीच में आते हैं। सांसारिक आत्मन् मे व्यक्ति का शरीर तथा उसके व्यक्तिगत धरोहर जैसे-धन दौलत, रुपया, घर कपड़ा, फर्नीचर आदि को रखा जाता है। आध्यात्मिक आत्मन से तात्पर्य सभी तरह के मनोवैज्ञानिक कार्यो से संयुक्त रुप से होता है। चिंतन, बौद्धिक क्षमता, इच्छा आदि आध्यात्मिक आत्मन के उदाहरण हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक आत्मन् से तात्पर्य क्षमता से नहीं है। इन तीनों तरह के आत्मन के अलावा जेम्स ने अमिश्रित अहम के संप्रत्यय को भी स्वीकारा है। इसे मैं या ज्ञान प्राप्त करने वाला आत्मन भी उन्होंने कहा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण के विभिन्न पहलुओं के बारे में एक समग्र ज्ञान प्राप्त करता है।

- ❖ **फ्रायड की विचारधारा**- फ्रायड ने आत्मन् के लिए एक दूसरा पद अर्थात अहम् का प्रतिपादन किया है। सचमुच में उन्होंने संरचनात्मक दृष्टिकोण से मन को तीन भागों में बांटा है- उपाह, अहम, तथा पराहं। उपाह मन का जैविक तत्व होता है तथा व्यक्ति की शारीरिक संरचना से संबंध होता है। उपाह की इच्छाएं एवं आवेग असंगठित होते हैं तथा वे कोई नियम एवं कानून नहीं मानने

वाले होते हैं। अहम् मन का वह भाग होता है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है तथा जो सोचता है अनुभव करता है तथा कोई निर्णय लेता है यह वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए अपनी मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा का उपयोग करता है। यह नियम मूलप्रवृत्तिक तुष्टि की अनुमति तब देता है जब उसके लिए उपर्युक्त पर्यावरणी अवसर होते हैं। इस तरह से वास्तविकता के नियम का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व में अखंड़ता बनाये रखना होता है। चूंकि हम् का संबंद्ध वाहा्र वास्तविकता से होता है अतः इसे व्यक्तित्व का कार्यपालक या निर्णय लेकर उसे कार्य रुप देने वाला शाखा कहा जाता है । दूसरा यह पराहं एवं बाहा्र दुनिया के बीच उत्तम सम्पर्क बनाये रखता है।स्पष्ट हुआ कि अहम जो कि फ्रायड के नजर में आत्मन के तुल्य है, की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके द्वारा व्यक्तित्व के विभिन्न व्यवहारों को संगठित किया जाता है।

- **आलपोर्ट की विचारधारा**-आलपोर्ट ने आत्मन् शब्द के लिए प्रोप्रियम पद का उपयोग किया है ओर कहा है कि यह पद आत्मन् पद की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है तथा इसमें किसी प्रकार की आत्मनिष्ठता नहीं है। प्रीमियम एक लैटिन पद च्तवचतपने से बना होता है। आलपोर्ट के अनुसार प्रोप्रियम से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं से होता है जिनसे उसमें आंतरिक एकता तथा संगतता आती है। स्वयं आलपोर्ट ने प्रोप्रियम को इन शब्दों में परिभाषित किया है। प्रोप्रियम को ज्ञात आत्मन के रुप में परिभाषित किया जाता है जिसे भाव प्रबल एवं प्रमुख समझा जाता है तथा जिसका एक विशेष महत्व होता है। यह आत्मगत अनुभूति का मुझे वाला अंश होता है। यह आत्मतत्व है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आलपोर्ट के लिए प्रोप्रियम मानव प्रकृति के धनात्मक, सर्जनात्मक, वर्धन उन्मुखी तथा प्रगतिशीलता के गुणों को दर्शाता है। उन्होंने प्रोप्रियम को आत्मतत्व कहा है और इस आत्मतत्व के सात विभिन्न पहलू ऐसे होते हैं जो प्रोप्रियम के विकास के महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सातों पहलू जन्मजात नहीं होते हैं बल्कि धीरे-धीरे विकसित होते हैं। ये सभी पहलुओं अर्थात शारीरिक आत्मन्, आत्म पहचान तथा आत्मसम्मान का विकास बच्चों की प्रथम तीन वर्ष की आयु से होता है। प्रोप्रियम के इन सभी सात पहलुओं का वर्णन निम्नांकित है-

    - **शारीरिक आत्मन**- इस अवस्था में बालक अपने अस्तित्व से अवगत होता है और अपने शरीर को वातावरण के अन्य वस्तुओं से भिन्न समझता है।

    - **आत्म पहचान**- इस अवस्था में बच्चे यह अनुभव करने लगते हैं कि उनके भीतर कई तरह के परिवर्तन के बावजूद उनकी एक अलग पहचान बनी होती है । इसकी अभिव्यक्ति वह भाषा के माध्यम से करता है। जैसे- वह आईना में अपना चेहरा देखकर वह अपना नाम बतलाता है।

- **आत्म सम्मान**- इस अवस्था में बच्चे अपनी उपलब्धियों का स्वयं ही मूल्यांकन करते हैं। प्रत्येक कार्य को बच्चा स्वयं करना चाहता है। अक्सर माता-पिता इस अवस्था को निषेधवृत्ति की अवधि मानते हैं क्योंकि बच्चे वयस्क के किसी भी प्रस्ताव को अपनी स्वायत्ता तथा अखंडता के प्रति एक चुनौती समझकर उसका विरोध भी करते हैं।

- **आत्म विस्तार**- इस अवस्था में आत्मन का विस्तार होता है जो प्रायः 4 से 6 साल की आयु में होता है। इस अवस्था में बच्चे में यह भाव विकसित होता है कि यद्यपि अन्य लोग या चीज उनके शरीर के भीतर नहीं हैं परंतु वे उनके ही अंश हैं। जैसे- बच्चा जब यह कहता है, मेरी मम्मी, मेरे पापा, मेरा कुत्ता आदि तो यह निश्चित रुप से आत्म-विस्तार के उदाहरण है।

- **आत्म प्रतिमा**- यहां बच्चे अपने एवं अपने व्यवहार के बारे में एक वास्तविक एवं आदर्श प्रतिमा विकसित कर लेते हैं और वे अपने माता-पिता की प्रत्याशाओं को पूरा करने की कोशिश करते हैं। लेकिन इसके बावजूद भी इस बाल्यावस्था में बच्चों में कोई स्पष्ट विकसित अन्तःकरण नहीं होता है और न ही यह भाव विकसित होता है कि वह कैसा वयस्क बनना चाहता है। आलपोर्ट ने इस बिंदु पर इस तरह से टिप्पणी की है, बाल्यावस्था में बच्चों में अपने बारे में जैसा वह है, जैसा वह होना चाहता है तथा जैसा उसे होना चाहिए से संबंद्ध चितंन मात्र जननिक होता है।

- **युक्ति संगत समायोजक के रुप में आत्मन्**- इस अवस्था में बच्चे दिन प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में तर्क एवं विवेक का प्रयोग करना सीख लेते हैं। यह अवस्था 6 से 12 साल की होती है जिसमें बच्चों में यह चेतना आ जाता है कि वह अपनी जिंदगी की समस्याओं का समाधान करने तथा वास्तविकता की मांगों को प्रभावी ढंग से पूरा करने की क्षमता रखता है। क्योंकि वह यह समझने लगता है कि उसका परिवार, उसका धर्म तथा उसका साथी संगी का समूह अन्य की तुलना में अधिक सही है।

- **उपयुक्त प्रयास**- यह अवस्था किशोरावस्था की होती है जहां किशोर दीर्घकालीन योजना तथा लक्ष्य विकसित करना प्रारंभ कर देते हैं इस तरह से इस अवस्था में व्यक्ति अपनी जिंदगी को एक सार्थक उद्देश्य प्रदान करता है।

❖ **रोजर्स का विचारधारा**- रोजर्स के अनुसार प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। जीव में प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन दोनों ही सम्मिलित होते हैं। प्राणी या जीव सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। सभी तरह के चेतन

एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से प्राणी में जिस क्षेत्र का निर्माण होता है। उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहा जाता है।

रोजर्स का मत है कि जब धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग अधिक विशिष्ट हो जाता है, तो उसे ही रोजर्स के शब्दों में आत्मन् कहा जाता है। इनके अनुसार आत्मन् व्यक्तित्व का एक अलग विमा नहीं होता है जैसा कि फ्रायड के अनुसार अहं व्यक्तित्व का एक अलग विमा होता है। रोजर्स ने यह भी दावा किया कि किसी व्यक्ति में आत्मन् नहीं होता है बल्कि स्वयं आत्मन का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी होता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन का विकास शैशावस्था में विशेषकर उस समय होता है जब शिशुओं की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रुप प्राप्त करने लगता है। और मैं या मुझको के रुप में धीरे-धीरे विशिष्ट होने लगता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् के दो उपतंत्र होते हैं- आत्म संप्रत्यय एवम आदर्श आत्मन् इन दोनों का वर्णन इस प्रकार है-

- **आत्म संप्रत्यय**- आत्म संप्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिससे व्यक्ति अवगत होता है हालांकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता है। आत्म संप्रत्यय को प्रायः विशेष कथनों के रुप में व्यक्ति व्यक्त करता है- जैसे मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो.....। आत्म संप्रत्यय की दो विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं-

- पहली विशेषता यह है कि आत्म संप्रत्यय का एक बार निर्माण हो जाने पर उसमें सामान्यतः परिवर्तन नहीं होता है। हाँ, बहुत कोशिश करने से उसमें परिवर्तन हो सकता है। जो अनुभूतियां व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय के साथ असंगत होती हैं। उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है और यदि कभी स्वीकार करता भी है तो विकृत रुप में।
- दूसरी विशेषता यह है कि व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय उसके वास्तविक या जैविक आत्मन से भिन्न होता है। जैविक आत्मन् का कुछ अंश या भाग ऐसा होता है जिससे व्यक्ति अवगत नहीं होता है।

  जैसे- यकृत हमारे जैविक संप्रत्यय का एक अंश या भाग है न कि हमारे आत्म संप्रत्यय का। परंतु यदि व्यक्ति का यकृत खराब ढंग से कार्य करने लगता है तो उससे अवगत हो जाता है कि अब यह आत्म संप्रत्यय का उदाहरण है।

- **आदर्श आत्मन्**- आदर्श आत्मन् से तात्पर्य अपने बारे में विकसित किये गए एक ऐसे छवि से होता है जिसे वह आदर्श मानता है। दूसरे शब्दों में आदर्श आत्मन् में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः धनात्मक होते हैं तथा जिसे व्यक्ति अपने में विकसित होने की तमन्ना करता है।

रोजर्स ने यह भी स्पष्ट किया है कि एक सामान्य व्यक्ति में आदर्श आत्मन तथा प्रत्याशित आत्मन् में अंतर नहीं होता है। स्पष्ट हुआ कि रोजर्स द्वारा की गयी आत्मन् की व्याख्या अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी व्याख्या से अधिक वैज्ञानिक, श्रेष्ठ एवं उत्तम है।

समाजशास्त्रियों तथा दर्शनशास्त्रियों का सिद्धान्त-कुछ समाजशास्त्रियों ने भी आत्मन् की व्याख्या करने के लिए अपने-अपने विचारधारा को लोगों के सामने रखा है। इसमें मुख्य रुप से सी0एच0 कूली का नाम मशहूर है।

- **सी0एच0 कूली का विचार**- इनका मत है कि आत्मन् ओर समाज दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होकर अपने आप में कुछ परिवर्तन लाता है। कुली का आत्मन् से तात्पर्य मैं या मुझको से था। व्यक्ति को समाज से जो अनुभूतियां प्राप्त होती है, उन आत्मगत अनुभूतियों से उसका आत्मन का विकास होता है। अतः व्यक्ति वातावरण के संकेतो से न कि वस्तुओं से घिरा होता है। अन्तःक्रिया से तात्पर्य यह होता है कि संकेतों के माध्यम से हम अन्य लोगों के साथ संचार स्थापित करने में सफल न होकर दो व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तक्रिया एवं अन्य लोगों के बीच होने वाली अन्तक्रिया होती है। इस तरह के अंतक्रिया का परिणाम यह होता है कि आत्मन् का स्वयं के साथ ही सामना होता है और तब व्यक्ति स्वयं अपने बारे में अवगत होता है। इस तरह से सांकेतिक अन्तःक्रिया के माध्यम से व्यक्ति का आत्मन धीरे-धीरे विकसित होता है।
- **जी0एच0मीड का विचार**- जी0एच0मीड का एक दार्शनिक थे जिन्होंने समाज मनोविज्ञान का अध्ययन बहुत दिनों तक किया तथा इस पर उनके महत्वपूर्ण व्याख्यान दिये और इन व्याख्यानों के दौरान उन्होंने आत्मन् के बारे में जो विचार सामने रखे, वे मनोवैज्ञानिकों के लिए वरदान साबित हुआ। कूली के समान मीड ने भी आत्मन् के लिये सांकेतिक अन्तक्रिया के संप्रत्यय को महत्वपूर्ण बतलाया है। मीड के अनुसार आत्मन का सबसे प्रमुख गुण यह है कि यह आत्मवाचक होता है।

  अतः आत्मन् स्वयं अपने लिए ही एक वस्तु हो सकता है। इस विचारधारा के अनुसार हम लोग अपने आप को ठीक उसी ढंग से अनुभव करते हैं जिस ढंग से वातावरण के अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों को। इस तरह का अनुभव भाषा के माध्यम से अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया करने पर ही हमें प्राप्त होता है। मीड का मत है कि इस प्रक्रिया द्वारा हम लोग अपने बारे में एक तस्वीर बना पाते हैं जिसे उन्होंने सामान्यीकृत अन्य की संज्ञा दी है। व्यक्ति के प्रति समाज के अन्य दूसरे लोगों की मनोवृत्ति से ही सामान्यीकृत अन्य का निर्माण होता है। अतः यह एक तरह का सामाजीकरण का परिणाम होता है।

अतः आत्मन् का स्वरुप सामाजिक एवं सामाजीकृत दोनों ही होता है। दूसरे लोगों की मनोवृत्ति से हम लोग अन्य दूसरों पर अपने व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभाव से अवगत होते हैं।मीड के अनुसार आत्मन् के दो भाग होते हैं। एक को मीड ने मुझे या सामान्यीकृत अन्य की संज्ञा दी है तथा दूसरे को मैं की संज्ञा दी है जो मुझे वाला भाग अगली बार किस तरह से व्यवहार करेगा। जैसे ही मैं द्वारा किये गये निर्णयों को कार्यरुप देना व्यक्ति प्रारम्भ करता है। वे मुझे का एक अंश बन जाते हैं अर्थात गत या अतीत का एक भाग बन जाते है। इस तरह से मैं वाले भाग को कभी भी हम अभिग्रहित नहीं कर सकते हैं। जब तक हम इसके बारे में जान पाने की कोशिश करते हैं वह मुझे का एक अंश बन जाता है। मीड द्वारा प्रतिपादित आत्मन के सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण बल इस बात पर था कि उसके उत्पत्ति का स्वरुप सामाजिक होता है। दूसरे शब्दों में आत्मन् के विकास के लिये दूसरों के साथ अन्तःक्रिया करना अति आवश्यक है। जैसा की मीड ने स्वयं ही कहा है... अन्य लोगों के साथ आत्मन् के सुस्पष्ट सबंध से ही आत्मन् का अस्तित्व बना होता है। इससे तब यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि आत्मन् व्यक्ति का जन्मजात गुण नहीं होता है। बल्कि इसका निर्माण अन्य लोगों के साथ किये गए अन्तःक्रिया से प्राप्त अनुभूति से बना होता है। इसे एक उदाहरण से इस तरह से समझाया जा सकता है- मान लिया जाए कि किसी मानव शिशु को अकेले किसी मनुष्य रहित द्वीप में छोड़ दिया जाए और वह यदि अपनी वयस्कावस्था तक जीवित रह जाता है तो इसमें कोई आत्मन नहीं होगा और उसे अपने बारे में कुछ पता नहीं हो पायेगा। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आत्मन् की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों दार्शनिकों एवं समाजशास्त्रियों का जो प्रयास किया गया है वह अपने आप में काफी सराहनीय है तथा अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक महत्वपूर्ण शोध प्रेरणा भी है।

8.8 स्वतंत्रता बनाम आश्रयता (Independence vs Dependency)

स्वतंत्रता बनाम आश्रयता एक अन्तक्रिया का संसय है जिसका किसी भी मनुष्य के व्यवहार में परिदर्शन हो जाता है। वर्ष 2007 के अनुसार यह कार्य उसके व्यवहार को प्रत्यक्ष रुप से पुनर्कलित करता है जो सकारात्मक या नकारात्मक दोनों में हो सकता है। ये दोनों प्रकार सामाजिक अन्तक्रिया व व्यक्ति की योग्यता के महत्वपूर्ण प्रकार है। जहां स्वतंत्रता में व्यक्ति को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती और दूसरों द्वारा दी गई सहायता उसके बाधा पहुंचाती है। दूसरी ओर वहीं जो व्यक्ति आश्रयता की ओर उन्मुख होता है वह बिना किसी अन्य व्यक्ति की सुझाव या सलाह के कोई कार्य नहीं कर पाता इसके ऊपर आयु का भी प्रभाव पड़ता है जहां बच्चों के किसी भी कार्य की पूर्णता बड़ों के सहारे के बिना नहीं होती और वे जीवन यापन के प्रतिदिन कार्य भी बड़ों की सहायता बिना नहीं कर पाते वहीं वयस्क लोग अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं। आत्मविश्वासी वयस्कों के लिए प्रतिदिन के जीवन में भी घटित होने वाली सामाजिक अन्तक्रिया में संतुष्टि बोध आवश्यक है। उन वयस्कों के लिए जो प्रतिदिन के कार्यों में सहायता की

आवश्यकता महसूस करते हैं। अन्तक्रिया कम सकारात्मक अस्तित्व से जुड़ी होती है उनका यह सोचना कि वे वृद्ध हो गए हैं, अक्षम है या कोई कार्य नहीं कर सकते उन्हें दूसरों से सहायता मांगने पर विवश कर देता है। जहां बच्चों द्वारा प्रतिदिन के कार्यों में सहायता मांगना बुरा नहीं माना जाता, वहीं बड़ों द्वारा सहायता मांगना अर्थहीन या असुखद रुप में देखा जाता है। वे दूसरों की प्रत्याशाओं पर खरे नहीं उतरते। सहायता लेने की उनकी यह प्रवृत्ति उन्हें दूसरों की दृष्टि में एहसानमंद एवं दुर्बल बना देती है। ये अनुभूतियां उन्हें अवसाद ग्रस्त भी कर सकती हैं। पश्चिमी देशों में ऐसा नहीं होता यहां व्यक्ति जीवनपर्यन्त स्वतंत्र ही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि वयस्कों के जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता एवं आश्रयता दोनों की आवश्यकता होती है। वयस्कों में स्वतंत्रता लेने की प्रवृत्ति का विनाश उसी समय दृष्टिगोचर होना चाहिए जब कठिन आवश्यकता पड़ने पर भी छोटे लोग उनकी सहायता करें। छोटे लोगों ने सहायता लेने के उपरान्त उन्हें धन्यवाद देने के लिए बड़ों को चाहिए कि उन्हें घुमाने या कही ले जाएं। इससे उन्हें आगे भविष्य में भी सहायता मिलती रहेगी। बड़ों की सहायता करते समय सभी को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अनावश्यक या अपरिचित सहायता बड़ों के मानसिक स्वास्थ्य व दैहिक रुप से नकारात्मक रुप में प्रभावित कर सकती है। अपरिचित सहायता के फलस्वरुप एक व्यस्क यह सोच सकता है कि वह परिस्थिति में परिवर्तन करने में सक्षमनहीं है ये अनुभूतियां उसके एक अधिगत आवश्यकता की सहायता को जन्म देती है। वह यह सोचने लगता है कि वह ऐसा कुछ भी नहीं कर सकता जिससे उसका जीवन सकारात्मक हो सके और जब नकारात्मक अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं। तब उनकी उत्पत्ति का कारण वह अपनी अक्षमता, अयोग्यता व वृद्धावस्था को मानने लगता है। अधिक सहायता की दशा अभिप्रेरणात्मक व संवेगात्मक दोष निष्क्रियता और अवसाद को जन्म देती है। अतः आवश्यक यह है कि उसको उतनी ही सहायता दी जाय जिससे कार्य के प्रति उसमें शक्ति एवं ऊर्जा का संचार हो और उसके जीवन की गुणवत्ता का विकास हो, यह प्रत्यक्षीकृत सामाजिक समर्थन उन वृद्धों को समर्थन देगा जो मानसिक या शारीरिक रुप से कष्ट में है। विस्तृत अध्ययनों से यह पाया गया कि यदि सहायता की रीति सही है तो उसके फलस्वरुप वयस्कों स्वायत्ता कार्यशीलता एवं स्वतंत्रत व्यवहार का विकास होगा।

प्रायः यह देखा जाता है कि वृद्धों में स्वतंत्रता का विकास घर में रहने की अपेक्षा वृद्धाश्रम में रहने से अधिक होता है। वृद्धाश्रम में उनकी ही आयु के लोगों के रहने के कारण वे एक दूसरे से कार्य करने की गुणत्वत्तापूर्ण रीति या विधि सीखते हैं इसे साथ वे यह भी जानते हैं कि यदि यहां पर उन्होंने अपना कार्य स्वयं नही किया तो कोई भी उनकी सहायता नहीं करेगा क्योंकि वे सभी उन्हीं की आयु के हैं। वृद्धाश्रम एवं स्वपालन कार्य संस्थाओं में चलने वाली योजनाएं वृद्धों को अपने ढंग से सक्रिय एवं स्वतंत्र रुप से जीने के लिए प्रेरित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वृद्धों को घर में रखना हानिकारक है या उनकी देखरेख करना गलत है हमारा केवल यह अर्थ है कि उनकी देखभाल में आदर हो सम्मान हो लेकिन

उनकी इस सीमा तक सहायता न की जाए कि वे अपना कार्य स्वयं न कर पाए एवं उनका जीवन गुणवत्ता विहीन हो जाए।

8.9 सारांश (Summary)

व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व संरुप के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्संबंधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण।

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है कि जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का दर्पण प्रतिमा होता है जो व्यक्ति द्वारा किये गए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा किये गए प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है। शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों, से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व, सहनशीलता आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में सयांजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएं होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता।व्यक्तित्व विकास एवं उसके संबंधित पहलुओं की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिनमें फ्रायड, आलपोर्ट, रोजर्स आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं इसके अतिरिक्त कूली,एवं मीड का सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता बनाम आश्रयता के बारे में आपने जाना कि जहां स्वतंत्रता में व्यक्ति को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती और दूसरों द्वारा दी गई सहायता उसको बाधा पहुंचाती है। दूसरी ओर वहीं जो व्यक्ति आश्रयता की ओर उन्मुख होता है वह बिना किसी अन्य व्यक्ति की सुझाव या सलाह के कोई कार्य नहीं कर पाता इसके ऊपर आयु का भी प्रभाव पड़ता है जहां बच्चों के किसी भी कार्य की पूर्णता बड़ों के सहारे के बिना नहीं होती और वे जीवन यापन के प्रतिदिन कार्य भी बड़ों की सहायता बिना नहीं कर पाते, वहीं वयस्क लोग अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं।

8.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर (Self-Assessment Questions and Answers)

1. व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व …….होते हैं।
2. आरंभिक बाल्यावस्था को …….. तथा उत्तर बाल्यावस्था को ……..भी कहा जाता है।
3. अधिक सहायता की दशा अभिप्रेरणात्मक व संवेगात्मक दोष …….को जन्म देती है।

उत्तर:-

1. आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण

2. प्राक्स्कूल अवस्था, टोली अवस्था

3. निष्क्रियता और अवसाद

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. व्यक्तित्व को परिभाषित करें तथा फ्रायड के विचार की विवेचना करें।

2. व्यक्तित्व विकास के विभिन्न चरणों की विवेचना कीजिए।

3. स्व को परिभाषित कीजिए तथा रोजर्स के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

1. श्रीवास्तव, डी0एन0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान.
2. सिंह, ए0 के0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
3. अग्रवाल, पी0के, पाण्डेय, एस0एस0- सामाजिक मनोविज्ञान

इकाई 9: बाल अपराध अर्थ, कारण तथा उपचारात्मक सुधार (Juvenile crime meaning, causes and remedial measures)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.2.1 बाल अपराध का अर्थ एवं परिभाषा

9.2.2 बाल अपराध की विषेषतायें

9.2.3 बाल अपराध के मुख्य कारण

9.2.4 बाल अपराधियों के सुधार कार्य

9.2.5 बाल अपराध निरोध के सुझाव

9.3 सार संक्षेप

9.4 पारिभाषिक शब्दाबली

9.5 अभ्यास प्रशन- लघु विस्तृत

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.1 परिचय (Introduction)

बाल अपराध: भारत में 15 वर्ष तक की आयु तक के तथा अमरीका में 16 वर्ष तक की आयु के ऐसे बालक, जा समाज-विरोधी अपराधों या कुकृत्यों में लिप्त पाये जायें, बाल-अपराधी कहलाते हैं। ऐसे बालक चोरी, जेबकतरी, आवारागर्दी, बुरे व्यक्तियों के साथ घूमना-फिरना, भीख माँगना, यौन अनाचार, शराब लाना और ले जाना, लूटमार, गुंडागर्दी, स्कूल से भाग जाना, अनुशासन भंग करना आदि कामों में रत पाये जाते हैं। प्रायः निर्धनता, छोटे और गंदे मकान, बुरी परिस्थितियाँ, टूटे परिवार, पारिवारिक संघर्ष, स्नेह के अभाव, बुरी संगति आदि के फलस्वरूप बालक बाल अपराधी बन जाते हैं। मनोरंजन के अभाव,

बुरे मनोरंजन, यौन साहित्य, मानसिक हीनता, उद्वेगात्मक संघर्ष और अस्थिरता, बुरे चलचित्र, टेलीविजन आदि भी बालकों को अनैतिक, असामाजिक खतरों से बचाने तथा उनकी शिक्षा को गतिरोध से मुक्त करने के लिए उनका सुधार करना अत्यंत आवश्यक है। माता, पिता और शिक्षकों को वह बतलाया जाना चाहिए कि वे किस प्रकार बालकों से व्यवहार करें। बालकों को समुचित नैतिक शिक्षा भी देने की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे बालकों के लिए उत्तम सुधार - गृह, रिमांड होम आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। आजकल भारत में कई ऐसी संस्थाएँ बनी हुई हैं। नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण के फलस्वरूप बाल अपराधियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने की आशंका है। अतः समाज को इस दिशा में सजग रहकर समुचित प्रयास करना चाहिए। वर्तमान समाजों में सर्वत्र बाल अपराध एक गम्भीर सामाजिक समस्या के रूप में स्पष्ट हुई है। नगरीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न विभिन्न सामाजिक दशाओं ने पारिवारिक संरचना को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया, जिससे उसके संस्थागत स्वरूप में परिवर्तन हो गया। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भी इस समस्या को उभारने में सहयोग दिया। ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्रों की ओर सत्यापन/प्रवासित करने वाले अथवा गन्दी/मलिन बस्तियों में रहने वाले नगरों/शहरों में समंजन करने वाले अनेक बच्चे बाल अपराध हो जाती है। जे0सी0 दत्त के शब्दों में, ‘‘भारत में बाल अपराध बड़ी तीव्र गति के साथ एक अत्यन्त गम्भीर संकट होता जा रहा है तथा देश के विभिन्न भागों के, जो कि आज से कुछ वर्ष पूर्व अनिवार्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के ही एक अंग थे, प्रगतिशील औद्योगीकरण के साथ-साथ यह समस्या अनेक पाश्चात्य देशों में उपलब्ध स्थान को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगी।’’ बाल अपराध के सन्दर्भ में सामान्य व्यक्तियों और कुछ समाज-वैज्ञानिकों के विचार अपर्याप्त भ्रमपूर्ण एवं दोषपूर्ण है। विभिन्न कारणों में से एक यह भी है कि बाल-अपराधी केवल अल्पायु के अपराधी हैं अर्थात् वे अवयस्क अपराधी या बालक है तथा जो देश के कानून द्वारा निर्धारित 7 और 16 या 18 वर्ष की आयु के है।

भारत में 1986 में पारित जुवेनाइल जस्टिस एक्ट के अनुसार अब बाल अपराधियों की अधिकतम आयु लड़कों के लिए 16 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गयी है। युवा जो भगोड़ापन, कर्म पलायन, आवारागर्दी, व्यभिचार तथा बेलगामी जैसी स्थिति, दोषों में लिप्त होते हैं, वे भी बाल-अपराध की परिभाषा में सम्मिलित होते हैं। न्यूमेयर, जेम्स शार्ट जूनियर, रिचर्ड, जेक्सिन और वाल्टर रैलकेस ने भी बाल-अपराध की अवधारणा में व्यवहार के प्रकार पर बल दिया है। आयु एवं व्यावहारिक उल्लंघन जो कानूनन वर्जित है, दोनों ही बालापराध की अवधारणा में महत्वपूर्ण तत्व है। स्पष्ट है कि बाल अपराध एक अल्पायु व्यक्ति का वह कार्य/व्यवहार है जो प्रत्यक्ष रूप से कारणों व अध्यादेशों के विरुद्ध होता है।

9.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई में बाल अपराध की अवधारणा एवं परिभाषा पर प्रकाश डाला गया है जिसमें बताया गया है कि बाल अपराधी वह व्यक्ति है जो जानबूझकर इरादे के साथ एवं समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है जिससे उसका सम्बन्ध है। इसी इकाई में बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं पर वृहद चर्चा की गई। प्रस्तुत इकाई में ही बाल अपराध के मुख्य कारण एवं बाल अपराधियों हेतु सुधार कार्य को भी वर्णित किया गया है। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित को समझ सकेगें -

- ❖ बाल अपराध की अवधारणा को जान सकेगें।
- ❖ बाल अपराध की परिभाषा लिख सकेगें।
- ❖ बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेगें।
- ❖ बाल अपराध के मुख्य कारणों की चर्चा कर सकेगें।

बाल अपराधियों को कैसे सुधारा जाये के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

9.2.2 बाल अपराध का अर्थ एवं परिभाषा

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने के तथा सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता और निरन्तरता कायम रखने के लिए कुछ औपचारिक कानूनों का निर्माण करता है। समाज के कानूनों का उल्लंघन आदि व्यस्क व्यक्ति करते हैं तो उसे अपराध की श्रेणी में रखा जाता है, किन्तु यदि निश्चित आयु से कम आयु के व्यक्ति करते हैं, तो उसे बाल अपराध कहते हैं। अपराध और नासमझी/नादानी में किये जाने वाले कार्य में अन्तर होता है, क्योंकि छोटे और अपरिपक्व बालकों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे समाज के हित-अनहित से पूर्णतया विज्ञ हो। बालपन में उनके गैर-कानूनी अपराध खेल-खेल और मौज-मस्ती में हो जाते हैं। स्पष्ट है कि कानून द्वारा निर्धारित उच्चतम एवं निम्नतम आयु सीमा के बीच के व्यक्ति का ऐसा कोई भी कार्य जो कानून के विरुद्ध हो, बाल अपराध कहा जाता है। बाल अपराध, अपराधी कानूनों के द्वारा वर्जित व्यवहार है, जिसका निपटारा कानून के अन्तर्गत किया जा सकता है।

- ❖ डॉ0 सेथना के अनुसार, ‘‘बाल-अपराध में एक विशेष स्थान पर उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु के बालकों या युवकों द्वारा किये गये, अनुचित कार्य सम्मिलित होते हैं।’’

- ❖ गिलिन और गिलिन के अनुसार, ''समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में अपराधी या बाल-अपराधी एक ऐसा व्यक्ति है, जो ऐसे कार्य का अपराधी है, जिसको वह समूह, जिसमें अपने विश्वासों को कार्यान्वित करने की शक्ति है, समाज के लिए हानिकारक समझता है, इसलिए ऐसा कार्य करना मना है।"

- ❖ न्यूमेयर के अनुसार, ''बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है, जिसने समाज-विरोधी कार्य किया है तथा जिसका दुर्व्यवहार कानून को तोड़ने वाला है।"

- ❖ मावरर के अनुसार, ''बाल अपराधी वह व्यक्ति है, जो जान-बूझकर इरादे के साथ एवं समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है, जिससे उसका सम्बन्ध है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बाल-अपराध एक निश्चित आयु से कम के बच्चों द्वारा किया जाने वाला वह कार्य है, जो समाज विरोधी हो। बाल-अपराध की धारणा भिन्न-भिन्न समाजों में तथा समयों के अनुसार परिवर्तित होती रही है। भारत में बाल अपराध की निम्नलिखित मुख्य विशेषतायें पाई जाती हैं -

(1) भारत में 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों द्वारा किये गये अपराध को किसी भी श्रेणी में नही रखा जाता है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चे में अपराध करने का कोई इरादा नही होता है।

(2) 7 वर्ष से 18 वर्ष की आयु के अपराधियों को बाल अपराधी तथा 16 से 21 वर्ष की आयु के अपराधियों को किशोर अपराधी कहा जाता है।

(3) बाल अपराध का तात्पर्य साधारण अपराध से है।

(4) भारत में भिन्न-भिन्न राज्यों में इसकी आयु सीमा अलग-अलग है।

9.2.2 बाल अपराध की विषेषतायें

- ❖ बाल अपराधी खाली समय की देन है।

- ❖ बाल अपराधी का मस्तिष्क अपरिपक्व होता है।

- ❖ बाल अपराधी में अपराध का इरादा नहीं होता है।

- ❖ बाल अपराधी घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र में अधिक होते हैं।

- ❖ प्रत्येक देश में बाल अपराधियों की एक निश्चित आयु होती है।

❖ बाल अपराध सामान्यतः अनजाने में या खेल-खेल में होता है।

बाल अपराध के कारण-विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने बाल-अपराध के कारणों की अलग-अलग विवेचना प्रस्तुत की है, यथा-इलियट तथा मेरिल के अनुसार।

❖ वंषानुगम कारण- अ. नष्ट घर, ब. अर्द्धनष्ट घर, स. अनैतिक घर, द. माता-पिता द्वारा उपेक्षा, य. अपराधी भाई-बहनों का साथ में रहना, र. आर्थिक और बाह्य तत्वों वाला अनुपयुक्त घर।

❖ शारीरिक तथा जैविकीय कारक- अ. शारीरिक दोष/कमियाँ, ब. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की दूषित कार्य प्रणाली, स. पैतृकता/आनुवंशिकता, द. अत्यधिक विकास एवं आवेग, य. बुरा स्वास्थ्य।

❖ मनोवैज्ञानिक कारक- अ. मानसिक हीनता, ब. संवेगात्मक संघर्ष और अपंगता, स. सामुदायिक कारक, द. मनोरंजन और अपराध, य. समाचार-पत्र और अपराध, र. स्कूल और बाल अपराध, ल. संगति और सामूहिक अनुभव, व. युद्ध और बाल अपराध्ज्ञं

➢ **मार्टिन के अुनसार** 1. व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक, 2. पारिवारिक परिस्थितियाँ, 3. सम्पर्क और संगति, 4. सामुदायिक संस्थाओं का प्रभाव, 5. जनसंख्या और सांस्कृतिक कारक, 6. आर्थिक और भौतिक पर्यावरणीय कारक, 7. कानून का अपर्याप्त पालन।

➢ **हीली और बोचर के अनुसार**- 1. बुरी संगत, 2. किशोर अवस्था की अस्थिरता और आवेग, 3. शीघ्र यौन अनुभव, 4. मानसिक संघर्ष, 5. जोखिम उठाने के प्रति प्रेम, 6. सिनेमा, 7. स्कूली असन्तोष, 8. हीन मनोरंजन, 9. सड़कों पर जीवन, 10. व्यवसाय विषयक असंतोष, 11. आकस्मिक आवेग, 12. सभी शारीरिक दशायें।

9.2.3 बाल अपराध के मुख्य कारण

❖ **परिवार सम्बन्धी कारक-** परिवार को बच्चे की प्राथमिक पाठशाला कहा जाता है। क्योंकि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार द्वारा ही होती है अर्थात् बच्चा बहुत कुछ अपने परिवार से ही सीखता है। यदि परिवार अच्छा है, तो बालक भी अच्छा होगा। निम्नलिखित परिवारों में बाल अपराधी बनने की अधिक सम्भावनायें रहती है।

❖ **टूटे परिवार-** टूटे परिवार वे परिवार कहलाते हैं, जिसमें माता-पिता में बालक की देखरेख के लिए कोई नहीं होता है अर्थात् बालक क्या कर रहे है जो भी बालक के मन में आता है, वह

करता है, प्रेम स्नेह से वंचित रहते हैं। इस कारण से बालक अधिक समय घर से बाहर रहता है और बुरी आदतों को सीखता है।

- **अर्द्ध नष्ट-** यह वे परिवार कहलाते हैं, जो पूर्णतया नष्ट तो नहीं होते हैं, लेकिन नष्ट होने की प्रक्रिया में रहते हैं। इस प्रकार के परिवार में माँ-बा पके पास इतना समय नहीं होता है कि वह अपने बच्चों की उचित देखभाल कर सके। ऐसी स्थिति में बच्चे का उचित प्रकार से न तो पालन-पोषण हो पाता है और न ही विकास। इसका मुख्य कारण माता-पिता दोनों का नौकरी करना होता है। बालक स्वतंत्र रहता है और बुरी आदतों का शिकार हो जाता है।

- **अनैतिक परिवार-** इस प्रकार के परिवारां में किसी भी परिवार से शिक्षित और ईमानदार बच्चों के विकास की कल्पना नही की जा सकती है। जैसे यदि- माता-पिता परिवार के अन्य सदस्यों के साथ जुआ खेलते हैं तथा अन्य स्त्रियाँ और पुरूषों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखते है तो इनका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है और उनमें अपराधी प्रवृत्ति जागृत होती है।

- **माता-पिता द्वारा उपेक्षा-** जिन परिवार में माता-पिता सौतेले होते हैं, उन परिवारों में सामान्यतः बच्चों की उपेक्षा होती है। यह उपेक्षा बच्चे का मानसिक सन्तुलन बिगाड़ देती है जिससे बच्चों में घृणा, क्रूरता तथा प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो बाल अपराध को प्रोत्साहित करती है।

- **अपराधी भाई-बहनों का प्रभाव-** परिवार में बालकों पर केवल माता-पिता का ही प्रभाव नहीं है, बल्कि भाई-बहनों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन परिवारों में बड़े-भाई दुष्चरित्र होते है, तो छोटे-भाई बहिन भी दुष्चरित्र हो जाते हैं।

- **अधिक संख्या वाले परिवार-** जिन परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होती है, उन परिवारों में बच्चों की न तो उचित देखभाल हो पाती है और न ही नियंत्रण रह पाता है, जिससे परिवार के सदस्यों में ही संघर्ष होता रहता है तथा बालकों में गन्दी आदतें विकसित होती है।

- **दोषपूर्ण आवास-** औद्योगीकरण की प्रक्रिया में आवास की सबसे बड़ी समस्या पायी जाती है। भारत में प्रति व्यक्ति कम आय और मकानों की कमी के कारण एक कमरे वाले मकान में अनेक बच्चे रहते हैं। इन मकानों के बच्चे अवांछित घटनाओं को देखते हैं, जिनका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप बच्चों में यौनिक अपराधों की प्रवृत्ति बढ़ती है।

A. सांस्कृतिक कारक - बाल अपराध में कतिपय सांस्कृतिक कारण भी सहयोगी सिद्ध होते हैं-

❖ **सांस्कृतिक विषमतायें**- सांस्कृतिक विषमताओं से हमारा तात्पर्य बच्चे के माता-पिता में नियमों तथा उसके साथियों के व्यवहार प्रतिमान में अन्तर से ही है। ऐसी स्थिति में बच्चा अपने माता-पिता के व्यवहार प्रतिमान को स्वीकार नहीं करता और उसे अपने साथियों के व्यवहार प्रतिमान की सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती, जिससे बच्चे में अपराधी प्रवृत्ति विकसित होती है।

❖ **नैतिक पतन**- जब बच्चों का समाज में नैतिक पतन होने लगता है तो बाल अपराध भी बढ़ने लगता है। नैतिकता का उद्देश्य मानवीय गुणों का विकास करना है। लेकिन जब समाज में ऐसा वातावरण बन जाये कि अधिकारी भ्रष्ट हो जायें, रिश्वतों के द्वारा नियुक्तियाँ हो, तो ऐसी दशा में बच्चे अपराधी व्यवहार द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं।

❖ **जाति विभेद**-भारत में जाति-प्रथा भी बाल अपराध को प्रोत्साहित करती है। उच्च जातियों को आज भी समाज में विशेष अधिकार प्राप्त है, जबकि अन्य निम्न जातियाँ आज भी निर्योग्यताओं में जीवन व्यतीत कर रही है। यद्यपि भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् इन निर्योग्यताओं को समाप्त कर दिया है, लेकिन निम्न जाति के बच्चे आज भी स्कूलों तथा सार्वजनिक स्थानों पर अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं। यही निराशा उनमें प्रतिशोध को जन्म देती है-

B. **आर्थिक कारक**-बालक पर आर्थिक कारक भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। यद्यपि बालक का अर्थ से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है, फिर भी अर्थ के अभाव में बच्चे का पालन-पोषण तथा चरित्र निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में बच्चे में अपराधी मनोवृत्तियाँ जागृत होती है।

❖ **निर्धनता**-समाज में निर्धनता एक अभिशाप है, जिसके कारण अनेक समस्याओं का जन्म होता है। निर्धनता के कारण न तो बालक को अच्छी शिक्षा मिल पाती है और न ही उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है निर्धनता की स्थिति में माता-पिता द्वारा की गई अवहेलना तथा शारीरिक प्रताड़ना से बच्चे में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है। इससे बच्चा प्रायः उद्दण्ड हो जाता है। यही उद्दण्डता दिन-प्रतिदिन बालक को अपराधी बनाने में सहायक होती है।

❖ **माताओं तथा बच्चों की नौकरी-** प्रायः ऐसा देखा गया है कि आर्थिक कठिनाई के कारण बच्चे छोटी आयु में ही नौकरी करने लगते हैं या माँ को नौकरी करनी पड़ती है। यदि माँ नौकरी करती है, तो बच्चे दिन भर आवास घूमते रहते हैं। ऐसी स्थिति में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों द्वारा अनैतिक अपराध की ओर बढ़ने की सम्भावना अधिक रहती है। इसके अलावा जो बच्चे होटलों तथा चाय की दुकानों पर काम करते हैं, वे शीघ्र अपराधी व्यवहार सीख जाते हैं।

C. **आर्थिक तनाव-** आर्थिक तनाव भी बच्चे को अपराध की ओर ले जाता है। इसके अन्तर्गत प्रतिष्ठित परिवार के बच्चे भी आ जाते हैं। यह बच्चे घर में ही चोरी करते हैं।

D. **सामुदायिक कारक-** सामुदायिक कारक भी बहुत बड़ी सीमा तक बच्चे को अपराधी बनाने में सहायक होते हैं। जिस समुदाय में बच्चा रहता है, यदि उसका वातावरण अच्छा नहीं है, तो बालक अपराधी बन जाता है। इसमें हम निम्नलिखित बातों को लेते हैं –

❖ **मनोरंजन-**उचित मनोरंजन की सुविधा होने पर बाल अपराध की दर में कमी आती है। खाली समय में यदि बच्चा न तो स्कूल जाता है और न ही कोई काम करता है, तो वह अपराध की ओर बढ़ता है। बड़े-बड़े शहरों में पार्क वगैरह ऐसे स्थान पर होते हैं, जहाँ व्यक्ति मनोरंजन के लिए एकत्रित होते हैं। लेकिन यही स्थान बच्चों को भी अपराध के लिए सुविधायें प्रदान करते हैं।

❖ विद्यालय-विद्यालय ऐसा परिवेश है, जहाँ बच्चों को उचित सामाजिक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है। लेकिन यदि विद्यालय का वातावरण अच्छा नहीं है, तो बच्चे को विद्यालय से अरूचि होने लगती है। वह विद्यालय से भागता है तथा सारा दिन फुटपाथ पर काटता है और एक दिन बाल अपराधी बन जाता है।

❖ युद्ध-युद्ध सामाजिक विघटन का एक महत्वपूर्ण कारक है। जहाँ युद्ध से सामाजिक विघटन होता है, वहीं पर सामान्य घरेलू जीवन को भी नष्ट करता है। एल्सा कास्टेन्डिक ने बाल अपराध व युद्ध का अध्ययन किया है। वे लिखते हैं कि ‘‘यूरोप में युद्ध के कारण बच्चों की शिक्षा बन्द हो गयी थी क्योंकि बच्चों के माता-पिता युद्ध कार्य में व्यस्त थे तथा बच्चों की देख-रेख करने वाला कोई नहीं था।

E. **अन्य कारक-**बाल अपराध के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कारकों के आधार पर बाल-अपराध को समझा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक आधार पर मानसिक अस्थिरता, हीनता की भावना तथा बुद्धि की कमी भी बाल अपराध का कारण है। जिन परिवारों में पारिवारिक अशान्ति तथा कलह का वातावरण रहता है, उन परिवारों में बच्चा यह तय नहीं कर पाता है कि उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह स्थिति बालक को अपराधी बना देती है।

9.2.4 बाल अपराधियों के सुधार कार्य

भारत में बाल अपराधियों का सुधार कार्य सन् 1850 से प्रारम्भ किया गया है। भारत सरकार ने सर्वप्रथम एक शिक्षार्थी अधिनियम बनाकर 10 से 18 वर्ष की आयु के बिना उद्देश्य घूमने वाले बच्चों के लिए किसी उद्योग में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की। सन् 1857 में भारतीय दण्ड संहिता

में यह व्यवस्था की गयी कि 15 वर्ष से कम आयु के बाल अपराध को न्यायालय जेल के स्थान पर सुधार गृह भेजने का भी आदेश दे सकता है। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् बाल अपराधियों को सुधारने हेतु निम्नलिखित कार्य किये गये है –

1. **बाल न्यायालयों की स्थापना-** भारत में सन् 1960 में बाल अपराध नियम पारिम किया गया है, जिसके द्वारा बाल अपराधियों के मुकदमें की सुनवाई तथा उनके सुधार कार्य के लिए बाल-न्यायालयों तथा कल्याण परिषदों की व्यवस्था की गयी हैं। इनमें न तो सामान्य न्यायालय जैसा वातावरण होता है, न वकील जिरह करते हैं, बल्कि सहानुभूतिपूर्वक बालक के अपराध करने का कारण जाना जाता है। पुलिस सादे वेश-भूषा में रहती है, इसकी सभी कार्यवाही इस प्रकार से होती है कि बच्चे में किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं होता है। इसके बाद भी यदि बालक दोषी पाया जाता है तो उसे जेल में न भेजकर सुधार गृह में भेजा जाता है।

2. **सुधार गृह-** प्रत्येक राज्य ने बाल-अपराधियों के लिए सुधार गृहों की स्थापना की है। 15 वर्ष से कम आयु के बाल-अपराधी को जेल में न भेजकर सुधार गृहों में भेजा जाता है जिससे वह जेल में रहने वाले अपराधियों या पेशेवर अपराधियों के सम्पर्क में न आ सकें। ऐसे सुधार गृहों में बच्चों के लिए भोजन, वस्त्र, जल आदि की उत्तम व्यवस्था की जाती है। रोगियों के लिए चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है तथा प्रत्येक बच्चे को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वह इन सुधार गृहों से निकलने के बाद रोजगार प्राप्त कर सके। इन सुधारगृहों में नैतिक शिक्षा के द्वारा अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न की जाती है।

3. **बोर्स्टल संस्थायें-** अनेक राज्यों में आज बोर्स्टल स्कूल अधिनियम की लागू है। इसके अनुसार 15 वर्ष से 21 वर्ष तक के किशोर अपराधियों के लिए एक पृथक संस्था की व्यवस्था की गयी है। यह संस्थायें दो प्रकार की है- बन्द तथा खुली। इनमें बच्चों की बुरी आदतों को छुड़वाने का प्रयास किया जाता है।

4. **प्रमाणित स्कूल**- इन स्कूलों में कम आयु के साधारण अपराधियों को तकनीकी प्रशिक्षण देकर उनकी स्थिति में सुधार किया जाता है। इनमें 10 से 12 व 12 से 18 वर्ष तक के बच्चों को रखा जाता है। इन स्कूलों में असामान्य मस्तिष्क के बाल अपराधियों को रखा जाता है। ऐसे अपराधियों की मानसिक चिकित्सा की जाती है तथा उनका प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

5. **उत्तर संरक्षण संस्थायें-** भारत में तमिलनाडु, गुजरात तथा महाराष्ट्र में बाल अपराधियों के लिए अनेक उत्तर संरक्षण संस्थाएं स्थापित की गयी है। यह व्यवस्था आंशिक रूप से उत्तर प्रदेश तथा बिहार में भी क्रियाशील है। उत्तर रक्षा सुविधाओं का अर्थ उन सुविधाओं से है, जो बाल

अपराधियों को दण्ड की अवधि पूरी होने या कुछ अवधि शेष रहने पर प्रदान की जाती है। अपराधी को छः माह तक सुधार गृह में रह लेने के समय तक यदि यह विश्वास हो जाये, कि उसका आचरण अच्छा है, तो उसे किसी विश्वस्त व्यक्ति की देखरेख में छोड़ा जा सकता है।

6. **रिमाण्ड गृह-** नई व्यवस्था के अनुसार पकड़े गये बाल अपराधियों को पुलिस की हिरासत में रखकर विशेष सदन में रखा जाता है तथा बच्चे के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है और 24 घण्टे के अन्दर उसे किसी न्यायाधीश के सामने पेश करना होता है। इन गृहों में उन बच्चों को रखा जाता है, जो घर से भागे हुए, बेघरबार या टूटे परिवार के सदस्य होते हैं।

9.2.5 बाल अपराध निरोध के सुझाव- भारत में बाल अपराधियों की संख्या में वृद्धि को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि इन सुधार के साथ-साथ ऐसे उपाय करें जिससे बच्चे को अपराधी बनने से रोका जा सके। इसके लिए उन परिस्थितियों को दूर अथवा कम करना होगा, जो बाल अपराध को जन्म देती है। इन्हें निम्न तरह से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. डॉ0 सेथना ने बाल अपराध निरोध के अभ्यागत अध्यापक व्यवस्था का सुझाव दिया है। इसके अनुसार अध्यापक यदि बच्चे के माता-पिता से मिलकर बच्चे के बारे में पूरी जानकारी कर लें, तब शिक्षा करें, तो बच्चे को अपराधी बनने से रोका जा सकता है।

2. परिवार में माता-पिता अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए बच्चे का उचित रूप से पालन-पोषण करें तथा उन पर वांछित नियंत्रण रखें।

3. निर्धन परिवार के बालकों के लिए मुक्त शिक्षा की व्यवस्था की जायें, ताकि उनके माता-पिता बच्चे को पढ़ाने में रूचि ले।

4. प्रायः देखा गया है कि बच्चे बुरी संगति में ही पड़कर अपराध करते हैं। अतः कानून मंे परिवर्तन करना चाहिए, ताकि कम आयु के बच्चों को गुमराह करने वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जा सके।

5. मनोरंजन के साधनों में सुधार किया जायें, नगरों में पार्क बनवाये जायें, तथा बच्चों को चलचित्र और अश्लील साहित्य आदि से बचाया जाये।

6. बड़े-बड़े नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों पर तथा घनी बस्तियों में सलाहकार समितियां बनाई जायें, जो पिछड़े हुए बच्चों के माता-पिता का उचित सलाह दे सकें।

7. स्त्री शिक्षा का विकास किया जाये। यदि परिवार में स्त्री शिक्षित होगी, तो वह बच्चों का उचित रूप से पालन पोषण कर सकेगी।

8. बच्चों को अपराध के लिये प्रेरित करने वाले कारकों को विफल बनाने हेतु अपराध-निवारण का कार्य करने वाली सभी सरकारी एजेन्सियों को संपूर्ण ह्रदय के साथ टोली कार्य करना चाहिये।

9. बाल अपराध निवारण राय से सम्बन्धित सभी संगठनों के सदस्यों और कर्मियों को विश्व रूप से प्रशिक्षित किया जाये।

10. गंभीर रूप से विक्षुब्ध व कुसमायोजित बालकों के उपचारार्थ बाल-निर्देशन केन्द्रों एवं मानसिक चिकित्सा केन्द्रों की व्यवस्था की जाये।

11. परिवार को पारिवारिक रहन-सहन, शिक्षा, अन्तर्भावनाशील शक्ति कार्य व सामाजिक स्वास्थ्य और परामर्श सेवा कार्यों की शिक्षा दी जाये।

12. कम सुविधा प्राप्त बालकों की सेवा तथा सहायता की जाये।

13. पूर्णकालिक मनोरंजन एजेन्सियों की स्थापना की जाये, तो सर्वथा स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करे।

14. प्रेस, समाचार-पत्र, रेड़ियों, दूरदर्शन, सिनेमा आदि के माध्यम से बाल अपराध के विरुद्ध प्रचार किया जाये।

अन्त में निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि सरकार द्वारा, समाज द्वारा तथा परिवार एवं अभिभावकों द्वारा ध्यान दिया जाये, तो बाल अपराधियों की संख्या में तो कमी की ही जा सकती है, साथ ही बाल अपराध को जन्म देने वाली परिस्थितियों को भी समाप्त किया जा सकता है।

9.3 सार संक्षेप (Summary)

प्रस्तुत इकाई में बाल अपराध की अवधारणा के साथ-साथ परिभाषा पर विशेष बल दिया गया है। जिसमें बताया गया है कि बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है जिसने समाज विरोधी कार्य किया है। तथा जिसका व्यवहार कानून तोड़ने वाला है। प्रस्तुत इकाई में ही बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है। यह इकाई यह भी बताती है कि बाल अपराध के कौन-कौन से मुख्य कारण है ? प्रस्तुत इकाई के अन्त में भारत में बाल अपराधियों के सुधार कार्य हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। प्रस्तुत इकाई पूर्ण रूप से बाल अपराध से सम्बन्धित उन तथ्यों को संग्रहित करती है जिससे बाल अपराध के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सके।

9.4 शब्दावली (Vocabulary)

- **बाल अपराधी -** भारत में 15 वर्ष तक की आयु के ऐसे बालक जो समाज विरोधी अपराधों या कुकृत्यों में लिप्त पाये जाये बाल अपराधी कहलाते हैं।
- **सुधार गृह -** सुधार गृह से तात्पर्य जहां पर बाल अपराधियों को सुधारने के लिए रखा जाता हो जहां पर नैत्यिक शिक्षा द्वारा अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न की जाती है।

9.5 अभ्यास प्रश्न (Questions for practice)

लघु

- बाल अपराध की अवधारणा लिखिए।
- बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
- बाल अपराध की मुख्य कारणों की चर्चा कीजिए।
- सांस्कृतिक कारक पर टिप्पणी लिखिए।
- आर्थिक कारक पर टिप्पणी लिखिए।

विस्तृत प्रश्न

- बाल अपराध की परिभाषा देते हुए इसके कारणों की विवेचना कीजिए।
- बाल अपराध की अवधारणा देते हुए भारत में बाल अपराधियों के सुधार कार्य पर एक निबन्ध लिखिए।

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- सिंह जीत कृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ वर्ष 2006 पेज 110-123.
- तेज, संगीता, पाण्डेय तेजस्कर, समाज कार्य, जुविली फण्डामेन्टलस लखनऊ, वर्ष 2012, पेज बी0-89-बी0-97.

इकाई 10. मद्यपान: कारण एवं रोकथाम (Alcoholism: Causes and Prevention)

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मद्यपान की अवधारणा

10.4 मद्यपान का परिमाण

10.5 मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया

10.6 मद्य दुरुपयोग के कारण

10.7 मद्यपान की समस्याएँ

10.8 मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण

10.9 शब्दावली

10.10 अभ्यास प्रश्न

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

मद्यपान (अतिमद्यपता) एवं मादक द्रव्य व्यसन ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं जो आज सभी देशों में चिन्ता का विषय बनी हुई हैं क्योंकि इनसे तीनों ही प्रकार के विघटनों-वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन तथा सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। इन्हें मुख्य रूप से वैयक्तिक विघटन के रूप में देखा गया है। भारत में मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि यह खतरा पैदा हो गया है कि आने वाले कुछ वर्षों में भारत इन पदार्थों का सेवन करने वाला सबसे पहला और बड़ा देश बन जाएगा। एक अनुमान के अनुसार केवल दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता तथा चेन्नई में जहरीली दवाओं की लाखों रुपये की खुदरा बिक्री रोज होती है। अकेले मुम्बई में एक लाख से अधिक नसेड़ी हैं और देश में हर वर्ष ५० हजार की दर से नसेड़ियों की वृद्धि हो रही है। इससे भारत में मद्यपान की समस्या की गम्भीरता का पता चलता है। मद्यपान कोई नई बात नहीं है क्योंकि इसका प्रचलन आदिकाल से ही संसार के प्रत्येक

देश में विविध रूपों में होता आया है। मद्यपान यद्यपि करता तो एक व्यक्ति है परन्तु इसे सामाजिक समस्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे वैयक्तिक विघटन के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक विघटन भी होते हैं। मद्यपान एक सामाजिक समस्या तब समझी जाती है, जबकि अत्यधिक मदिरा का उपयोग करके व्यक्ति व्यभिचारी या अपराधी कार्यों को करने लगता है। इतना ही नहीं, तलाक, पलायन, आत्महत्या, अपराध, कलह, भ्रष्टाचार, दुर्घटना व नैतिक पतन जैसी अनेक समस्याएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं। इसलिए इस समस्या का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। अत्यधिक अथवा आदतन मद्यपान का व्यक्ति के मूल्यों, मनोवृत्तियों, स्वास्थ्य तथा जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति परिवार तथा समुदाय का भी सदस्य होता है। इसलिए इससे समाज की यह महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ भी प्रभावित होती हैं। संसार में लाखों पुरुष तथा स्त्रियाँ आज ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं जहाँ मद्यपान उनकी एक मूल आवश्यकता बन गया है।

10.2 उद्देश्य (Objective)

मदिरा का अत्यधिक सेवन मद्यपान कहलाता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में 21 प्रतिशत वयस्क पुरुष मद्यपान करते हैं। अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में यह प्रतिशत 75 तक है। यद्यपि सम्पूर्ण भारत में महिलाओं में मद्यपान की दर पुरुषों की तुलना में कम है, तथापि उत्तर-पूर्वी राज्यों में महिलाओं में मद्यपान की दर भी अत्यधिक है। आदिवासियों तथा ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले लोगों में मद्यपान अधिक है। वैयक्तिक स्तर पर मद्यपान से शारीरिक क्षमता कम होती है तथा अनेक प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। परिवार के स्तर पर मद्यपान पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन देता है तथा महिलाओं पर अत्याचार में वृद्धि करता है। सामुदायिक स्तर पर भी मद्यपान की काफी सामाजिक एवं आर्थिक कीमत चुकानी पड़ती है। दुर्घटनाएँ एवं मृत्यु, मानव शक्ति अपव्यय, अपराध में वृद्धि तथा सामाजिक सुरक्षा, उपचार एवं पुनर्वास के लिए अधिक धन का व्यय ऐसे दुष्परिणाम हैं जो मद्यपान के कारण पनपते हैं। इसीलिए समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में मद्यपान को सम्मिलित किया जाता है। इस इकाई का उद्देश्य मद्यपान के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करना है।

10.3 मद्यपान की अवधारणा (The Concept of Alcholism)

आज समाज में मद्यपान ही एक समस्या नहीं है अपितु अन्य नशीले द्रव्यों (जैसे अफीम, गांजा, चरस, कोकीन, भांग, एल० एस० डी० अन्य नशा उत्पन्न करने वाली दवाएँ व जड़ी बूटियाँ इत्यादि) का प्रयोग इतनी अधिक मात्रा में होने लगा है कि प्रत्येक समाज में मादक द्रव्य व्यसन एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। अमेरिका, यूरोप तथा एशिया के अनेक देश इससे प्रभावित हैं। प्राय: ऐसा देखा गया है कि अगर

एक बार इस प्रकार के मादक द्रव्य व्यसन की व्यक्ति को आदत पड़ जाती है तो इसे छोड़ना बहुत कठिन होता है।

मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है। इलियट एवं मैरिल ने उचित ही लिखा है कि मद्यपान का भी सामाजिक वितरण होता है। जटिल समाजों में विभिन्न समूहों को जिस प्रकार शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, राष्ट्रीयता, प्रजाति इत्यादि कारकों द्वारा एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार इन समूहों में मद्यपान का उपयोग एक समान रूप से नहीं होता। वैयक्तिक असुरक्षा, जोकि एक समूह में पाई जाती है, जरूरी नहीं है कि वह किसी अन्य समूह में भी पाई जाए। इसीलिए ग्रामीण तथा नगरीय समुदायों तथा उन समुदायों के विभिन्न समूहों में इसका उपयोग एक समान नहीं होता है। कुछ समाजों में कम तेज मद्यपान का उपयोग किया जाता है।

10.3.1 मद्यपान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सरल शब्दों में मद्यपान का अर्थ मदिरा (शराब) का सेवन करना है। जो व्यक्ति मदिरा का सेवन करता है उसे मद्यसेवी कहते हैं। फेयरचाइल्ड ने मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहा है। इलियट एवं मैरिल जैसे अनेक विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि अधिक मात्रा में मदिरा का सेवन ही मद्यपान कहलाता है। कभी-कभी अथवा बहुत कम मात्रा में शराब पीना मद्यपान नहीं है। साथ ही, ऐसे विद्वानों ने मद्यपान को मदिरा सेवन की वह आदत बताया है जो मद्यसेवी की कमजोरी बन जाती है। वह मदिरा पर इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि बिना उसके सेवन से उसे बेचैनी होने लगती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन निपुण समिति ने मद्यपान को इन शब्दों में परिभाषित किया है, ‘‘मद्यपान नशे की वह दशा है जो किसी मादक पदार्थ के निरन्तर सेवन से पैदा होती है; जो कुछ देर तक या सदैव ही व्यक्ति को इस तरह नशे में चूर रखती है जो समाज और व्यक्ति दोनों के लिए हानिकारक होती है।’’ इस संगठन के अनुसार मद्यसेवी से अभिप्राय अधिक नशा करने वाले उस व्यक्ति से है जिसकी मदिरा पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इसके कारण व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य विगड़ने लगता है। सन् 1964 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त मद्यनिषेध पर स्टडी टीम की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इस स्टडी टीम के अध्यक्ष पंजाब उच्च न्यायालय के निवर्तमान न्यायाधीश श्री टेकचनद थे। यह रिपोर्ट मद्यपान एवं मद्यनिषेध पर एक शास्त्रीय शोघ ग्रन्थ माना जाता है। इस रिपोर्ट में मद्यपान की परिभाषा इन शब्दों में की गई थी, ‘‘मद्यपान से आशय एक बीमारी, आदत या व्यसन से है जो व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक व्यवस्था के टूटने से पैदा होता है। यह विघटन दीर्घकाल तक लगातार और आदतन मद्यपान के परिणामस्वरूप होता है।’’

इसी भाँति, मार्क वैशलर के अनुसार, ''मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मद्यपान मदिरा सेवन की वह स्थिति है जो मद्यसेवी की आदत बन जाती है तथा जो उसके स्वास्थ्य और मानसिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। यह मदिरा के किसी भी रूप में निरन्तर उपयोग से उत्पन्न पाक्षिक या शाश्वत नशे की स्थिति है जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर होती है। मद्यपान में मदिरा के साथ-साथ उन पदार्थों का सेवन भी सम्मिलित है जो व्यक्ति में मादकता उत्पन्न करते हैं। इसीलिए किसी भी ऐसे पदार्थ का सेवन जो नशा पैदा करता है विस्तृत रूप से मद्यपान कहलाता है। वस्तुत: मद्यपान से आशय व्यक्ति की उस व्याधिकीय दशा से है जो उसके द्वारा नशीले पेयों के लगातार एवं अत्यधिक सेवन से उत्पन्न होती है। इस दशा में व्यक्ति मद्यपान की आदत का शिकार हो जाता है। वह मद्यपान के लिए स्वयं को बाध्य समझता है। एक मानसिक रोगी की भाँति, दिन-प्रतिदिन विकृतियों की ओर बढ़ता हुआ भी तथा मदिरा की चाह को छोड़ना चाहते हुए भी वह इसे नहीं छोड़ सकता। मद्यपान अत्यधिक मदिरा व्यसन की स्थिति है जिसमें व्यक्ति मानसिक विकृति का शिकार होने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी दरिद्र हो जाता है, सामाजिक प्रतिष्ठा खो बैठता है तथा नैतिक ह्रास के कारण एक प्रकार से विवेकशून्य हो जाता है। अत: मद्यपान उन लोगों की समस्या नहीं है जो कभी-कभी खुशी या गम के अवसर पर थोड़ी-सी मदिरा पी लेते हैं और बातचीत व हँसी-मजाक करके खाना खाकर सो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए मदिरा शारीरिक या मानसिक कमजोरी नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन से मद्यपान की निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

- मद्यपान अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन की आदत है।
- मद्यपान की आदत में व्यक्ति मदिरापान करने के लिए अपनी विवशता प्रकट करता है।
- मद्यपान व्यक्ति के लिए जीवन की वह स्थिति है जिससे मदिरा उसके जीवन के लिए एक समस्या बन जाती है और वह उसे आसानी से छोड़ नहीं पाता है।
- यह आदत कभी-कभी अथवा अधिकांशत: मदिरा-सेवन करने वाले व्यक्ति के व्यवहार और कार्यक्षमता में गम्भीर दोष उत्पन्न कर देती है।
- मद्यपान की स्थिति में व्यक्ति शारीरिक व संवेगात्मक नुकसान उठाता है।

- मद्यपान एक मानसिक व शारीरिक बीमारी है जो अनेक प्रकार के रोगों और व्यवहार विवादों को जन्म देती है।

टेकचन्द स्टडी टीम ने मदिरासेवियों (मद्यसारिकों) की निम्न छह श्रेणियाँ बताई हैं—

- कभी-कभी पीने वाले,
- संयत पीने वाले (एक सप्ताह में तीन बार),
- अभ्यस्त, सामाजिक अथवा भोजन के साथ पीने वाले (हफ्ते में तीन बार से ज्यादा लेने वाले),
- अधिक पीने वाले (वे लोग जो इतना पीते हैं कि घर, समाज या व्यापार में भी कठिनाई में पड़ जाते हैं परन्तु वे इसे स्वेच्छा से छोड़ सकते हैं),
- व्यसनी पीने वाले (वे जो अपने आप मदिरा सेवन नहीं छोड़ सकते और जिन्हें उपचार की जरूरत है), तथा
- चिर-कालिक पीने वाले (वे लोग जो तन और मन से गिरावट की स्थिति में हैं)।

10.3.2 मद्यपान बनाम मादक द्रव्य व्यसन (alcoholism vs drug addiction)

मद्यपान मदिरा का अधिक सेवन है, तो मादक द्रव्य व्यसन उन नशीली औषधियों का प्रयोग है जिन पर व्यक्ति इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि ऐसा करना न केवल उसकी आदत बन जाती है, अपितु उसके जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित भी करती है। इसीलिए मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का परिणाम यद्यपि एक-जैसा होता है, तथापि दोनों में अन्तर भी है। मद्यपान आदिकाल से चली आ रही एक सार्वभौमिक समस्या है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन औषधि विज्ञान में हुई प्रगति के परिणामस्वरूप विकसित एक आधुनिक समस्या है। चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त किसी भी मात्रा में शक्ति, आवृत्ति या प्रकार से किसी दवा का सेवन, जो शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को क्षति पहँचाए, मादक द्रव्य व्यसन कहलाता है। अन्य शब्दों में, यह नशीली दवाओं का दुरुपयोग है। मद्यपान सामान्यतया सायंकाल एवं रात्रिकाल में अधिक किया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन का कोई समय नहीं है। मादक द्रव्यों का प्रयोग अधिकांश व्यसनी दिन के समय में ही करते हैं। इसलिए उनमें अनेक ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं जोकि मद्यपान के परिणामस्वरूप विकसित नहीं होते। इन लक्षणों में खेलकूद और दिनचर्या में अरुचि, भूख व वजन में कमी, लड़खड़ाते कदम, बेढंगी हरकतें, आँखों में लालिमा, सूजन व धुंधलापन, जुबान का लड़खड़ाना, उनींदापन या अनिन्द्रा, सुस्ती और अकर्मण्यता का होना, तीव्र उद्विग्नता, घबराहट, शरीर पसीने से तरबतर हो जाना, स्मरण शक्ति और एकाग्रता की क्षीणता, अकेलेपन की चाह खासकर शौचालय

में अधिक समय बिताना, तथा घर से सामान/पैसा गायब हो जाना प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, शरीर पर अनेक टीकों के ताजे निशान व कपड़ों पर खून के धब्बे, घर में सुइयों व अजीबो-गरीब पैकटों का पाया जाना भी मादक द्रव्य व्यसन के लक्षण हैं। मद्यपान में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं पाई जाती है। मद्यपान का प्रचलन बड़ों की तुलना में बच्चों में कम पाया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन की आदत अधिकतर 16 से 35 वर्ष की आयु वाले लोगों में अधिक पाई जाती है। निम्न आय वर्ग में मादक द्रव्यों के व्यसनी अधिक होते हैं। इस प्रकार के ज्यादातर व्यसनी बेरोजगार, श्रमिक, परिवहन मजदूर या विद्यार्थी होते हैं। मदिरा सामान्यतया शराब की दुकानों अथवा ठेकों में उपलब्ध होती है। ये दुकानों एवं ठेके सरकार द्वारा अनुमोदित होते हैं। इसके विपरीत, मादक द्रव्य मुख्य रूप से फेरीवाले, दुकानदार और पानवाले गैर-कानूनी रूप से बेचते हैं। पान वाली दुकानों में तथा अंग्रेजी दवाएँ बेचने वाली दुकानों में ऐसे मादक द्रव्य सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। मादक द्रव्य व्यसन का इतिहास काफी प्राचीन है तथा यूरोप, एशिया व सुदूरवर्ती पूर्वी और पश्चिमी देशों में इसका प्रयोग किसी ने किसी रूप में अवश्य होता रहा है। उदाहरणार्थ, भारत में मादक द्रव्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आया है। हिन्दू ग्रन्थों में 'सोमरस' नामक मादक द्रव्य तथा भांग का उल्लेख मिलता है। भांग को शिवजी का प्रिय पेय समझा गया है तथा शिवरात्रि वाले दिन अधिकतर लोग भांग पीते हैं। इस प्रकार, कई मादक द्रव्यों के प्रयोग को भारत में कुछ सीमा तक धार्मिक स्वीकृति भी मिली हुई है। होली के त्योहार पर भांग का प्रयोग बहुधा होता है। साधु-सन्त तथा महात्मा लोग गांजा, चरस तथा कोकीन का बहुधा प्रयोग करते हैं। भारत में अफीम का उपयोग भी अधिक हो गया है तथा कुछ लोग नींद के लिए इसे दवा के रूप में प्रयोग करते हैं।

केवल भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में अफीम, गांजे और चरस का प्रयोग काफी बढ़ गया है। मादक द्रव्यों को उत्तेजक (कोकीन, डक्सीड्रीन, मेथेड्रीन आदि), निश्चेतक अफीम, गांजा, चरस आदि तथा मायिक या भ्रान्तिजनक (एल० एस० डी० आदि) में विभाजित किया जा सकता है। उत्तेजक द्रव्य खाने से नींद नहीं आती है और ऐसा लगता है की शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ गई हैं; निश्चेतक द्रव्य खाने से उनींदापन महसूस होता है, चित्त प्रसन्न लगता है तथा उदासी की भावनाएँ दूर हो जाती हैं तथा मायिक द्रव्यों के प्रयोग से व्यक्ति दिन को सपने देखने लगता है तथा उसका सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। मद्यपान और मादक द्रव्य व्यसन दोनों वैयक्तिक विघटन के प्रमुख रूप माने जाते हैं।

मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है। मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी नशीली औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर वह औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक

द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है। दोनों के कारणों एवं परिणामों में इतनी अधिक समानता है कि इस दृष्टि से भी इन दोनों में अन्तर करना एक कठिन कार्य है।

10.4 मद्यपान का परिमाण (Causes of Alcoholism)

मद्यपान भारत में एक समस्या है क्योंकि इसका दुरुपयोग सम्बन्धित व्यक्ति, उसके परिवार एवं समुदाय के लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ विकसित कर देता है। महात्मा गांधी ने इस सन्दर्भ में कहा था कि,''मद्यपान को मैं चोरी और यहाँ तक कि वेश्यावृत्ति से भी अधिक बुरा मानता हूँ क्योंकि यह दोनों ही बुराइयाँ मद्यपान से पैदा होती हैं।'' इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में मद्यनिषेध पर काफी जोर दिया गया। मदिरा के उत्पादन से सरकार को इतना अधिक आबकारी कर प्राप्त होता है कि इसे बन्द करना अत्यधिक कठिन है। इसके उत्पादन में होने वाली वृद्धि का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1970 ई० में भारत में शराब का उत्पादन केवल 60 लाख लीटर था जो 1992-1993 ई० तक बढ़कर 887.2 मिलियन लीटर, 1999-2000 ई० में 1654 मिलियन लीटर तथा 2007-2008 ई० में बढ़कर 2300 मिलियन लीटर हो गया। दक्षिण-पूर्व एशिया में कुल शराब के उत्पादन में 65 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। इतना ही नहीं, वैश्विक उदारीकरण के इस युग में विदेशी मदिरा भी काफी मात्रा में भारत में उपलब्ध है। नशीले पदार्थों के शिकार केवल युवक ही नहीं हैं अपितु अब 12 से 14 वर्ष तक के बच्चे भी इसमें शामिल हो गए हैं। सन् 1986 में भारतीय चिकित्सालय अनुसन्धान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षण से हमें यह पता चलता है कि अब प्रतिभाशाली तथा अच्छे छात्र सामान्य तथा मन्द बुद्धि छात्रों की अपेक्षा इन पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं। नशीले पदार्थों का सर्वाधिक सेवन परीक्षाओं के समय ही पाया गया है। अधिकतर छात्र इन पदार्थों का सेवन थकान दूर करने या तनाव कम करने के लिए करते हैं। कुछ छात्र यह सोचकर नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं कि इन्हें लेने से याददाश्त तेज हो जाती है। सर्वेक्षण के अनुसार बड़े शहरों में या विद्यालयों में तथा विश्वविद्यालय में 25 प्रतिशत छात्र नशीले पदार्थों का सेवन करते पाए गए। यह लत सर्वाधिक 35 प्रतिशत दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों में पाई गई। यह प्रतिशत उन शिक्षण संस्थाओं में और अधिक है जहाँ शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत अच्छा है तथा जहाँ छात्रों को काफी अधिक छूट मिली हुई है। स्कूलों में नशीले पदार्थों का सेवन भी चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। यह बात पब्लिक स्कूलों के छात्रों में अधिक पाई जाती है। दिल्ली विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभाग के प्रोफेसर पी० एन० गोविल के अनुसार, नशे की लत बढ़ने का एक प्रमुख कारण शिक्षकों तथा छात्रों के बीच परम्परागत घनिष्ठ तथा वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव है। उनके अनुसार समाज का तेजी से बदलता परिवेश भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार है। आजकल तो आप अगर समाज में अपनी इज्जत कराना चाहते हैं तो आपको शराब और सिगरेट तो पीनी ही होगी। साथ ही, उनका कहना है कि मादक औषधियाँ आसानी से मिल जाती हैं। अधिकारियों की मिलीभगत तथा उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण ही ऐसा हो पाया है। ऐसा अनुमान किया गया है कि मुम्बई नगर में 1 लाख 50 हजार व्यक्ति हेरोइन

सेवन के आदी हैं। दिल्ली में इनकी संख्या 1 लाख और कोलकाता में 70 हजार है। एक संगोष्ठी में विशेषज्ञों ने यह विचार व्यक्त किया कि भारत में यदि यही प्रवृत्ति रही तो 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ दो करोड़ व्यक्ति इस हेरोइन के शिकार हो जाएँगे। इसलिए इस मादक द्रव्य को सफेद प्लेग भी कहा गया है। दिल्ली में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार हाई स्कूल के दो छात्रों में से एक और कॉलेज के तीन छात्रों में से एक विद्यार्थी मादक द्रव्यों के सेवन का आदी हो चुका है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि देखें तो मुम्बई में एक अस्पताल द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जिन व्यसनियों को उपचार के लिए लाया गया उन चार में से एक श्रमिक वर्ग का था। दिल्ली में 5834 मादक द्रव्य वेचने वाले और सेवन करने वाले पकड़े गए जिनमें से 5506 निम्न वर्ग, झुग्गी-झोपड़ियों से सम्बन्धित थे। एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी श्री गौतम कौल के अनुसार, पंजाब पुलिस में कम से कम पच्चीस प्रतिशत लोग मादक द्रव्यों के सेवन के आदी हैं। दिल्ली के आटो-रिक्शा चालाकों में 70-80 प्रतिशत मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। पिछले चार वर्षों से सम्बन्धित विभागों द्वारा पकड़े गए माल की मात्रा और उसके मूल्य के अनुमान से पता चलता है कि भारत मादक द्रव्य के व्यापार का महत्त्वपूर्ण मार्ग बन गया है। ऐसे द्रव्य भारत होते हुए यूरोप, अमेरिका व अन्य देशों को भेजे जाते हैं। सी० बी० ममोरिया के अनुसार भारत की लगभग 12 प्रतिशत जनसंख्या इससे प्रभावित है परन्तु आजकल यह प्रतिशत कहीं अधिक हो गया है क्योंकि शिक्षण वर्ग में विशेषकर छात्रों तथा छात्राओं में इसका प्रयोग बहुत अधिक बढ़ गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मद्यपान से पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 2.4 मिलियन लोगों की मृत्यु होती है। यह मृत्यु के कारणों में आठवाँ सबसे कारण है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार भारत में मद्यपान अभी भी अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। सरकारी अनुमान के अनुसार भारत में 21 प्रतिशत वयस्क पुरुष तथा 2 प्रतिशत वयस्क स्त्रियाँ ही मद्यसारिक हैं। भारत में लगभग 14 मिलियन ऐसे मद्यसारिक हैं जिन्हें अब सहायता की आवश्यकता है। गैर-सरकारी संगठनों द्वारा मद्यपान के परिमाण के बारे में लगाए गए अनुमान कहीं अधिक है। ऐसा माना जाता है कि भारत में 7.5 करोड़ लोग मद्यसारिक हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण संगठन द्वारा 2005-06 में संकलित आँकड़ों, जोकि सितम्बर 2007 में प्रकाशित हुए, से पता चलता है कि 32 प्रतिशत वर्तमान मद्यसारिकों में 4 से 13 प्रतिशत रोजाना पीने वाले हैं। यह प्रतिशत ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या के लिए लगभग एक-जैसा (क्रमश: 32 प्रतिशत एवं 31 प्रतिशत) है। ऐसा अनुमान है कि पिछले पाँच वर्षों में भारत में मदिरा सेवन में 171 प्रतिशत वृद्धि हुई है। पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, गोवा तथा उत्तर-पूर्वी राज्यों में मद्यपान अधिक होता है। असम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, उत्तर-पूर्व, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश में महिलाओं में मद्यपान पुरुषों की तुलना में अधिक है। इस प्रकार, भारत में मद्यपान के प्रतिमानों एवं प्रवृत्तियों में तेजी से परिवर्तन हुआ है।

मद्यसारिक बनने की आयु पहले की तुलना में कम हो गई है। भारत में अब 15 वर्ष तक की आयु के लड़कों में मद्यपान की आदत पड़ने लगती है। 1990 के दशक में हुए अध्ययनों में यह आयु 28 वर्ष थी।

कम उम्र में पीने वाले 47-50 प्रतिशत लड़के अपने जीवन की किसी-न-किसी अवस्था में मद्यपान के आदी हो जाते हैं। 21 वर्ष से कम आयु में मद्यसारिक बनने वालो की संख्या 15 वर्ष में 2 प्रतिशत से बढ़कर 14 प्रतिशत हो गई है। केरल जैसे राज्य में मद्यपान प्रारम्भ करने की आयु दो दशकों में 19 वर्ष से घटकर 13 वर्ष हो गई है।

10.5 मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया (Process of becoming alcoholic)

व्यक्ति के मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार सोपानों में विभाजित किया जा सकता है—

- मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के प्रथम सोपान में मद्यपान वास्तविकता से बचने का मनोवैज्ञानिक प्रयास माना जाता है। व्यक्ति सोचता है कि मदिरा सेवन से उसका मूड ठीक हो जाएगा। इस अवस्था में मदिरा सेवन सामाजिक न होकर अवरोधनों एवं समस्याओं से बचने का एक साधन बन जाता है। इसी अवस्था में धीरे-धीरे अधिक मदिरा सेवन की आदत विकसित होने लगती है।

- मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के दूसरे सोपान में मद्यपान की आवश्यकता अधिक प्रबल हो जाती है। जो व्यक्ति किसी समस्या के तनाव से बचने के लिए मद्यपान करते हैं, वे इस अवस्था में दिन को भी पीना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे मद्यपान की सहनशीलता बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण ही मदिरा का सेवन नहीं करता अपितु वह मदिरा पर आश्रित भी हो जाता है। यद्यपि इस सोपान में 'नियन्त्रण का लोप' नियमित रूप में नहीं होता, तथापि नातेदार, परिजन, पड़ोसी, मित्र तथा सहकर्मी इस बात का अहसास करने लगते हैं कि उसने पी रखी है तथा सम्भवत: इसीलिए उसका अपने शरीर पर पूरा नियन्त्रण नहीं है। मद्यसारिक मद्यपान के बारे में अधिक उत्सुक रहता है तथा यदि वह इसे छोड़ना भी चाहे तो उसके लिए ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे सोपान में मदिरापान के शारीरिक लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं। इन लक्षणों मे धुँधला दिखना, अस्पष्ट बोली, आँखे लाल होना, चेहरा पीला होना, आँखों के नीचे काले घेरे होना, सिर में भारीपन, अनिद्रा आदि प्रमुख हैं। मद्यसारिक अपनी समस्याओं का कारण मद्यपान न मानकर इसका दोष दूसरों को देने लगता है।

- मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के तीसरे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' अधिक स्पष्ट एवं दिखाई देने वाला लक्षण बन जाता है। यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति एक बार पीना प्रारम्भ कर दे तो उसे लगता है कि उसे और पीना चाहिए। अन्य शब्दों में इस सोपान में मद्यसारिक का मद्यपान पर नियन्त्रण नहीं रहता। मद्यसारिक अधिक गम्भीर समस्याओं का शिकार हो जाता है जिससे उसके अन्य लोगों से सम्बन्ध तक बिगड़ने लगते हैं। वह आर्थिक एवं वैधानिक समस्याओं का शिकार भी हो सकता है। इस सोपान में मद्यसारिक अपने मित्रों एवं

परिजनों से बचने का प्रयास करता है तथा उन क्रियाओं से दूर रहने का प्रयास करता है जो उसके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही हैं। इस सोपान में मद्यसारिक खाने, पानी, अपने स्वास्थ्य, आवास तथा व्यक्तिगत अर्न्तिक्रया जैसी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने लगता है। वह पेशेवर स्वास्थ्य सहायता लेने का भी आधा-अधूरा प्रयास करता है।

❖ मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के चोथे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' चिरकालिक बन जाता है। उसके लिए कार्यस्थल एवं अन्य परिस्थितियों में अपने को संयमित रख पाना कठिन हो जाता है। इस सोपान में उसके हाथ एवं सम्पूर्ण शरीर काँपने लगता है। यह वँâपवँâपी मद्यसारिक में स्नायविक गड़बड़ की द्योतक है। यह वह सोपान है जिसमें मद्यपान से व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है।

10.6 मद्य दुरुपयोग के कारण (Causes of Alcohol abuse)

छोटी सी आयु से ही मादक द्रव्यों के सेवन के कारणों का जिक्र किया जाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित प्रमुख कारण उत्तरदायी हैं—

❖ **वैयक्तिक कारण**-अधिकतर व्यक्ति व्यक्तिगत कारणों जैसे बुरी संगत में रहकर मनोरंजन के लिए, व्यावसायिक मनोरंजन के लिए, शारीरिक थकान को कम करने के लिए, असफल प्रेमी होने के कारण, कुरूप होने के कारण अथवा नीरस तथा निराशाओं से घिरे होने के कारण ही मद्यपान शुरू करते हैं। एक बार व्यक्ति इन कारणों से शराबी हो जाए तो बाद में उसके लिए शराब छोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है।

❖ **पारिवारिक कारण**-मद्यपान में पारिवारिक स्थिति भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि अगर यह पहले से ठीक नहीं है तो बच्चों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, अगर माता-पिता दोनों अथवा एक मद्यपान करते हैं और अनैतिक कार्यों में लगे हुए हैं, तो बच्चे अनैतिकता से वैâसे बच सकते हैं। पारिवारिक जीवन से दु:खी व्यक्ति अथवा सौतेले माता-पिता द्वारा सताए व्यक्तियों में मद्यपान की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिली है। साथ ही, प्राय: यह देखा गया है कि जिन परिवारों में कई पीढ़ियों से मदिरा-सेवन होता है, उनमें बच्चे भी इसे पैतृकतावश अपना लेते हैं।

❖ आथर्क कारण-आर्थिक दृष्टि से असन्तुष्ट व्यक्तियों में शराब सेवन अधिक पाया जाता है। गरीब तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति शराब सेवन करते है। व्यवसाय में निराशा, असुरक्षा अथवा इसके फेल

हो जाने पर अथवा कठिन व्यवसाय में लगे हुए होने के कारण (जैसे सैनिक जीवन) मद्यपान की आदत पड़ सकती है। ट्रक ड्राइवरों में शराब सेवन अधिक देखा गया है।

- सामाजिक एवं धार्मिक कारण—हमारी अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रथाएँ भी मद्यपान को प्रोत्साहन देती हैं। उदाहरणार्थ, अनेक सामाजिक व धार्मिक उत्सवों (जैसे दीवाली, दशहरा, होली इत्यादि) तथा अन्य अवसरों (जैसे लड़के का जन्म, विवाह इत्यादि) के समय अधिकतर शराब का सेवन होता है तथा इन समयों पर इसे बुरा भी नहीं माना जाता। जहाँ पर मद्यपान निराशाओं तथा विफलताओं के समय छुटकारा दिलाने में सहायता देता है, वहीं पर खुशी के समय मद्यपान एक मान्य सी बात हो गई है।

- यौन सुख में उत्तेजना के लिए—कुछ लोग मद्यपान यौन सुख में उत्तेजना लाने के लिए करते हैं क्योंकि इससे यौन सम्बन्धी कामना अधिक जाग्रत होती है। वेश्यागामी पुरुषों एवं अधिक कामी पुरुषों में इसका अधिक सेवन किया जाता है। भारतवर्ष में राजाओं, नवाबों व जमींदारों का इतिहास अगर देखा जाए तो काम उत्तेजना हेतु मदिरा सेवन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अब्राहम ने मद्यपान एवं यौन प्रवृत्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बताया है।

- मनोवैज्ञानिक कारण-कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, चिन्ता से मुक्ति की भावना मद्यपान को प्रोत्साहन देती है क्योंकि कुछ लोगों का विचार है कि मद्यपान द्वारा व्यक्ति अपनी निराशाओं, चिन्ताओं व गम को भूल जाता है। परन्तु आज यह एक भ्रामिक तथ्य माना जाता है क्योंकि मद्यपान से चिन्ता बढ़ सकती है। एल० पी० क्लार्क के अनुसार मस्तिष्क की विकृति का विकल्प शराबीपन है। आन्तरिक अपराधी भावना से बचाव अथवा असुरक्षा की भावना आदि के विचार भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते हैं।

- दूषित पर्यावरण गन्दी (मलिन) बस्तियों जैसे दूषित पर्यावरण तथा स्वास्थ्यपूर्ण मनोरंजन के साधनों का अभाव भी कई बार मद्यपान को प्रोत्साहन देता है। अगर व्यक्ति के चारों तरफ का पर्यावरण दूषित है तो वह उसकी बुराइयों से ज्यादा देर तक बचा हुआ नहीं रह सकता है।

- सुविधा से प्राप्य-शराब उन चीजों से बनती है जो आसानी से मिल जाती हैं। इसलिए यह हर जगह सरलता से मिल जाती है। यह भी इसके प्रसार का एक कारण है।

- निहित स्वार्थों द्वारा प्रयास—मद्य के विक्रय में अनेक कानूनी और गैर-कानूनी संगठन लगे हुए हैं क्योंकि इसमें लाभ का हिस्सा ज्यादा है। उनके प्रयासों द्वारा भी मद्यपान का प्रसार होता है। जहाँ

पहले इक्का-दुक्का शराब की दुकानें दिखाई देती थीं अब खुद राज्य ने जगह-बेजगह ठेकों पर शराब की दुकानें खुलवा दी हैं।

10.7 मद्यपान की समस्याएँ (Problem of Alcholism)

मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का व्यक्ति, समाज तथा परिवार पर काफी गम्भीर प्रभाव पड़ता है। इससे वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक विघटन होता है और नाना प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो जाती है। ममोरिया तथा अन्य विद्वानों ने मद्यपान (जोकि मादक द्रव्य व्यसन के लिए भी लागू होते हैं) के अनेक प्रभावों का वर्णन किया है जिनसे आर्थिक, सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। ये हैं—

- ❖ इससे अपराध, नियम अवहेलना तथा भ्रष्टाचार बढ़ता है,
- ❖ इससे व्यक्तियों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है,
- ❖ इससे मानव मस्तिष्क प्रभावित होता है। जब तक मद्यपान अथवा मादक द्रव्य का प्रभाव रहता है मस्तिष्क ठीक तरह से काम नही करता,
- ❖ शिक्षा का नुकसान होता है,
- ❖ श्रमिक की क्षमता कम हो जाती है तथा इससे उत्पादन में नुकसान होता है,
- ❖ यह पारिवारिक खुशी की समाप्ति का मूल कारण है,
- ❖ वृद्धावस्था में इससे असहनीय स्थिति पैदा हो जाती है,
- ❖ आश्रितों तथा अन्त में सम्पूर्ण समाज को क्षति होती है,
- ❖ व्यसनी के शारीरिक क्षमता पर कुप्रभाव, विशेषत: यौन शक्ति का ह्रास होता है तथा
- ❖ मादक द्रव्यों का छह महीनों तक निरन्तर उपयोग व्यक्ति के मिजाज को चिड़चिड़ा बना देता है तथा वह शारीरिक रूप से जटिल कार्य करने के लिए सक्षम नहीं रहता।

इस भाँति, मादक द्रव्यों का सेवन अर्थव्यवस्था, कानून व्यवस्था, समाज एवं व्यक्ति के लिए इतना घातक है कि आज यह विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। मद्यपान अनेक प्रकार की अन्य समस्याओं को भी जन्म देता है, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

❖ **मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन-**इलियट तथा मैरिल का कहना है कि मद्यपान वैयक्तिक विघटन का सूचक भी है तथा कारण भी। सूचक इसलिए है कि मद्यपान से पहले उसने वैयक्तिक निराशाओं का सामना किया है। अगर मद्यपान न हो, तो हो सकता है वैयक्तिक निराशाएँ तथा असुरक्षा कोई दूसरा रूप धारण कर लें। मादक द्रव्य व्यसन वास्तविकता भुलाने का दूसरा तरीका हो सकता है। मद्यपान से व्यक्ति अपने पैसे का दुरुपयोग करता है, पत्नी व बच्चों का ख्याल नहीं रखता, पत्नी को पीटता है तथा अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखता है। ये सब वैयक्तिक विघटन के ही चिह्न हैं। मद्यपान करने वाला व्यक्ति प्राथमिक समूहों के प्रभाव से दूर होता चला जाता है। निवास स्थान तथा व्यवसाय में गतिशीलता, स्कूल अथवा कॉलेज शिक्षा को पूरा न करना, मनोरंजन के अन्य साधनों पर कम आश्रित होना, विवाह न करना अथवा पृथक्करण या तलाक होना इस बात की निशानी है कि मद्यपान करने वाले व्यक्ति पर प्राथमिक समूहों का प्रभाव बहुत कम होता है। शराब क्योंकि व्यक्तिगत परेशानियों को दूर करने का स्थायी साधन नहीं है, इसलिए शराब पीने से कुछ निकलने के बजाय उसका अपना विघटन शुरू हो जाता है। उसका अपना चरित्र तथा नैतिक पहलू कमजोर हो जाता है तथा अन्त में वह मानसिक रोगी बन जाता है।

❖ **मद्यपान तथा पारिवारिक विघटन-**मद्यपान पारिवारिक विघटन का भी एक प्रमुख कारण है। पारिवारिक व्यक्ति के लिए शराब पीना कभी अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि इससे पत्नी व बच्चों के प्रति त्याग कम हो जाता है। शराबी अपना समय, पैसा तथा शक्ति शराब में ही नष्ट कर देता है तथा परिवार के लिए उसके पास कुछ बचता ही नहीं। पहले तो अधिक मद्यपान करने वाला व्यक्ति विवाह ही नहीं करता (क्योंकि बोतल पत्नी का ही स्थानापन्न या विकल्प है) और अगर करता भी है तो मद्यपान से पति तथा पत्नी के सामाजिक कार्य बिगड़ने लगते हैं। दोनों के सम्बन्धों में तनाव बना रहता है। पत्नी से छुटकारे का एक ही तरीका रहता है तलाक क्योंकि बच्चों की देख-रेख भी बिलकुल नहीं हो पाती। इस प्रकार, मद्यपान केवल वैयक्तिक विघटन तक ही सीमित नहीं है अपितु परिवार भी इससे बुरी तरह से प्रभावित होता है।

❖ मद्यपान तथा आर्थिक विघटन—यद्यपि कुछ व्यक्ति पैसा अधिक होने के कारण मद्यपान करते हैं, परन्तु अधिकतर शराबी अपने आर्थिक जीवन से असन्तुष्ट होने के कारण शराब का सेवन करने लगते हैं। जो थोड़ा बहुत पैसा वे कमाते हैं वह शराब में नष्ट हो जाता है और परिवार की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती। शराबी घर का सामान, गहने इत्यादि गिरवी रखकर भी शराब पीने से नहीं चूकते। इस प्रकार, मद्यपान परिवार के आर्थिक जीवन को बिलकुल खोखला कर देता है।

- ❖ मद्यपान तथा सामाजिक विघटन—मद्यपान व्यक्ति के बाद परिवार और फिर परिवार के बाद सामाजिक विघटन करता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है। इससे अनेक अन्य बुराइयों (यथा अपराध, जुआ, वेश्यावृत्ति आदि) को भी प्रोत्साहन मिलता है जो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को और तेज कर देती हैं।

- ❖ मद्यपान, अनैतिकता तथा अपराध-शराबी व्यक्तियों का नैतिक पहलू काफी कमजोर हो जाता है और उनका मानसिक सन्तुलन भी ठीक नहीं रहता है। बस उसे दो ही बातों की आवश्यकता रहती है पैसा तथा शराब। पैसा अगर नहीं होगा तो शराबी का ध्यान गलत कार्यों की तरफ आकर्षित होता है और वह आत्महत्या, डवैâती, बलात्कार इत्यादि अपराधों को करने लगता है। एक बार अपराधी जीवन में फँस जाने के बाद वह उससे कभी निकल नहीं सकता। इस प्रकार, जहाँ पर मद्यपान अनैतिकता को प्रोत्साहन देता है वहीं पर इससे अपराधी प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा मिलता है।

- ❖ मद्यपान तथा शारीरिक पतन—मद्यपान से शरीर और मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अत्यधिक मद्यपान से शरीर कमजोर हो जाता है। इलियट तथा मैरिल के अनुसार, ''मदिरा एक नियन्त्रक के रूप में कार्य करती है जिसके फलस्वरूप यह उसकी प्रतिक्रियाओं की गति को धीमा करती है, निर्णय की योग्यता को कम करती है और सीखे हुए व्यवहार पर उसका नियन्त्रण कम होने लगता है।''

टेकचन्द अध्ययन दल ने उचित ही टिप्पणी की है कि मदिरा-सेवन, वास्तव में, समस्याओं को जन्म देने वाला है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—पारिवारिक समस्याएँ, धार्मिक समस्याएँ, उपचारात्मक समस्याएँ, औद्योगिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, भ्रष्टाचार की समस्याएँ, कानून को लागू करने की समस्याएँ तथा यातायात की समस्याएँ। वास्तव में, संयत मद्यपान भी दो रूपों में समस्यामूलक है—एक, यह आदमी में आदत निर्माण करने की प्रवृत्ति रखता है जो धीरे-धीरे सन्तुष्ट न हो सकने वाली भूख बन जाती है, और दूसरे, संयत पीने वाला एक झूठी सुरक्षा की भावना महसूस करता है। वह इस भ्रामक आत्मविश्वास में रहता है कि उसकी क्षमताओं पर इसका कोई असर नहीं हो रहा। अधिकतर दुर्घटनाएँ उन व्यक्तियों द्वारा की जाती है जो मदिरा के प्रभाव में तो होते हैं पर जिन्हें नशे की हालत में नहीं कहा जा सकता।

10.8 मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण (Treatment and control of alcoholics)

मद्यपान के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए समाज सुधारक शताब्दियों से इसके निषेध का प्रयत्न करते आ रहे हैं तथा इसके लिए अनेक प्रकार के धार्मिक एवं राजकीय निषेध लगाए जा रहे हैं। नशानिषेध या

मद्यनिषेध का अर्थ ऐसी नीति या कानून है जिसके अन्तर्गत नशे के लिए मदिरा के सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है तथा केवल औषधि के रूप में उसके अत्यन्त सीमित सेवन की अनुमति दी जाती है। भारतीय संविधान के राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत राज्य को मद्यनिषेध की नीति अपनाने का निर्देश दिया गया है। अगर हम भारत में मादक पदार्थों के सेवन के इतिहास को देखें, तो यद्यपि उनका उल्लेख आदिकाल से मिलता है, फिर भी इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अंग्रेजों ने आबकारी कर लगाकर मद्य को आय का एक साधन बनाया और इसका प्रचार होने लगा। मद्यनिषेध का सर्वप्रथम प्रयास गांधी जी के द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम के समय ही 1920 से किया गया था तथा 1921 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नशाबन्दी के लिए प्रस्ताव पारित किया, 1930 में असहयोग आन्दोलन में मद्यनिषेध भी कार्यक्रम का एक हिस्सा था तथा 1937 से 1939 में पाँच प्रदेशों में कांग्रेस सरकारों द्वारा मद्यनिषेध के लिए अधिनियम पारित किए गए। महात्मा गांधी जी का कहना था कि मद्यपान जलते हुए अग्नि कांड या तूफ़ानी नदी की ओर लपकने से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि शराब शरीर और आत्मा दोनों का नाश कर देती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान के 47वें अनुच्छेद के अन्तर्गत स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले मादक द्रव्यों के निषेध को लागू करने की बात कही गई है। सन् 1954 में राज्यों में इस दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा के लिए श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में की स्थापना की गई जिसने 1945 में अपनी रिपोर्ट दी। इस कमेटी ने नशाबन्दी को ज्यादा प्रभावशाली और मजबूती से लागू करने के लिए कई सुझाव दिए, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

- 1अप्रैल 1958 तक पूरे भारत में मद्यनिषेध कानून बन जाना चाहिए।
- 1958 के अन्त तक प्रत्येक राज्य सरकार की इस नीति का समर्थन तथा कार्यान्वित करने की योजना बना लेनी चाहिए।
- होटल, बार, मैस, क्लब, सिनेमा, पार्टी में तथा अन्य सामाजिक व धार्मिक उत्सवों पर पूर्ण नशाबन्दी होनी चाहिए।
- सरकारी कर्मचारियों के लिए नशाबन्दी नियम बना देना चाहिए।
- इसमें मद्यनिषेध के लिए अनेक सुझाव दिए गए जैसे कि शराब की दुकानों की संख्या में कमी की जानी चाहिए, सप्ताह में कुछ दिन शराब की दुकानें बन्द होनी चाहिए, कम शराब बेचने के लिए दी जानी चाहिए तथा दुकानें रिहायशी क्षेत्रों से दूर होनी चाहिए।
- अफीम की सप्लाई सरकार द्वारा 1951 तक बन्द कर दी जानी चाहिए।
- अन्य मादक द्रव्य बेचने वाली दुकानों में कमी की जानी चाहिए।

- ❖ जनजातियों में शिक्षा द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।
- ❖ विदेशी राजदूतों में सार्वजनिक स्वागत समारोहों के समय शराब के प्रयोग को बन्द किया जाना चाहिए, तथा
- ❖ कानून तथा प्रशासन द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।

योजना आयोग ने राज्य सरकारों को मद्यनिषेध से सम्बन्धित अधिनियम बनाने की सिफारिश की तथा 1963 में मुख्यमन्त्री सम्मेलन में इसे पूरी तरह व दृढ़ता से लागू करने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् आन्ध्र प्रदेश के अधिकतर जिलों, चेन्नई, गुजरात तथा महाराष्ट्र में पूर्ण नशाबन्दी लागू की गई है। अन्य प्रदेशों जैसे उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आंशिक नशाबन्दी लागू की गई।

योजना आयोग ने 21 अप्रैल, 1963 को पंजाब हाईकोट के न्यायाधीश श्री टेकचन्द की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल की नियुक्ति की जिसमें श्री एल० एम० श्रीकान्त तथा डॉ० ए० एम० खुसरो सदस्य थे। इस अध्ययन दल का कार्य अवैध रूप से शराब बनाने की सीमा का पता लगाना, वर्तमान मद्यनिषेध सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करना, मद्यनिषेध के आर्थिक पक्षों का अध्ययन करना, मद्यनिषेध की सरकारी नीति की सफलता का आकलन करना तथा ऐसे सुझाव देना था कि जिससे यह कार्यक्रम सफल हो सके। इस अध्ययन दल की रिपोर्ट 6 मई, 1964 में प्रकाशित हुई। दल ने 30 जनवरी, 1970 तक अथवा अधिक-से-अधिक 1975 तक समस्त देश में मद्यनिषेध लागू करने की सिफारिश की। इसके लिए चार चरणों का कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया। पहले चरण में जिन राज्यों में मद्यनिषेध नहीं है वहाँ सबसे कम असर वाली शराब की खपत की अनुमति दी जाए। दूसरे चरण में देशी शराब की मदिरा-शक्ति घटाकर 10 प्रतिशत कर दी जाए। अंग्रेजी शराब में यह प्रतिशत 14.29 से अधिक न रहने दिया जाए। इसी प्रकार, उत्तरोत्तर चरणों में शराब की खपत को धीरे-धीरे कम करके 1975 तक सम्पूर्ण देश में मद्यनिषेध लागू कर दिया जाए। टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव भी प्रस्तुत किए—

- ❖ मद्यपान की जाँच हेतु नवान उपकरणों का प्रयोग किया जाए।
- ❖ उच्च आर्थिक स्थिति के लोगों में मद्यपान को प्रतिष्ठा का प्रतीक मानने वाली मनोवृत्ति दूर की जाए।
- ❖ स्प्रिट आदि पीने के दुरुपयोग पर रोक लगाई जाए।
- ❖ ताड़ी पर नियन्त्रण हेतु प्रचार किया जाए।

टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल पर राज्य सरकारों की भी राय माँगी गई थी। अधिकतर राज्यों ने यह मत प्रकट किया कि मद्यनिषेध के मामले में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए तथा मद्यनिषेध के प्रत्येक पक्ष पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, अधिकतर राज्यों ने 1975 तक सम्पूर्ण मद्यनिषेध की नीति को स्वीकार नहीं किया। 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल की सरकार ने पहली बार पूरे देश में मद्यनिषेध की नीति लागू की तथा इसके लिए राज्यों हेतु कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त भी बनाए गए। जनता दल की सरकार गिर जाने के पश्चात् 1980 में कांग्रेस सरकार के गठन के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि मद्यनिषेध लागू करने के स्थान पर प्रचार के साधनों के द्वारा मद्यपान और मादक द्रव्यों के विरुद्ध जनमत तैयार करना अधिक लाभप्रद है। इसके परिणामस्वरूप पूर्ण मद्यनिषेध की नीति पुन: असफल हो गई। यह भी निर्णय लिया गया कि जो राज्य अपनी इच्छा से मद्यनिषेध लागू करना चाहें, उन्हें आबकारी कर से होने वाली आय का 50 प्रतिशत हिस्सा केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दिया जाएगा। यह आबकारी कर राज्यों की आय का प्रमुख स्रोत है जिसके कारण राज्य पूर्ण मद्यनिषेध की नीति लागू करने में संकोच करते हैं। इसका परिणाम यह है कि सभी सरकारी प्रयत्नों के बावजूद मद्यनिषेध पूरी तरह से लागू करना अभी भी सम्भव नहीं हो सका है। जहाँ तक मादक द्रव्यों के विरुद्ध नीति का प्रश्न है इसके लिए युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा। भारतीय सरकार ने समस्या की गम्भीरता को समझा है और नवम्बर 1985 में नया कानून पारित करके महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है। मादक द्रव्य नियन्त्रण ब्यूरो को शीर्षक एजेन्सी के रूप में स्थापित किया गया है जिसके अन्तर्गत पुलिस, कस्टम एवं वित्त के सम्बन्धित विभाग कार्य करेंगे। मादक द्रव्यों को पकड़ कर ऊँचे पारितोषिक भी घोषित किए गए हैं जो इनके व्यापार में पहली बार पकड़ा जाएगा, उसे दस से बीस वर्ष की सजा और दो लाख रुपये तक जुर्माना दण्ड के रूप में दिया जा सकता है। दूसरी बार ऐसे अपराध में लिप्त पाए जाने पर पन्द्रह से तीस वर्ष तक की सजा का प्रावधान है। रेडियो, टेलीविजन तथा चलचित्र आदि माध्यमों पर मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली बुराइयों को भी प्रदशर्त किया जा रहा है ताकि लोग इस बुराई की ओर आर्किषत न हों। मादक द्रव्य सेवन जिस आयु समूह में पैâल रहा है उसकी दृष्टि से निरोधात्मक उपायों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए जैसे माता-पिता या शिक्षकों को इस दिशा में अधिक जानकारी प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे सचेत रहें और प्रत्येक बालक पर निगाह रख सकें। बच्चों को भी उचित ढंग से इस सम्बन्ध में ज्ञान दिया जाना चाहिए। शिक्षकों की इस मादक द्रव्य के उपयोग की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है और यह उनका नैतिक एवं सामाजिक दायित्व भी है, परन्तु निरोधात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में हरबर्ट शैफर ने बहुत ही उचित लिखा है कि, ''किसी भी निरोधात्मक प्रोग्राम के साथ लगी समस्याओं में से एक यह है कि लोग आमतौर से यह विश्वास नहीं करते कि अभिशाप उन्हें घेर लेगा। माता-पिता सदैव यह महसूस करते हैं कि मादक द्रव्य व्यसन उनके बच्चे को नहीं लगेगा और यदि ऐसा हो जाता है तो वे यह नहीं समझ पाते कि ऐसा वैसे हो गया।.....निरोध का आशय है भविष्य और आशा के साथ काम किए जाना।'' यह सच है कि निरोधात्मक कार्यक्रमों की उपलब्धियों को मापा जाना कठिन है, परन्तु

इस पुरानी कहावत पर विश्वास रख कर इस दिशा में भरसक प्रयास करते रहना चाहिए कि उपचार से निरोध बेहतर है।

वर्तमान में भारत सरकार का कल्याण मन्त्रालय मद्यनिषेध की नीति को प्रभावशाली बनाने हेतु मादक द्रव्यों के दुष्परिणामों के बारे में जागरूकता विकसित करने तथा जो लोग इस व्यसन के शिकार हो चुके हैं, उनका व्यसन छुड़ाने तथा उनकी देखभाल करने हेतु विशेष केन्द्रों की स्थापना करने के विशेष कार्यक्रम चला रहा है। इसके लिए गैर-सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। अत: स्पष्ट है कि मद्यपान के दुष्परिणामों को देखते हुए हमारी सरकार ने मद्यनिषेध के लिए अनेक उपाय किए हैं। यद्यपि पूर्ण मद्यनिषेध व्यावहारिक नहीं हो सकता, फिर भी इसे काफी सीमित किया जा सकता है। सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर शराब पीना, शराब पीकर काम पर आना तथा शराब पीकर सफर करना इत्यादि कार्यों को गैर-कानूनी बनाकर मद्यपान काफी हद तक सीमित किया जा सकता है। मनोरंजन के अन्य साधनों जैसे सिनेमा, क्लबों इत्यादि का उचित विकास भी मद्यपान निषेध में सहायक रहा है। कार्यक्रम की सफलता के लिए ऐसे व्यक्तियों के उपचार की भी बृहत् व्यवस्था की जानी चाहिए। यद्यपि इस रोग का इलाज बहुत महँगा है परन्तु मानव जीवन से बढ़कर कोई कीमती नहीं है।

10.9 शब्दावली (Vocabulary)

- **मद्यपान-** मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहते हैं। यह वह स्थिति है जो मनुष्य की आत्मा, मन और शरीर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करके पतन की ओर ले जाती है।

- **मादक द्रव्य व्यसन-**मादक द्रव्य व्यसन देशी अथवा रासायनिक पदार्थों से बने मादक द्रव्यों का आदतन सेवन है जो व्यक्ति के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

10.10 अभ्यास प्रश्न (Questions for Practice)

- मद्यपान किसे कहते हैं? भारत में मद्यपान के विस्तार को समझाइए।
- मद्यपान को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कारण बताइए।
- मद्यपान से आप क्या समझते हैं? मद्यपान के दुष्परिणामों एवं समस्याओं की विवेचना कीजिए।
- भारत में मद्यनिषेध हेतु सुझाव दीजिए।
- मद्यसारिक किसे कहते हैं? मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण हेतु सुझाव दीजिए।

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

- ❖ मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया
- ❖ मद्यपान के दुष्परिणाम
- ❖ मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन
- ❖ मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन में अन्तर।

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (References)

- ❖ सिंह जीत कृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ वर्ष 2006 पेज 110-123.
- ❖ तेज, संगीता, पाण्डेय तेजस्कर, समाज कार्य, जुविली फण्डामेन्टलस लखनऊ, वर्ष 2012, पेज बी0-89-बी0-97.

इकाई 11 भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृत्ति: कारण एवं रोकथाम (Beggary & Prostitution: Causes and Prevention)

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उदेश्य
11.3 भिक्षावृत्ति अर्थ तथा परिभाषा
11.4 भिक्षावृत्ति के प्रकार
11.5 भिक्षावृत्ति
11.6 भिक्षावृत्ति के कारण
    11.6.1 आर्थिक कारण
    11.6.2 धार्मिक कारण
    11.6.3 जैवकीय कारण
    11.6.4 सामाजिक कारण
    11.6.5 अन्य कारण
11.7 भिक्षावृत्ति की रोकथाम हेतु उपाय
11.8 वेश्यावृत्ति
11.9 परिभाषाएँ
11.10 वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारण
11.11 वेश्याओं के प्रमुख प्रकार
11.12 वेश्यावृत्ति के प्रमुख परिणाम
11.13 भारत में वेश्यावृत्ति पर नियन्त्रण के प्रयास
11.8 सारांश
11.9 पारिभाषिक शब्दावली
11.10 निबंधात्माक प्रश्न
11.11 संदर्भ ग्रन्थ

11.1 प्रस्तावना (Introduction):

शिक्षार्थी भली भाँति जानते हैं कि भिक्षावृत्ति किसी भी देश के लिये कैंसर और कोढ़ की बीमारी के समान है। सम्पूर्ण आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था को जर्जर और कलंकित करने का बहुत कुछ श्रेय इसे ही जाता है। भारत देश में लाखों लोग इसके शिकार है।

अपनी जीविका पार्जन करने योग्य होते हुए भी यह लोग समाज पर बोझ बनकर भीख माँगते नजर आते है। ये बिना परिश्रम के हजारों रूपये प्रतिमाह कमा लेते है। इनका एक विशेष समूह होता है जो इन्हें भीख मांगने के प्रशिक्षण देता है। इन्हें नयी-नयी तरह की शब्दावली सिखायी जाती है जिससे कि मनोवैज्ञानिक दबाव और प्रभाव व्यक्ति और समाज पर पड़ सके और इन्हें सरलता से अधिक भीख मिल सके।

भिक्षावृत्ति एक ऐसी समस्या है जो हमारे देश में दिनो दिन बढ़ती ही जा रही है । इसका जो प्रमुख कारण था वह था निर्धनता|निर्धनता व्यक्ति को क्या-क्या करने के लिए विवश नहीं करती| रोटी कपड़ा और मकान जैसी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर भावुक व्यक्ति आत्महत्या तक कर लेते हैं| कुछ चोरी करने लगते हैं| कुछ गैर सामाजिक कार्य में लिप्त होने लगते हैं तथा, अन्य विवश होकर भीख मांगने लगते हैं| पेट भरने के लिए दूसरों के आगे हाथ पसारना को ही भिक्षावृत्ति कहते हैं| भिक्षावृत्ति एक ऐसे व्यक्ति की वृत्ति है, जिसके लिए उपार्जन का कोई आधार नहीं है तथा जो भीख मांगने के लिए दर-दर घूमता है या सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देता है| अनेक भिक्षुक तो दाताओं की करुणा जागृत करने के लिए अपने शरीर के फोड़े, घाव,शारीरिक रोग या विकृति का प्रदर्शन भी करते हैं|

11.2 उदेश्य:

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप

- भिक्षावृत्ति का अर्थ बता पायेंगे|
- भिक्षावृत्ति के कारणों को समझ पायेंगे|
- भिक्षावृत्ति के लक्षणों को समझ पायेंगे|
- भिक्षावृत्ति उन्मूलन हेतु अपने सुझाव दे पायेंगे|

11.3 भिक्षावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा :

भिक्षावृत्ति पेट भरने के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाने की प्रक्रिया है। भिक्षावृत्ति उस व्यक्ति का 'वृत्ति' है, जिसके पास जीविकोपार्जन का कोई आधार नहीं है और जो भिक्षाटन करता फिरता है या सार्वजनिक स्थानों पर प्रकट होता है। कई भिखारी दाता की करुणा को जगाने के लिए अपने शरीर में फोड़े, घाव, शारीरिक रोग या विकृति भी दिखाते हैं। भिखारी वह व्यक्ति होता है जो भिक्षा माँगता है या ऐसा काम करता है जिससे उसे दूसरों से सहानुभूति मिले और बदले में कुछ मिले।भिक्षावृत्ति जीवन यापन का एक ऐसा ढंग और व्यवसाय है जिसमे व्यक्ति काम करने योग्य होते हुए भी किसी प्रकार का कार्य नही करता बल्कि बिना किसी परिश्रम के भीख माँगकर अपना और अपने परिवार का जीवन यापन करता है।

- बाम्बे भिक्षावृत्ति कानून-1945 के अनुसार," एक व्यक्ति जिसके जीवन-यापन का कोई साधन नही है और इधर-उधर घूमता रहता है या सार्वजनिक स्थानों पर पाया जाता है अथवा भीख मांगने के लिए अपना प्रदर्शन स्वीकार करता है।"

- **मैसूर भिक्षावृत्ति अधिनियम-1944 के अनुसार,**" भिक्षावृत्ति अर्थात् भीख मांगने के लिए दर-दर घूमना, घावों, शारीरिक पीड़ाओं अथवा दोषों का प्रदर्शन करना, अथवा भिक्षा प्राप्ति के लिए दया उत्पादन करने के लिये उनके झूठे बहाने बनाना सम्मिलित है।"

भिक्षुक: भिक्षुक वह व्यक्ति है जो भिक्षा मांगता है| यह ऐसे कार्यों को करता है जिससे उसे दूसरों की सहानुभूति और उसके बदले में कुछ मिल सके| भिक्षावृत्ति की परिभाषा के अंतर्गत स्वयं भीख मांगना, दूसरों से भीख मंगवाना, बच्चों को बटोर कर उन के माध्यम से भीख मांगना, सीधे-साधे ढंग से अथवा घुमा फिरा कर चालबाजी एवं बहानेबाजी से भीख मांगना तथा भीख को जीविका का साधन बना लेना सम्मिलित है| इस प्रकार भिक्षावृत्ति में निम्नलिखित तीन बातों का समावेश होता है-

- दर-दर घूम कर अथवा किसी सार्वजनिक स्थान पर बैठकर लेट कर या खड़े होकर भीख मांगना
- रोकर, गिड़गिड़ा कर अथवा अपने अंगों की विकृति का प्रदर्शन कर दाताओं की करुणा जागृत कर उन से आर्थिक सहायता प्राप्त करना तथा,
- जीविका के उपार्जन का अन्य कोई साधन न होना|

11.4 भिक्षावृत्ति के प्रकार

भिक्षुक अनेक प्रकार के होते हैं| सामान्य रूप से इन्हें निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है-

- **बाल भिक्षुक**:अनेक बड़े एवं पेशेवर भिक्षुक बच्चों को इस पेशे में धकेल देते हैं तथा उनको मिलने वाली आय का बहुत बड़ा भाग स्वयं ले लेते हैं| अनाथ या गरीब बच्चों को पाल कर उनसे भी मंगवा कर अनेक भीखारी अपनेजीविका चलाते हैं| बाल शिक्षकों की दशा अत्यंत सोचनीय है क्योंकि इनका अधिक शोषण किया जाता है| कई बार मंदबुद्धि एवं शारीरिक व मानसिक रूप से हीन बच्चों को शारीरिक यातनाएं देकर भीख मांगना सिखाया जाता है| अनेक सामाजिक एवं गैर कानूनी कार्य करने लगते हैं|
- **शारीरिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक**: भिक्षकों को इस श्रेणी में उन्हें सम्मिलित किया जाता है जो अंधे, लूले, लंगड़े, गूंगे एवं बहरे होते हैं| शारीरिक दोष होने के कारण ऐसे व्यक्ति को अन्य कार्य आसानी से नहीं कर सकते इसलिए सरलता से भिक्षावृत्ति की ओर आकर्षित हो जाते हैं|

- ❖ **मानसिक रूपसे दोषयुक्त भिक्षुक**: इस श्रेणी के भिक्षुक में मानसिक रूप से अक्षम मंदबुद्धि लोगों को सम्मिलित किया जाता है| जब मानसिक रूप से दोषी उक्त व्यक्ति को जीविकोउपार्जन का कोई साधन दिखाई नहीं देता है तो वह दीक्षा विधि का सहारा लेता है|
- ❖ **रोगग्रस्त भिक्षुक**:रोगग्रस्त भिक्षकोंकी स्थिति अत्यंत दयनीय होती है क्योंकि वह यौन रोग, मिर्गी, तपेदिक तथा चर्म रोग जैसे गंभीर रोग से पीड़ित होते हैं| यह रोग के साथ ही इन रोगों के प्रसार का कारण भी बन जाते हैं|
- ❖ **स्वस्थ भिक्षुक**: जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है स्वस्थ एवं काम करने की क्षमता रखते हुए भी इस पेशे को लाभप्र मानते हुए इसमें लग जाते हैं| आलसी होना, परंपरागत रूप से इस पेशे को अपनाना, अशिक्षित होने के कारण कोई काम में मिल पाना ही ऐसे कारण हैं जो स्वस्थ व्यक्ति को भी भिक्षावृत्ति के लिए विवश कर देते हैं|
- ❖ **धार्मिक शिक्षक:** धार्मिक शिक्षक श्रेणी के शिक्षकों में उन्हें सम्मानित किया जाता है जो धर्म के नाम पर भिक्षा मांगते हैं| वैरागी, साईं, योगी फकीर इत्यादि इस श्रेणी के उदाहरण हैं| बहुदा धार्मिक भिक्षुक बनावटी भी हो सकते हैं जो साधु का भेष बनाकर भिक्षा प्राप्त करने का प्रयास करते हैं| उपर्युक्त शिक्षकों के अतिरिक्त अनेक खानाबदोश के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूम कर भीख मांगने,स्थाई,अस्थाई रूप से बेकार परंतु काम करने योग्य भिक्षुक आदि को भी भिक्षा मांगते हुए देखा जा सकता है|

11.5 भिक्षा मांगने की विधियां:

भिक्षा मांगने के लिए अनेक प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार है-

- रो-रोकर
- अपने कष्ट संकट या दुर्भाग्य की कथा सुना कर
- विकृत अंग दिखाकर
- तितिक्षा दिखाकर जैसे-कांटें के बीच लेट कर या एक के बल खड़ा होकर
- अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर
- आशीर्वाद देकर जैसे- तेरा बेटा जी तेरा सुहाग अमर रहे आदि
- चमत्कार दिखाकर जैसे जटाओं में से कुछ निकाल कर अथवा खाली हाथ दिखा कर उसमें कुछ निकाल कर चमत्कृत करना
- भूतकाल की भविष्यवाणी करना

- गिड़गिड़ा कर पकड़ लेना
- धर्म के नाम पर (जैसे कुआं मंदिर धर्मशाला गौशाला का निर्माण)
- कथा कीर्तन रामायण का पाठ
- दैवी प्रकोप से रक्षा आदि के नाम पर
- डांट कर धमकी देकर अथवा शराब देकर डराना तथा
- नाच कूद कर अथवा कलाबाजी दिखाकर

11.6 भिक्षावृत्ति के कारण

शिक्षा के प्रमुख कारण निम्न प्रकार हैं-

11.6.1 आर्थिक कारण: भिक्षावृत्ति का प्रमुख कारण आर्थिक है| दरिद्रता एवं निर्धनता को अनेक बुराइयों की जड़ माना जाता है|भिक्षा प्रीति इसमें अपवाद नहीं है| निर्धनता के अतिरिक्त रोजगार ना मिलना तथा इस व्यवसाय द्वारा आसानी से होने वाला लाभ भी ऐसे आर्थिक कारण हैं जो भिक्षावृत्ति को पुरस्कार देते हैं|

11.6.2 धार्मिक कारण: धार्मिक आर्थिक क्षति को बढ़ावा देते हैं साधु या फकीर बन कर धर्म के नाम पर पैसा ऐंठने लगते हैं|चूंकि धार्मिक विश्वासों के अनुसार भिक्षा देना पुण्य का काम है इसलिए लोग सरलता से भिक्षा दे देते हैं| घर-घर जाकर अथवा मंदिरों मस्जिदों गुरुद्वारों तथा धर्मशाला के पास बैठकर भिक्षुकों को देखा जा सकता है|

11.6.3 जैवकीय कारण: अस्वस्थ, बीमार या शारीरिक रूप से अपंग मानसिक रूप से बीमार, विकृत मस्तिष्क वाले, पागलपन ऐसे कारण हैं जो भिक्षावृत्ति के साथ जुड़े हुए हैं| इन व्यक्तियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति ठीक न होने के कारण रोजगार मिलना संभव नहीं हो पाता इसलिए ये भिक्षावृत्ति द्वारा जीविकोपार्जन करने लगते हैं|

11.6.4 सामाजिक कारण: अनेक सामाजिक कारण भी भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं| इन कारणों में पारिवारिक विघटन, माता-पिता के नियंत्रण का अभाव आदि प्रमुख हैं|

11.6.5 अन्य कारण: भिक्षावृत्ति के अन्य कारणों में आलस्य को प्रमुख माना जाता है| दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क द्वारा किए गए अध्ययन से पता चलता है कि भारत में भिखारियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है|अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित कारण स्पष्ट होते हैं-

- शारीरिक असमर्थता
- पालन पोषण करने वाले की मृत्यु हो जाना

- पालन पोषण करने वाले द्वारा त्याग दिया जाना
- धार्मिक व्यवस्था
- दूसरों से प्रेरणा
- माता पिता की मृत्यु
- पारिवारिक परंपरा के कारण
- प्राकृतिक प्रकोप तथा पर्याप्त कारण|

11.7 भिक्षावृत्ति रोकथाम हेतु उपाय (Method to control beggary):

भिक्षावृत्ति को वैयक्तिक विघटन का द्योतक माना जाता है| यह एक ऐसी समस्या है जिसके उन्मूलन हेतु अनेक कदम उठाए गए हैं|इसके बावजूद भिक्षावृत्ति में निरंतर वृद्धि हो रही है| अनेक राज्यों ने भिक्षावृत्ति उन्मूलन हेतु अधिनियम पारित किए हैं परंतु, वह पर्याप्त नहीं है|भिक्षकों के पुनर्वास की कोई व्यवस्था ना होने के कारण कानून प्रभावहीन बन गए हैं| इस समस्या के समाधान हेतु सभी राज्यों में एक समान अधिनियम बनाए जाने चाहिए तथा भिखारियों के पुनर्वास की योजनाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए| इस कार्य में गैर सरकारी संगठनों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, इसके लिए अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन प्रयासों की आवश्यकता है|जो आज भिक्षुक हैं,उनमें ध्यान देने की आवश्यकता है| उनका पुनर्वास प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए इसके लिए उन परिस्थितियों का निवारण करना पड़ेगा जो भिक्षावृत्ति को बढ़ावा देती हैं|ऐच्छिक भिक्षावृत्ति और मजबूरीवश अपनाई गई भिक्षावृत्ति में अंतर किया जाना आवश्यक है। साथ ही इन दोनों से निपटने के लिये अलग-अलग रणनीति बनाए जाने की जरूरत है। इसके लिये वास्तविक स्थिति का पता व्यापक सर्वेक्षण के जरिये लगाया जा सकता है।इस सन्दर्भ में 2016 में केंद्र सरकार ने पहला प्रयास The Persons in Destitution [Protection, Care, Rehabilitation] Model Bill, 2016 लाकर किया था। इसी तरह भारत सरकार ने निर्धनता और

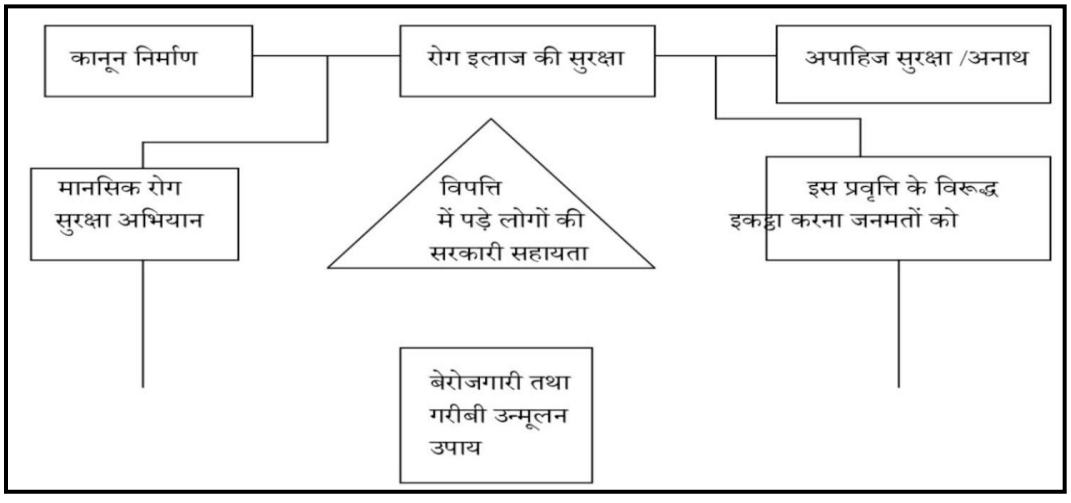

भिक्षावृत्ति की समस्या को समझा है और सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने 2025-26 तक के वर्षों के लिए मुस्कान परियोजना स्माइल (सपोर्ट फॉर मार्जिनलाइज्ड इंडिविजुअल फॉर लाइवलीहुड एंड एंटरप्राइज) नामक एक व्यापक योजना तैयार की है जिसमें भिक्षावृत्ति में लगे हुए लोगों के लिए व्यापक पुनर्वास की एक उप-योजना शामिल है जो पहचान, पुनर्वास, चिकित्सा सुविधाओं का प्रावधान, परामर्श और शिक्षा, सम्मानित नौकरी तथा स्वरोजगार/ उद्यमिता के लिए कौशल विकास को कवर करती है।सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय निरंतर चले आ रहे इस सामाजिक मुद्दे का समाधान ठोस प्रयासों के माध्यम से करने के लिए स्थानीय शहरी निकायों, नागरिक समाज संगठनों/ गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता है। इसके अतिरिक्त निम्न उपायों द्वारा भी भिक्षावृत्ति को रोका जा सकता है|

11.8 वेश्यावृत्ति (Prostitution)

स्त्री द्वारा पैसे के लिए शरीर बेचना अथवा अपने सतीत्व का व्यवसाय करना वेश्यावृत्ति कहलाता है। वेश्या के लिए गणिका, पुश्चली, अभिसारिका तथा भोग्या आदि अपमानजनक सम्बोधनों का भी प्रयोग किया जाता है। वेश्यावृत्ति एक ऐसा सामाजिक कलंक जोकि आदिकाल से ही किसी ने किसी रूप से हमारे तथा अन्य समाजों में चला आ रहा है। अतः इसे संसार का सबसे पुराना व्यापक व्यापार माना जाता है। वेश्या शब्द का प्रयोग मुख्यतः उन स्त्रियों के लिए किया जाता है जो पैसे के लिए अपना शरीर बेचती हैं। वेश्यावृत्ति की समस्या भी भारत में एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। एक अनुमान के अनुसार भारत में 15 मिलियन वेश्याएँ हैं जिनमे से अधिकांश संक्रामक रोगों तक की शिकार हो चुकी हैं। केवल मुम्बई में ही इनकी संख्या एक लाख है। पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा तथा कर्नाटक में इनकी संख्या लाखों में है। असम में लगभग 75 हजार, मणिपुर और नागालैंड में 50-50 हजार और मिजोरम तथा अरुणाचल प्रदेश में 25-25 हजार वेश्याएँ हैं। वेश्याओं में 30 प्रतिशत 20 वर्ष से भी कम आयु की हैं तथा 40 प्रतिशत 20 से 30 वर्ष की आयु की हैं। 15 प्रतिशत वेश्याएँ तो 12 वर्ष से कम आयु में यह धन्धा करने हेतु विवश कर दी जाती है। अनेक वेश्याओं को इस धन्धे में लाने वाले उनके नातेदार होते हैं।

11.9 वेश्यावृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning & Definitions of Prostitution)

पैसे के लिए स्त्री द्वारा यौवन व शरीर को बेचना वेश्यावृत्ति कहा जाता है। अतः स्त्री द्वारा पैसे के लिए सतीत्व का व्यवसाय ही वेश्यावृत्ति कहलाता है तथा इसमें संवेगात्मकता का प्रायः अभाव पाया जाता है।

यह एक सामाजिक बुराई है जिसमें साधारणतः असहाय या धनलोलुप स्त्रियाँ धन या कोई अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पर पुरुषों के साथ सम्बन्ध स्थापित करती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वेश्यावृत्ति लेन-देन का मामला है जिसमें वेश्या या किसी दूसरी पार्टी द्वारा धन या आर्थिक महत्त्व की किसी चीज के बदले सेक्स सेवा प्रदान की जाती है। यह मुख्य रूप से सामाजिक घटना है जो आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक, व्यावहारिक और कानूनी तत्त्वों से जुड़ी हुई है। यह सक्रिय और अनुकूल होती है और इसमें कम से कम दो व्यक्तियों की पारस्परिक और आन्तरिक भागीदारी होती है—प्रथम, वेश्या या सेक्स कामगार, जो सेवा देती है, तथा द्वितीय, ग्राहक जो सेक्स सेवाएँ खरीदता है।

- एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेज (Encyclopedia of the Social Sciences) में वेश्यावृति की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है, "वेश्यावृत्ति आदतन या कभी बिना किसी भेदभाव के हर व्यक्ति के साथ धन के लिए किया गया लैंगिक सहवास है।"
- इलियट तथा मैरिल (Elliott and Merrill) के अनुसार, "वेश्यावृत्ति को बहुधा परिभाषित किया गया है, परन्तु सभी परिभाषाओं में यह सहमति है कि यह व्यवहार अवैध यौन सम्बन्ध है जो पैसे के लिए अनेक व्यक्तियों से किया जाता है और जिसमें प्रेम उद्वेगों का सर्वथा अभाव रहता है।"
- स्कॉट (Scott) ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "जो भी व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) किसी भी प्रकार के लाभ (आर्थिक अथवा अन्य) के लिए अथवा किसी प्रकार के निजी सन्तोष के लिए, पूर्ण अथवा अर्द्ध समय के व्यवसाय के रूप में, अनेक व्यक्तियों के साथ, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, सामान्य अथवा असामान्य यौन सम्बन्ध स्थापित करता है, उसे वेश्या कहते हैं।"
- क्लीनर्ड के अनुसार," वेश्यावृत्ति एक भेद रहित धन की प्राप्ति के लिए यौन संबंध की स्थापना होती है, जिसमें उद्वेगात्मक उदासीनता होती है।"
- इलियट और मेरिल के अनुसार," वेश्यावृत्ति एक प्रकार का अवैध यौन संबंध है जो अनेक व्यक्तियों के साथ धन प्राप्ति हेतु स्थापित किया जाता है, जिसमें प्रेम जैसे उद्वेगों का अभाव होता

है। वेश्यावृत्ति और दो प्रेमियों के मध्य अवैध यौन संबंधों मे अंतर होता है। वेश्यावृत्ति में प्रेम और स्नेह नही सर्वथा अभाव होता है।"

- फ्लैक्सनर के अनुसार," वेश्यावृत्ति में तीन मुख्य बातें होती है—
  - विनिमय अर्थात् धन की प्राप्ति,
  - यौन आवश्यकता की सन्तुष्टि, और
  - भावात्मक तटस्थता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेश्यावृत्ति धन के लाभ के लिए किया गया यौन सम्बन्ध है जिसमें उद्वेगों का अभाव रहता है। इसमें परस्पर प्रेम या भावात्मक लगाव की कोई गुंजाइश नहीं होती, बल्कि पैसा चुकाने वालों को यौन तृप्ति प्रदान की जाती है, और कोई दायित्व या लगाव इसके साथ जुड़ा हुआ नहीं होता है।

भारत में सन् 1956 में पारित 'स्त्री तथा कन्याओं के अनैतिक व्यापार निरोध अधिनियम में वेश्या उस स्त्री को माना गया है जो धन अथवा किसी अन्य वस्तु के विनिमय में अवैध यौन सम्बन्धों के लिए अपना शरीर बेचती है।

11.10 वेश्यावृत्ति के प्रमुख कारण (Major Causes of Prostitution)

वेश्यावृत्ति के कारणों के बारे में सामाजिक विद्वानों में मतभेद पाया जाता है। परन्तु वह समस्या सभी देशों में विद्यमान है और आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी माने जाते हैं। कुछ स्त्रियाँ खुद भी वेश्यावृत्ति में आ जाती हैं, जबकि कुछ इसमें जबरदस्ती धकेल दी जाती हैं। अधिकतर वेश्याएँ विभिन्न कारणों से इस धन्धे में आती है। वेश्यावृत्ति के मुख्य कारण अलिखित है-

1. **आर्थिक कारण-** वेश्यावृत्ति का सबसे प्रमुख कारण गरीबी है। निर्धनता के कारण जब स्त्री अपना तथा अपने पर आश्रित व्यक्तियों का निर्वाह करने में असमर्थ हो जाती है तो वह इसे एक व्यवसाय के रूप में अपना लेती है। कई बार भोली भाली लड़कियों को नगरों तथा गांवों से नौकरी के बहाने लाकर वेश्याएँ बना दिया जाता है। निर्धनता, स्त्री की आर्थिक पराधीनता, नौकरी की दयनीय स्थितियाँ, ऊँचे जीवनमान का मोह, विलासी वातावरण व औद्योगीकरण कुछ ऐसे आर्थिक कारण हैं जो वेश्यावृत्ति के लिए उत्तरदायी बताए गए हैं।

2. **पारिवारिक कारण-**अधिकतर लड़कियाँ पारिवारिक विघटन के कारण वेश्याएँ बन जाती हैं। वेश्याओं के अध्ययन से पता चलता है कि अधिकांशतः वेश्याएँ वे लड़कियाँ होती हैं जो अनाथ होती है अथवा जिनका पालन-पोषण माता-पिता न करके किसी अन्य सम्बन्धी ने किया है, जिनके माता- पिता सामाजिक कुरीतियों (जैसे शराब पीना या जुआ खेलना इत्यादि) के शिकार हैं, जिनका जीवन तनावपूर्ण रहा है तथा जिनका समाजीकरण ठीक तरह से नहीं हो पाया है। पारिवारिक नियन्त्रण की कमी, माता-पिता अथवा संरक्षक का दुर्व्यवहार तथा पति का द्वेषपूर्ण
3. **मनोवैज्ञानिक कारण-**अधिकतर वेश्याएँ अज्ञानता व मनोवैज्ञानिक कारण से इस व्यवसाय को अपनाती हैं। ओन फेहर ने अपने अध्ययन में एक तिहाई वेश्याओं को मानसिक रूप में दोषी पाया। परिवार में कम प्यार मिलने के कारण कई लड़कियों में चिड़चिड़ापन आ जाता है तथा उनमें आत्मविश्वास की कमी रह जाती है। जिसके कारण उनका व्यक्तित्व मानसिक रोगों के रूप में विकसित होता है तथा वे इस तरह के कार्यों को अपनाती हैं। मन्दबुद्धि, मनोविकृति तथा प्रतिशोध की भावना वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देने वाले मनोवैज्ञानिक कारण हैं।
4. **अपराधी संस्कृति-** कई स्त्रियाँ अभद्र पड़ोस होने के कारण अथवा ऐसी संस्कृति में पलने के कारण, जहाँ इस तरह के अनैतिक व्यवसाय करने की शिक्षा दी जाती है, वेश्याएं बन जाती है। ऐसी संस्कृति में, जहाँ चौबीसों घण्टे शराब और जुआ, ताड़ी और मादक द्रव्य, अनैतिकता और वेश्यावृत्ति चलती हो, वहाँ सच्चरित्र बने रहना कठिन है। लड़कियों विवाह से पूर्व अवैध शारीरिक सम्बन्धों को स्थापित करती है।
5. **जैविक कारण-**अनेक जैविक कारण, जैसे कि माता-पिता अथवा संरक्षक की उच्छृंखल वृत्ति, असामान्य कामुकता तथा पति की नपुंसकता आदि भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, व्यभिचारी व अनैतिक आधार वाले माता-पिता व संरक्षक अपनी सन्तान को स्वयं पतन की ओर अग्रसर करते हैं।
6. **धार्मिक कारण-**भारत जैसे देश में कुछ धार्मिक कारण भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, देवताओं को अर्पित कन्याएँ (देवदासियाँ), साधु-सन्तों के वेश में घूमने वाले अनेक

धूर्तों द्वारा भोली-भाली स्त्रियों को बहकाकर उनका सतीत्व नाश करना अथवा धार्मिक रूढ़ियाँ इस वृत्ति को प्रोत्साहन देती हैं।

7. **सामाजिक कारण-** अनेक सामाजिक कारण, जैसे सामाजिक कुरीतियां विधवाओं की दुर्दशा, दोहरा मापदण्ड तथा पुरुष की प्रभुता इत्यादि भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, बालविवाह, बहुविवाह, वृद्धविवाह, बेमेल विवाह आदि कुरीतियाँ, परिवार में विधवाओं की दुर्दशा आदि स्त्री को अपमानजनक, तिरस्कारपूर्ण व आर्थिक तंगी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कुछ स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति को ओर अग्रसर हो जाती हैं।
8. **अन्य कारण-** वेश्यावृत्ति के अनेक अन्य कारण हैं जैसे कि कामुक साहित्य, रात्रि को काफी लम्बे समय से माता-पिता या पति की अनुपस्थिति, अज्ञानता, अवैध रूप से गर्भवती हो जाने के कारण, उत्तेजना भरे दृश्य तथा चित्र इत्यादि। इनके कारण भी कई लड़कियाँ गलत रास्ते पर चल पड़ती हैं तथा पुरुषों के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। ये सम्बन्ध बाद में उन्हें वेश्यालयों में ला खड़ा करते हैं।

11.11 वेश्याओं के प्रकार (Types of Prostitutes)

वेश्यावृत्ति का एक रूप नहीं है अपितु यह अनेक रूपों में फैली हुई है। वेश्याओं के प्रमुख प्रकार निम्नांकित है|

- **परम्परागत वेश्याएँ:** परम्परागत वेश्याओं मे उन वेश्याओं को सम्मानित किया जाता है जिनका मुख्य व्यवसाय ही यही है तथा यह व्यवसाय पीढ़ि-दर-पीढ़ि चला आ रहा है। दादी वेश्या थी, माँ वेश्या है और पुत्री भी वेश्या है क्योंकि माता के कदमों के पीछे-पीछे ही पुत्रियां चलती है।
- **आधुनिक वेश्याएँ:** वेश्याओं का दूसरा प्रकार नयी बनी वेश्याओं का है। ये वे वेश्याएँ है जिन्होंने इस व्यवस्था को आर्थिक या सामाजिक कारण से अपनाया है। घरों से भगाई गयी लड़कियाँ, कुँआरी माताएँ जिन्हें समाज ने बहिष्कृत कर दिया है और गरीब परिवार की स्त्रियां और विधवाएँ जिनके पास कोई आय के साधन न होने के कारण उन मजबूरी मे यह व्यवसाय करना पड़ा, इसी

श्रेणी के अंतर्गत आती है। आर्थिक कष्ट के कारण अनेक स्त्रियां परिवार मे रहते हुए भी यह व्यवसाय करती है और यदि गहराई मे जायें तो ज्ञात होता है कि ऐसी वेश्याओं की संख्या भी अधिक है।

- **विदेशी वेश्याए:** ये विशिष्ट प्रकार की विदेशी वेश्याएँ है जो समुद्र तट के औद्योगिक क्षेत्रों मे और फौजी छावनियों के निकट पायी जाती है। ये बड़े गर्व के साथ अपने आपको 'उच्च श्रेणी' की कहती है और अपने संबंध उच्च श्रेणी के लोगों और फौजी अफसरों के साथ जोड़ना पसंद करती है।

- **जनजातीय वेश्याएँ** : इनको बेड़नायाँ कहते है। कंजरों के समान ही यह एक जनजाति है। इसका व्यवसाय भी वेश्यावृत्ति है। इन वेश्याओं का सम्पर्क ग्रामीण जन-जीवन से भी बहुत रहता है क्योंकि ये लोग अपना सामान घोड़ो पर लादे एक स्थान से दूसरे स्थान पर फिरते रहते है और शहर या गाँव से कुछ अपने तम्बू खड़े कर देते है। ये वेश्याएँ निम्न कोटि की समझी जाती है क्योंकि शहरी सभ्यता से थोड़ा अलग रहने के कारण उनमें थोड़ी अशिष्तता भी होती है। यद्यपि इनमें से अधिकतर वेश्याएँ अन्य परिवार के साथ ही शहरों में या उनके आसपास बस गयी है परन्तु फिर भी ये लोग उसी स्थिति मे जीवन व्यतीत करने से नही हिचकिचाते। राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश और तराई के कुछ क्षेत्रों में इनकी बहुत बड़ी संख्या पायी जाती है।

- **सभ्य पारिवारिक वेश्याएँ:** पारिवारिक वेश्याएँ वे होती है जो परिवार मे रहते हुए भी इस वृत्ति को आर्थिक कारण से अपनाये हुए है। यह वह श्रेणी है जिसे कि अपने शरीर के आयाम का सबसे कम मूल्य लेती है। खुले आम शरीर विक्रय की अपेक्षा वे चोरी छिपे इस व्यापार को करती है, क्योंकि वे परिवार के सम्मान का भी ध्यान रखती है और इसी कारण दलालों द्वारा संबंध स्थापित होने के कारण आय का अधिक अंश दलालों की जेब मे चला जाता है। ये उच्च और मध्यम श्रेणी के परिवारों की स्त्रियां होती है जो अपने बच्चों के लिये अथवा यौन क्षुधा की पूर्ति के लिये इस घृणित कार्य को करने में लज्जा का अनुभव नही करती।

- **प्रच्छन्न वेश्याएँ**: इस श्रेणी की वेश्याओं, जैसा कि श्रेणी के नाम से ही स्पष्ट है, को पहचान पाना सम्भव नहीं होता। ये ऊपर से तो पारिवारिक जीवन व्यतीत करती हैं परन्तु इनकी आजीविका का मुख्य साधन वेश्यावृत्ति का धन्धा होता है। इनके दलाल तांगे वाले व रिक्शा टैक्सी वाले होते हैं जो ग्राहकों को लाने ले जाने का कार्य करते हैं। कॉलगर्ल्स भी इसी श्रेणी की वेश्यावृत्ति के लिए बने निर्धारित स्थल (सामान्यतः होटल वा निजी मकान) पर निर्धारित समय पर पहुँच कर वेश्यावृत्ति करती हैं।
- **कैरियर वेश्याएँ:** ये वेश्याएँ केवल कुछ अत्यन्त धनवान एवं सम्मानित लोगों के साथ ही वेश्यावृत्ति करती है और इसलिए इनकी स्थिति अन्य वेश्याओं से ऊँची होती है।
- **व्यावसायिक क्षेत्र की वेश्याएँ:** इसमें होटलों की वेश्याएँ अथवा अन्य व्यवसायिक केन्द्रों (यथा कल्प, नृत्यशाला, मालिश भवन, थियेटर, मदिरालय आदि) में धन्धा करने वाली वेश्याएं सम्मिलित हैं। इस श्रेणी की वेश्याएँ सामान्यतः परिस्थितिवश वेश्याएँ बन जाती हैं।

एस० डी० पुनेकर एवं कमला राव के अनुसार वेश्याओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इन श्रेणियों को निम्नांकित प्रकार से दर्शाया गया है-

- साधारण वेश्याएँ (सार्वजनिक वेश्यालयों, कोठों तथा वेश्यावृत्ति के जाने माने स्थानों में अपना पेशा करने वाली निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर की वेश्याएँ)
- निजी वेश्याएँ अथवा रखैल- (किसी विशेष व्यक्ति की रखैल तथा नाचने गाने वाली स्त्रियाँ जिन्हें साधारण वेश्या नहीं माना जा सकता)
- गुप्त वेश्याएँ (कॉलगर्ल्स, कैबरे डान्सर्स तथा होटलों में गुप्त रूप से वेश्यावृत्ति करने वाली उच्च तथा मध्यम वर्ग की शिक्षित स्त्रियाँ)

11.12 वेश्यावृत्ति के प्रमुख परिणाम (Consequence of Prostitution)

वेश्यावृत्ति के अनेक दुष्परिणाम होते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार है-

1. **नारी जाति के लिए कलंक-**वेश्यावृत्ति नारी जाति का अपमान है। एक ओर नारी को देवी माना जाता है। और उचित सम्मान व आदर किया जाता है, तो दूसरी ओर वह पैसे के लिए अपने सतीत्व का व्यवसाय करके नारी जाति को कलंकित कर देती है।
2. **शारीरिक प्रभाव-** वेश्यावृत्ति द्वारा वेश्याएँ एवं वेश्यागामी लोग अनेक प्रकार के गुप्त रोगों के शिकार हो जाते हैं और लज्जा के कारण इनका इलाज भी नहीं करा पाते। इससे अनेक रोग फैलते हैं।
3. **वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन**- वेश्यावृत्ति एक अवैध धन्धा है जो वैयक्तिक विघटन का प्रमुख कारण है क्योंकि अगर यह गुप्त न रहकर इसका अन्य लोगों को पता चल जाता है तो यह मानसिक असन्तुलन पैदा करके वैयक्तिक विघटन ला सकता है। इससे परिवार की सुख शान्ति भी समाप्त हो जाती है। अतः यह वैयक्तिक विघटन के साथ-साथ पारिवारिक एवं सामाजिक विघटन को भी प्रोत्साहन देता है।
4. **आर्थिक प्रभाव**- वेश्यावृत्ति के चक्कर में फंसे अनेक धनी लोग गरीब और दिवालिये हो जाते है, क्योंकि इससे पैसे की पूरी बर्बादी होती है। इसके परिणामस्वरूप परिवार का वातावरण दूषित हो जाता है क्योंकि पत्नी और बच्चों की देख-रेख ठीक प्रकार से नहीं हो पाती।
5. **नैतिक प्रभाव**- वेश्यावृत्ति के कारण लोगों का नैतिक स्तर गिर जाता है क्योंकि इसके लिए पैसे चाहिए और वेश्यागामी व्यक्ति किसी भी अनैतिक तरीके से धन कमाना चाहता है। वेश्याओं के लिए भी अनैतिकता कोई चीज नहीं रह जाती। इन सबसे राष्ट्रीय चरित्र एवं मूल्यों का हनन होता है।
6. **अपराध में वृद्धि-**वेश्यावृत्ति स्वयं में अपराध तो है ही, इससे अनेक अन्य अपराधों को भी प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरणार्थ, चोरी-डकैती, अपहरण-हत्या, अनाचार व्यभिचार तथा मद्यपान-मादक द्रव्य व्यसन जैसे अपराधों को वेश्यावृत्ति के साथ जोड़ा है।

11.13 भारत में वेश्यावृत्ति पर नियन्त्रण के प्रयास(Efforts to Control Prostitution in India)

सरकार ने छह महानगरों में बाल वेश्यावृत्ति सहायता हेतु एक केन्द्रीय सलाहकार कमेटी (Central Advisory Committee on Child Prostitution Aid) गठित की थी जिसने अपनी रिपोर्ट सन् 1994 में 'A Status and Action Report' के नाम से प्रस्तुत की। ये छह महानगर थे— बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास, बंगलौर तथा हैदराबाद। इस रिपोर्ट के अनुसार इन छह महानगरों में 70,000 से 1. 100,000 वेश्याएँ हैं जिनमें से 15 प्रतिशत 15 वर्ष की आयु से कम हैं तथा 24.5 प्रतिशत 16 से 18 वर्ष के बीच की आयु की है। कमेटी द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि 44 प्रतिशत वेश्याएँ संसार के इस सबसे पुराने व्यवसाय में आर्थिक कष्ट (Economic distress) के कारण प्रवेश करती है। 24.5 प्रतिशत वेश्याएँ पति द्वारा उन्हें छोड़ देने के कारण तथा 11.9 प्रतिशत ने किसी के द्वारा धोखा दिए जाने के कारण इस व्यवसाय में प्रवेश किया है। केवल 2.25 प्रतिशत वेश्याएँ ऐसी पाई गई जिन्हें अपहरण करके इस व्यवसाय में शामिल होने के लिए बाध्य किया गया था। अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा विचार-विमर्श के दौरान यह तथ्य भी सामने आया कि युवा लड़कियाँ उन लड़कियों की देखा देखी भी इस व्यवसाय को अपना लेती हैं जो उनकी परिचित थीं तथा जिन्होंने इस व्यवसाय द्वारा अच्छा खासा पैसा कमा लिया था तथा घर पर भी पैसे भेज रही थीं। उपर्युक्त सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 86 प्रतिशत वेश्याएं आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र तथा उत्तर प्रदेश राज्यों से आती है। असम, बिहार, गुजरात, गोवा, मध्य प्रदेश, केरल, मेघालय, उड़ीसा, पाण्डिचेरी, राजस्थान तथा दिल्ली से इस देह व्यापार में आने वाली लड़कियों की संख्या काफी कम थी। सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि दिल्ली में देश के 70 जिलों से, बम्बई में 40 जिलों से, बंगलौर में 17 जिलों से, कलकत्ता में 11 जिलों से तथा हैदराबाद में 3 जिलों से लड़कियों आकर इस व्यवसाय में प्रवेश करती हैं। जनांकिकीय दृष्टि से 94.6 प्रतिशत वेश्याएं भारतीय थी, जबकि शेष 2.6 प्रतिशत नेपाली तथा 2.7 प्रतिशत बंगलादेश की थीं। सर्वेक्षण के अनुसार 84.36 प्रतिशत वेश्याएं हिन्दू थीं, जबकि शेष 10-96 प्रतिशत मुस्लिम थीं। कमेटी के सदस्यों में विचार-विमर्श के दौरान यह बात भी सामने आई कि दो प्रमुख स्वरूप ऐसे हैं जिनसे कोई बच्ची वेश्या बनती है—प्रथम, बच्ची को अपहरण द्वारा इस व्यवसाय हेतु बाध्य किया जाता है, तथा द्वितीय, बच्चियों को उनकी माताएँ तथा वेश्यालय चलाने वालों द्वारा इस व्यवसाय में लाया जाता है। यद्यपि कई उपायों

द्वारा इस कुरीति को समाप्त करने के प्रयास किए गए हैं परन्तु फिर भी वेश्यावृत्ति पूरी तरह से समाप्त करना अभी सम्भव नहीं हो पाया है।

अनेक राज्यों ने सरकारी सहायता से भी अधिनियम बनाकर इस व्यवसाय में लगी हुई स्त्रियों को इस गन्दगी से निकालने तथा उनके पुनर्वास के लिए कई कदम उठाए हैं। उदाहरणार्थ, मैसूर में सन् 1910 में सर्वप्रथम इस प्रथा को बन्द करने के लिए कानून बनाया गया। सन् 1929, 1930 तथा 1934 में कई राज्यों ने इस प्रथा को बन्द करने वाले कानून बनाए। बम्बई में सन् 1934 में, पंजाब में 1935 में, मैसूर में 1936 में, मद्रास में 1947 में, बिहार में 1948 में, सौराष्ट्र में 1951 में, व मध्य प्रदेश में 1953 में वेश्यावृत्ति को गैर-कानूनी घोषित किया गया। आजादी के बाद स्त्रियों तथा बच्चों के व्यापार को समाप्त करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा सन् 1956 में वेश्यावृत्ति उन्मूलन के लिए 'आल इण्डिया सप्रेशन ऑफ इम्मारल ट्रैफिक एक्ट इन वीमेन एण्ड गर्ल्स' अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम द्वारा वेश्यावृत्ति को गैर-कानूनी घोषित किया गया तथा ऐसे व्यवसाय में लगे लोगों व प्रोत्साहन देने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई।

सन् 1986 सरकार द्वारा Indecent Re-presentation of Women (Prohibition) Bill भी पारित किया गया है। साथ ही, Suppression of Immoral Traffic Act (S.I.T.A.) भी इस दिशा में एक ऐसा ही प्रयास है। परन्तु यह अधिनियम वेश्यावृत्ति को स्पष्ट शब्दों में अवैध करार नहीं देते। प्रामिला कपूर के अनुसार यह अधिनियम वेश्यावृत्ति को गैर-कानूनी व अवैध घोषित नहीं करता तथा वेश्याओं के पुनर्वास एवं सामाजिक उत्थान के उपायों की ओर कोई ध्यान नहीं देता। जिन अड्डों अथवा घरों पर यह धन्धा किया जाता है। उनके मालिकों के विरुद्ध भी कोई कठोर कदम उठाए जाने की इसमें कोई व्यवस्था नहीं है।

इन उपायों द्वारा जिस सफलता की आशा की जा रही थी वह नही मिल पाई है। भारत में वेश्यावृत्ति पर हुए अध्ययनों से हमें यह पता चलता है कि अधिकांश वेश्याएँ सामाजिक-आर्थिक कारणों से इस व्यवसाय को अपनाती हैं। इसीलिए केवल अधिनियम पारित किया जाना इस समस्या का समाधान नहीं है अपितु इसके कारणों को समाप्त किया जाना भी अनिवार्य है। जैसे-जैसे भारतीय समाज आधुनिकता की ओर आगे बढ़ता जा रहा है। वेश्याओं की संख्या में कोई विशेष कमी नहीं हो पा रही है। यद्यपि विनीरियल

(नहत) बीमारियों (यौन रोगों) के कारण, वेश्याओं की निम्न एवं अपमानजनक स्थिति के कारण, तथा नैतिक पतन को रोकने के लिए वेश्यावृत्ति को बन्द करने की माँग बढ़ती जा रही है और उनके पुनर्वास की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, फिर भी अभी समस्या का कोई व्यावहारिक हल नहीं मिल पाया है।

11.14 सारांश(Summary)

भिक्षावृत्ति पेट भरने के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाने की प्रक्रिया है। भिक्षावृत्ति उस व्यक्ति का 'वृत्ति' है, जिसके पास जीविकोपार्जन का कोई आधार नहीं है और जो भिक्षाटन करता फिरता है या सार्वजनिक स्थानों पर प्रकट होता है। कई भिखारी दाता की करुणा को जगाने के लिए अपने शरीर में फोड़े, घाव, शारीरिक रोग या विकृति भी दिखाते हैं। भिखारी वह व्यक्ति होता है जो भिक्षा माँगता है या ऐसा काम करता है जिससे उसे दूसरों से सहानुभूति मिले और बदले में कुछ मिले। बाम्बे भिक्षावृत्ति कानून-1945 के अनुसार," एक व्यक्ति जिसके जीवन-यापन का कोई साधन नही है और इधर-उधर घूमता रहता है या सार्वजनिक स्थानों पर पाया जाता है अथवा भीख मांगने के लिए अपना प्रदर्शन स्वीकार करता है।" मैसूर भिक्षावृत्ति अधिनियम-1944 के अनुसार," भिक्षावृत्ति अर्थात् भीख मांगने के लिए दर-दर घूमना, घावों, शारीरिक पीड़ाओं अथवा दोषों का प्रदर्शन करना, अथवा भिक्षा प्राप्ति के लिए दया उत्पादन करने के लिये उनके झूठे बहाने बनाना सम्मिलित है। भिक्षावृत्ति के कई प्रकार हैं- बाल भिक्षुक,शारीरिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक, मानसिक रूप से दोषयुक्त भिक्षुक, रोगग्रस्त भिक्षुक, स्वस्थ भिक्षुक, धार्मिक शिक्षक|व्यक्ति भिक्षावृति अनेक प्रकार से मांग सकता है- रो-रोकर ,अपने कष्ट संकट या दुर्भाग्य की कथा सुना कर,विकृत अंग दिखाकर ,तितिक्षा दिखाकर जैसे-काटें के बीच लेट कर या एक के बल खड़ा होकर,अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर,धर्म के नाम पर (जैसे कुआं मंदिर धर्मशाला गौशाला का निर्माण),कथा कीर्तन रामायण का पाठ,दैवी प्रकोप से रक्षा आदि के नाम पर|

भिक्षावृत्ति उन्मूलन के लिए भारत सरकार ने निर्धनता और भिक्षावृत्ति की समस्या को समझा है और सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने 2025-26 तक के वर्षों के लिए मुस्कान परियोजना स्माइल (सपोर्ट फॉर मार्जिनलाइज्ड इंडिविजुअल फॉर लाइवलीहुड एंड एंटरप्राइज) नामक एक व्यापक योजना तैयार की है जिसमें भिक्षावृत्ति में लगे हुए लोगों के लिए व्यापक पुनर्वास की एक उप-योजना शामिल है जो पहचान, पुनर्वास, चिकित्सा सुविधाओं का प्रावधान, परामर्श और शिक्षा, सम्मानित नौकरी तथा स्वरोजगार/ उद्यमिता के लिए कौशल विकास को कवर करती है।

वेश्यावृत्ति की उत्पत्ति और विकास का वर्णन करते हुए TRAFT कहा है कि जब विवाह की प्रथा कमजोर हुई वेश्यावृत्ति भी पतन की ओर उन्मुख होती गई. अतः एक प्रकार से वेश्यावृत्ति नैतिकता का आवरण है पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव तथा भारतीय नैतिक दृष्टिकोण में तेजी से ह्रास के कारण भारत

में आज वेश्यावृत्ति को एक आप पर्याय आवश्यकता तथा लोगों के समान नैतिक आचरण को रक्षा के साधन के रूप में स्वीकार कर लिया गया है. इतिहास बताता है कि भारत में वेश्यावृत्ति की प्रथा प्राचीन काल में चली आ रही है. हिंदू राजाओं के काल में किन्नरी देवदासी आदि होती थी. इस युग में नगर वधू की सत्ता वेश्याओं के लिए प्रयुक्त होती थी. मुस्लिम शासक ऐश्वर्या वान और कामुक होते थे. अतः उनके काल में भी वेश्यावृत्ति रोकने हेतु बड़े कठोर कानून बनाए गए थे वर्तमान कानून भी इस वेश्यावृत्ति को रोकने के असफल रहे हैं. यह एक गंभीर समस्या है जिसका समाधान धैर्य साहस और सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन के द्वारा किया जाना चाहिए वेश्यावृत्ति को अपनाने वाले लोगों के बीच नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा और आत्म नियंत्रण की भावना का विकास करना होगा तभी इसे रोका जा सकेगा वेश्यावृत्ति एक ऐसी आवश्यक बुराई है जिसे आदि काल से आज तक किसी भी देश के कानून या समाज सुधारक रोकने में असफल रहे हैं आजकल जैसे-जैसे मानव सभ्यता भौतिकवाद की ओर बढ़ रही है वैसे-वैसे ही लोगों में तड़क-भड़क बढ़ रही है उससे ही वेश्याओं के प्रति सम्मोहन काम लिप्त था और और अपने आप में कामवासना की इच्छा हो प्रबल होती जा रही हैं अनुभूति बढ़ रही है जिसे वेश्यावृत्ति के प्रोत्साहन मिलता है.

11.15 शब्दावली

- भिक्षावृत्ति- भिक्षावृत्ति एक ऐसे व्यक्ति की 'वृति' है जिसके जीविकोपार्जन का कोई आधार नहीं है तथा जो भीख माँगने के लिए दर-दर घूमता है या सार्वजनिक स्थलों पर दिखाई देता है।
- जीविकोपार्जन . जीवन यापन हेतु धन कमाना
- सार्वजनिक संस्थान . आम जगह जहॉ प्रत्येक व्यक्ति आ जा सकता है
- संपगु . शारीरिक रूप से पूर्ण सक्षम व्यक्ति
- पुनर्वास . फिर से जीवनयापन लायक बनाना
- वेश्यावृत्ति – वेश्यावृत्ति धन के लाभ के लिए किया गया यौन सम्बन्ध है जिसमें उद्वेगों का अभाव रहता है।

11.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. भिक्षावृत्ति भारत में एक सामाजिक तथा आर्थिक समस्या है। कथन की पुष्टि करें।
2. भिक्षावृत्ति देश के लिए अभिशाप है. इस पर अपने विचार लिखिए|
3. भारत में भिक्षावृत्ति के मुख्य कारण क्या है|

4. भिक्षावृत्ति के प्रकारों का वर्णन करिए |
5. भिक्षावृत्ति उन्मूलन हेतु अपने सुझाव दीजिये|
6. भिक्षावृत्ति क्या है? भिक्षुकों के प्रमुख प्रकार बताइए।
7. भिक्षावृत्ति किसे कहते है? इसके कारण बताते हुए इस समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।
8. वेश्यावृत्ति किसे कहते हैं? वेश्याओं के प्रमुख प्रकार बताइए।
9. वेश्यावृत्ति को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।

11.17 संदर्भ ग्रन्थ (Reference)

1. Ahuja, Ram, female offenders in India. "Meenakshi Prakashan Meerut.
2. Becker, Howards, Social problems: A Modern Approach, John Wileys sons, N. Y. 1966
3. Elliott, Mabel A. and Merrily, Francis E. Social Disorganization, Harper and Brothers. N.Y. 1950
4. Horton, pant B. and leslie, Gerald R. 'Sociology and social problems, (4th Ed.), appleton century crosts, N.Y. 1970
5. Rose, Arnold, “theory for the study of social problems." social problems, 1957.
6. Panikkar, K. M., Hindu Society at Cross Roads, Bombay: Asia Publishing House, 1967.
7. Puncker, S. D. and Kamla Rao, A Study of Prostitutes in Bombay, Bombay: Albed Publishers, Ltd., 1962.
8. Quinn, James A., Human Ecology, New York: Prentice- Hall, 1950.
9. Reckless, Walter C., the Crime Problem. New York: Appleton-Century-Crofts, 1967.
10. Sellin. T., Culture, Conflict and Crime, New York: Social Science Research Council. 1938.
11. https://socialjustice.gov.in

इकाई 12. आत्महत्या: कारण एवं रोकथाम (Causes and Prevention of Suicide)

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.2.1 आत्म हत्या का अर्थ एवं विषेषतायें

12.2.2 आत्म हत्या के कारण

12.2.3 आत्म हत्या के प्रकार

12.3 सार संक्षेप

12.4 शब्दाबली

12.5 अभ्यास प्रष्न - लघु विस्तृत

12.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.1 परिचय (Introdution)

सन् 1897 में दुर्खीम की तीसरी महत्वपूर्ण पुस्तक 'आत्महत्या' फ्रैंच भाषा में प्रकाशित हुई। अब्राहम तथा मार्गन के शब्दों में, ''यह पुस्तक सामूहिक चेतना से सम्बन्धित सामाजिक दबाव के एक ऐसे सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है जिसमें अवधारणात्मक सिद्धान्त तथा आनुभाविक शोध के बीच एक विलक्षण समन्वय किया गया है। ''साधारणतया आत्महत्या को एक साधारण सी घटना समझा जाता है जो कुछ वैयक्तिक कठिनाइयों का परिणाम होती है। दुर्खीम ने इस सामान्य धारणा का खण्डन करते हुए आत्महत्या को एक वैयक्तिक घटना न मानकर इसे एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्पष्ट किया। उन्होंने संसार के विभिन्न देशों से आत्महत्या सम्बन्धी व्यापक आँकड़ें एकत्रित करके यह बताया कि आत्महत्या की घटनाएँ भी एक तरह का सामाजिक प्रवाह है जो अधिक संवेदनशील लोगों को अपने साथ बहा ले जाता है। दूसरे शब्दों में, अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह आत्महत्या भी सामूहिक चेतना तथा सामूहिक दबाव की ही उपज होती है। अपने इन विचारों के द्वारा एक ओर दुर्खीम मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, वंशानुक्रम तथा भौगोलिक कारकों पर आधारित आत्महत्या सम्बन्धी विचारों का खण्डन करना चाहते थे तो दूसरी ओर, उनका उद्देश्य सांख्यिकीय प्रमाणों के आधार पर आत्महत्या के बारे में एक समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत करना

था। अपनी पैनी दृष्टि और विश्लेषण की क्षमता की सहायता से उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाज ही व्यक्ति के जीवन को सामाजिक और नैतिक आधार पर नियन्त्रित करने वाला सबसे प्रमुख आधार है। जब कभी भी व्यक्ति पर समाज का नियन्त्रण शिथिल पड़ने लगता है, तब आत्महत्या की घटनाएँ भी बढ़ने लगती है। इस आधार पर भी आत्महत्या जैसे तथ्य को सामाजिक जीवन तथा सामाजिक घटनाओं से पृथक् करके नहीं समझा जा सकता। इस पुस्तक में दुर्खीम के विचारों का सार यह है कि विभिन्न समाजों में आत्महत्या की दर एक सामाजिक वास्तविकता है; आत्महत्या का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना से है; जब तक समाज के अस्तित्व की दशाओं में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हो जाता, प्रत्येक समाज में आत्महत्या की घटनाएँ लगभग समान दर से घटित होती रहती है।

12.2 उद्देश्य (Objective)

प्रस्तुत इकाई में आत्म हत्या से सम्बन्धित अवधारणा, अर्थ एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें बताया गया है कि आत्महत्या क्या है? तथा इसकी विशेषतायें कौन-कौन सी है? इसी इकाई में आत्महत्या के कारणों पर भी विशेष चर्चा प्रस्तुत की गई है। जिसमें तीन प्रकार की आत्म हत्याओं जैसे- परार्थवादी आत्महत्या, अहमवादी आत्महत्या तथा आस्वाभाविक आत्महत्या का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ❖ आत्म हत्या के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
- ❖ आत्म हत्या का अर्थ एवं विशेषताओं को जान सकेगें।
- ❖ आत्म हत्या के कारणों के बारे में लिख सकेगें।
- ❖ आत्म हत्या की मनोवैज्ञानिक दशाओं, जैविकीय दशाओं तथा भौगोलिक दशाआंे पर टिप्पणी लिख सकेगें।

आत्म हत्या के प्रकारों पर गहन चिन्तन कर सकेगें।

12.2.1 आत्म हत्या का अर्थ एवं विशेषतायें

'आत्महत्या एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका अर्थ सभी लोग जानने का दावा कर सकते हैं। इस कारण साधारणतया इसे परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती। इसके विपरीत, दुर्खीम यह मानते हैं कि आत्महत्या ऐसी सामान्य अवधारणा नहीं है जैसी कि साधारणतया समझ ली जाती है। दूसरे, सामाजिक तथ्यों की तरह आत्महत्या भी एक ऐसी सामाजिक घटना है जिसमे बाह्यता और बाध्यता का गुण होता है।

इस दशा में यह आवश्यक है कि आत्महत्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को समझकर इसे भी समुचित रूप से परिभाषित किया जाये। वास्तविकता यह है कि 'सामान्य मृत्यु' तथा 'आत्महत्या' दो भिन्न दशाएँ है। इस दृष्टिकोण से यदि आत्महत्या से सम्बन्धित उन तत्वों को ज्ञात कर लिया जाये जिनका सामान्य मृत्यु में अभाव होता है तो आत्महत्या के अर्थ को भली-भाँति समझा जा सकता है। इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है, ''आत्महत्या शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसी मृत्यु के लिए किया जाता है जो मृत व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परिणाम होती है।'' इस कथन में स्पष्ट होता है कि आत्महत्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मृतक द्वारा की गयी क्रिया का ही परिणाम होती है। दुर्खीम यह मानते हैं कि जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को समाप्त करता है तो इस क्रिया के कारण उस व्यक्ति के बाहर स्थित होते हैं। इस अर्थ में आत्महत्या कुछ बाहरी दशाओं के दबाव से उत्पन्न होने वाला एक ऐसा परिणाम है जिसे समझने के बाद भी व्यक्ति उससे बच नहीं पाता। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'आत्महत्या' अपने जीवन को समाप्त करने के लिए मृतक द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न का प्रत्यक्ष परिणाम है, अप्रत्यक्ष नहीं। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति किसी ऊँचे स्थान से जमीन पर यह समझकर नीचे कूद पड़े कि जमीन उससे केवल10 फुट नीचे है लेकिन वास्तव में अधिक ऊँचाई पर होने के कारण कूदने से उसकी मृत्यु हो जाये तो यह उसकी क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होगा। इस दशा में इसे एक दुर्घटना कहा जायेगा, आत्महत्या नहीं। वास्तव में, कुछ बाहरी दशाओं के प्रभाव से आत्महत्या मृतक द्वारा किया जाने वाला एक ऐसा विचारपूर्वक कार्य है जिसके परिणाम के प्रति व्यक्ति पहले से ही चेतन होता है। इस आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या को परिभाषित करते हुए लिखा है,'आत्महत्या, शब्द का प्रयोग मृत्यु की उन सभी घटनाओं के लिए किया जाता है। जो स्वयं मृतक के किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है तथा जिसके भावी परिणाम को वह स्वयं भी जानता है।' इस कथन के द्वारा दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि आत्महत्या सदैव किसी सकारात्मक क्रिया का ही परिणाम नहीं होती बल्कि किसी नकारात्मक क्रिया के द्वारा भी आत्महत्या की जा सकती है। उदाहरण के लिए जहर खाकर या स्वयं को गोली मारकर की जाने वाली आत्महत्या एक सकारात्मक क्रिया का परिणाम है, जबकि घातक बीमारी के बाद भी दवा लेने से इन्कार करना अथवा भोजन न करके जीवन का त्याग कर देना आत्महत्या के लिए की जाने वाली नकारात्मक क्रिया है। आत्महत्या से सम्बन्धित किया जाने वाला कार्य चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, पारिभाषिक रूप से जब तक उसके घातक परिणाम के बारे में कर्ता निश्चित रूप से चेतन न हो, तब तक उसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता।

दुर्खीम के शब्दों में,''आत्महत्या केवल उसी अवस्था में विद्यमान होती है जब व्यक्ति उस घातक कार्य को करने के दौरान उसके परिणाम को निश्चित रूप से जानता हो, हालाँकि इसकी निश्चितता मात्रा कुछ कम या अधिक हो सकती है"। यदि किसी घातक क्रिया के परिणाम के बारे में व्यक्ति निश्चित रूप से नहीं

जानता तो उससे व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर भी इसे आत्महत्या नहीं कहा जायेगा। उदाहरण के लिए सर्कस में मौत की छलाँग लगाने वाला या विषैले साँपों के करतब दिखाने वाला व्यक्ति अपनी इन क्रियाओं का परिणाम केवल लोगों का मनोरंजन करना समझता है। इसके विपरीत, यदि मौत की छलाँग लगाने का साँप् के काट लेने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो इसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। आत्महत्या की अवधारणा से इसके कुछ प्रमुख तत्व अथवा विशेषताएं स्पष्ट होती है जिन्हें सरल शब्दों में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है:

- ❖ वैयक्तिक क्रिया का परिणाम- आत्महत्या का सबसे प्रमुख तत्व अथवा विशेषता यह है कि यह स्वयं आत्मघात करने वाले व्यक्ति की क्रिया का परिणाम होती है। दुर्खीम के अनुसार यह क्रिया सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। उदाहरण के लिए अपने आपको गोली मारकर या किसी ऊँचे स्थान से कूदकर जान दे देना सकारात्मक क्रिया है, जबकि खाना खाने से इन्कार करके जीवन को समाप्त कर देना नकारात्मक क्रिया है।

- ❖ परिणाम के प्रति चेतना- दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या मृतक द्वारा की जाने वाली क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम होती है। इस परिणाम के प्रति आत्मघात करने वाला व्यक्ति पूरी तरह चेतन होता है अर्थात् वह जानता है कि एक विशेष कार्य का परिणाम मृत्यु के रूप में होगा। यदि किसी खतरनाक कार्य के फलस्वरूप आकस्मिक रूप से व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो ऐसे कार्य में परिणाम के प्रति चेतना का अभाव होने के कारण उसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता।

- ❖ स्वेच्छा का समावेष- आत्महत्या एक ऐसी क्रिया है जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है। यदि किसी व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं समाप्त करने के लिए कुछ लोगों के द्वारा बाध्य किया जाये तथा व्यक्ति की मृत्यु उसी बाध्यता का परिणाम हो तो ऐसी मृत्यु को भी आत्महत्या की श्रेणी में नहीं रखा जायेगा। इसका अर्थ है कि आत्महत्या के लिए व्यक्ति में एक स्पष्ट इरादे का होना आवश्यक तत्व है। इसी के द्वारा दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि आत्महत्या तथा मृत्यु में एक स्पष्ट अन्तर है क्योंकि मृत्यु एक ऐसी दशा है जिसमें स्वेच्छा का अभाव होता है।

- ❖ उद्देष्य का समावेष - प्रत्येक आत्महत्या के पीछे मृतक का कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है, चाहे यह उद्देश्य प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष। दुर्खीम का यह मानना है कि आत्महत्या का उद्देश्य सदैव स्पष्ट नहीं होता लेकिन आत्महत्या का एक ऐसा सामाजिक आधार अवश्य होता है जो किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने की प्रेरणा देता है। यह उद्देश्य व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। एक व्यक्ति यदि आत्महत्या के द्वारा परिवार को बदनामी या आर्थिक दिवालियेपन से बचाना चाहता है तो यह व्यक्तिगत उद्देश्य है, जबकि देश की रक्षा के लिए एक सैनिक द्वारा

जान-बूझकर अपने प्राणों का बलिदान कर देना सामूहिक उद्देश्य का उदाहरण है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य के एकाएक गहरी नदी में छलाँग लगाकर या रेलगाड़ी के आगे कूदकर अपनी जान दे दे तो इसे केवल एक मनोविकार ही कहा जायेगा।

- आत्महत्या का कारण व्यक्ति से बाह्य - दुर्खीम ने इस बात पर विशेष बल दिया कि आत्महत्या का कारण व्यक्ति के अन्दर विद्यमान नहीं होता बल्कि कुछ बाहरी दशाएँ व्यक्ति को आत्महत्या करने की प्रेरणा देती है। आत्महत्या का कारण यदि व्यक्ति के अन्दर स्थिर होता तो विभिन्न अवधियों में आत्महत्या की दर में बहुत असमानता देखने को मिलती। इसके विपरीत, विभिन्न समाजों में थोड़े-बहुत अन्तर के साथ आत्महत्या की घटनाएँ एक निश्चित दर से घटित होती रहती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सामाजिक संरचना सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ ही आत्महत्या के लिए अनुकूल दशाएँ उत्पन्न करती है। जब तक इन दशाओं में अधिक परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक आत्महत्या की दर में भी कोई परिवर्तन नहीं होगा।

- एक सामाजिक तथ्य - दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आत्महत्या एक वैयक्तिक घटना नहीं बल्कि एक सामाजिक तथ्य है। दूसरे शब्दों में, आत्महत्या का कारण वैयक्तिक न होकर सामाजिक होता है। किसी वैयक्तिक घटना को व्यक्ति की जीव-रचना, मानसिक दशाओं अथवा अनुकरण आदि के आधार पर समझा जा सकता है। इसके विपरीत, सामाजिक घटना का कारण समाज की संरचना तथा समाज के नैतिक संगठन में निहित होता है। दुर्खीम ने यूरोप के विभिन्न देशों से आत्महत्या सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करके यह स्पष्ट किया कि विभिन्न समाजों की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक संरचना के अनुसार ही वहाँ आत्महत्या की दर में भिन्नता देखने को मिलती है तथा एक विशेष समाज में प्रत्येक वर्ष आत्महत्या की दर में अधिक भिन्नता नहीं पायी जाती। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक दशाएँ ही आत्महत्या की दर को प्रभावित करती है। आत्महत्या इसलिए भी एक सामाजिक तथ्य है कि इसमें वाह्यता तथा बाध्यता की विशेषताएँ देखने को मिलती है। आत्महत्या व्यक्ति से वाह्य है क्योंकि इसका कारण व्यक्ति के अन्दर स्थित नहीं होता। साथ ही, यह इस दृष्टिकोण से भी बाध्यताकारी है कि समाज का एक विशेष नैतिक संगठन अथवा सामाजिक मूल्य ही व्यक्ति को आत्महत्या की प्रेरणा देते हैं।

12.2.2 आत्म हत्या के कारण

आत्महत्या की विवेचना में दुर्खीम ने अनेक उन कारणों का उल्लेख किया जिनके आधार पर समय पर आत्महत्या की विवेचना की जाती रही थी। दुर्खीम से पहले मनोवैज्ञानिकों, जीववादियों तथा भौगोलिकवादियों ने यह स्पष्ट किया था कि व्यक्ति कुछ मानसिक, जैविकीय तथा प्राकृतिक दशाओं के

प्रभाव से आत्महत्या करते हैं। इसी आधार पर आत्महत्या के विभिन्न प्रकारों, जैसे- उन्मादपूर्ण आत्महत्या, संवेगात्मक आत्महत्या, निराशापूर्ण आत्महत्या तथा प्रेतबाधा आत्महत्या आदि का भी उल्लेख किया गया। दुर्खीम ने ऐसे सभी कारणों की निरर्थकता को स्पष्ट करते हुए आत्महत्या की सामाजिक कारणों के आधार पर व्याख्या की। इसलिए यह आवश्यक है कि आत्महत्या के मनोवैज्ञानिक, जैविकीय तथा भौगोलिक कारणों पर दुर्खीम के विचारों को समझने के साथ उन सामाजिक दशाओं का विस्तार से उल्लेख किया जाये तो दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या का वास्तविक कारण है।

1. **मनोवैज्ञानिक दषाएँ:** मनोवैज्ञानिक दशाओं में विभिन्न विद्वानों ने स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं, मानसिक बीमारियों, संवेगात्मक अस्थिरता, उन्माद तथा पातक की भावना आदि को आत्महत्या के प्रमुख कारणों के रूप में स्पष्ट किया था। दुर्खीम के अनुसार इनमें से किसी भी कारण के आधार पर आत्महत्या की विवेचना नहीं की जा सकती।

❖ स्वभाव सम्बन्धी विषेषताएँ- मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ व्यक्तियों का स्वभाव आत्महत्या के लिए अधिक अनुकूल होता है। जो लोग जीवन में बहुत अधिक आराम की कामना करते हैं, अधिक भावुक होते हैं, अधिक मनोरंजन पसन्द करते हैं तथा स्वभाव से अन्तर्मुखी होते हैं, उनके शान्त जीवन में थोड़ा भी व्यवधान पैदा होने से वे विचलित हो जाते हैं। आत्महत्या इसी दशा का परिणाम है। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में यह पाया कि व्यक्तिगत स्वभाव तथा आत्महत्या के बीच कोई सह-सम्बन्ध नहीं है। आत्महत्या करने वाले व्यक्तियों में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों तरह के स्वभाव वाले लोग होते हैं। दूसरी ओर, संवेग और भावना स्त्रियों के जीवन में अधिक होती है, जबकि आत्महत्या करने वाले लोगों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों का प्रतिशत अधिक है।

❖ मनोविकार- मनोविकार इस तरह की मानसिक बीमारी है जो विभिन्न रूपों में आत्महत्या के लिए उत्तरदायी होती है। उदाहरण के लिए, व्यर्थ की चिन्ता से घिरे रहना, प्रत्येक दशा में निराशा अनुभव करना, स्नायुदोष का होना, स्वयं कोई निर्णय न ले पाना, बहुत जल्दी दुःखी या प्रसन्न हो जाना आदि विभिन्न प्रकार के मनोविकार है। यह मनोविकार जब व्यक्ति के जीवन को बहुत असन्तुलित बना देते हैं तो वह अपने जीवन को बेकार समझकर आत्महत्या की ओर मुड़ जाता है। दुर्खीम ने यह सिद्ध कि या कि मनोविज्ञान स्वयं आत्महत्या का कारण नहीं होते बल्कि स्वयं मनोविकार भी कुछ विशेष सामाजिक दशाओं का परिणाम होते हैं। इसका अर्थ है कि मनोविकार आत्महत्या के लिए प्रेरणा तो दे सकते हैं लेकिन आत्महत्या के वास्तविक कारण सामाजिक दशाओं में ही खोजे जा सकते हैं।

- ❖ संवेगात्मक अस्थिरता- मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि आत्महत्या करने वाले लोगों में से अधिकांश लोग वे होते हैं जो स्थिर विचारों के नहीं होते, तर्क के आधार पर कोई निर्णय नहीं ले पाते तथा जिनकी सोच नकारात्मक होती है। ऐसे व्यक्ति सभी दूसरे लोगों को अपना विरोधी और आलोचक समझने लगते हैं। यही दशा उन्हें आत्महत्या करने की प्रेरणा देती है। दुर्खीम का कथन है कि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार युवावस्था में संवेगात्मक अस्थिरता व्यक्ति में सबसे कम होती है लेकिन बच्चों और वृद्धों की तुलना में युवा वर्ग के लोग अधिक आत्महत्या करते हैं। इसका तात्पर्य है कि संवेगात्मक अस्थिरता आत्महत्या का प्रमुख कारण नहीं है।

- ❖ उन्माद- उन्माद एक ऐसा मानसिक विकार है जिसमें व्यक्ति अपनी किसी भी इच्छा के तनिक भी अपूर्ण रह जाने की दशा में एकाएक असामान्य व्यवहार करने लगता है। उसकी मानसिक स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि व्यक्ति असामान्य क्रियाएँ करने लगता है। अक्सर उन्माद की दशा में अकेला होने पर व्यक्ति आत्महत्या का शिकार हो जाता है। दुर्खीम के अनुसार उन्माद पूरी तरह एक वैयक्तिक और काल्पनिक विशेषता है जिसके आधार पर आत्महत्या की व्याख्या नहीं की जा सकती।

- ❖ पातक की भावना- यह एक ऐसी भावना है जो किसी कुकृत्य को करने के बाद व्यक्ति में स्वयं अपने प्रति घृणा की भावना उत्पन्न कर देती है। पातक की दशा में व्यक्ति हर समय अपने प्रति सशंकित रहने लगता है, वह अनिद्रा से घिर जाता है तथा उसमें इतनी अधिक हीनता पैदा हो जाती है कि धीरे-धीरे अकारण वह पूरे समूह को अपने विरुद्ध समझने लगता है। यही दशा उसे आत्महत्या की ओर ले जाती है। दुर्खीम पातक को एक मनोवैज्ञानिक दशा न मानकर एक सामाजिक दशा के रूप में देखते हैं क्योंकि पातक का कारण आन्तरिक नहीं बल्कि समाज की वाह्य दशाएँ होती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक मद्यपान को भी एक मनोवैज्ञानिक कारण मानते हुए इसके आधार पर आत्महत्या की विवेचना करते हैं लेकिन दुर्खीम ने यह सिद्ध किया कि स्पेन तथा फ्रांस जैसे देशों में जहाँ शराब का सबसे अधिक सेवन किया जाता है, वहाँ यूरोप के अनेक दूसरे देशों की तुलना में आत्महत्या की दर कम है।

2. जैविकीय दशाएँ: दुर्खीम ने अनेक ऐसी मानसिक और जैविकीय दशाओं का भी उल्लेख किया जिन्हें अक्सर आत्महत्या का कारण मान लिया जाता है। जीववादी यह मानते हैं कि एक विशेष शारीरिक रचना तथा वंशानुक्रम से प्राप्त होने वाली विशेषताएं भी आत्महत्या की प्रेरणा देती है। इस दृष्टिकोण से दोषपूर्ण आनुवंशिक विशेषताएं, असामान्य शारीरिक रचना तथा प्रजातीय लक्षण वे प्रमुख जैविकीय कारक है जिनका आत्महत्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

❖ दोषपूर्ण आनुवंषिक विषेषताएं- जीववादियों का विश्वास है कि माता-पिता के अच्छे और बुरे सभी गुणों का वाहकाणुओं के द्वारा उनकी सन्तानों में संरक्षण होने की सदैव सम्भावना रहती है। माता-पिता में यदि स्नायु दोष या विभिन्न प्रकार के मनोविकार होते हैं तो अक्सर यह दोष उनकी सन्तानों में भी आ जाते हैं। इससे बच्चों में भी आत्महत्या की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। दुर्खीम ने आनुवंशिकता अथवा पैतृकता के आधार पर आत्महत्या की प्रवृत्ति का खण्डन किया। उनके अनुसार आनुवंशिकता पूरी तरह एक जन्मजात और आन्तरिक विशेषता है जिसके आधार पर आत्महत्या जैसे वाह्य व्यवहार की विवेचना नहीं की जा सकती।

❖ असामान्य शारीरिक रचना- जीववादी यह भी मानते हैं कि जिन व्यक्तियों की शारीरिक रचना असामान्य होती है, उनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिलती है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति बहुत अधिक भद्दे, मोटे, नाटे, अपंग अथवा विकलांग होते हैं, अक्सर अपने जीवन के प्रति उनमें अधिक रूचि नहीं होती। शारीरिक विकृतियाँ उनके विचारों को भी असन्तुलित बना देती है जिसका परिणम बहुधा आत्महत्या के रूप में देखने को मिलता है। दुर्खीम ने इस आधार को भी अस्वीकार करते हुए कहा कि असामान्य शारीरिक रचना तब तक आत्महत्या का कारण नहीं हो सकती जब तक व्यक्ति का जीवन शेष समाज से बिल्कुल अलग न हो जाये। इसका तात्पर्य है कि असामान्य शारीरिक रचना स्वयं आत्महत्या का कारण नहीं होती बल्कि सामाजिक दशाओं के सन्दर्भ में ही उनके प्रभाव को समझा जा सकता है।

❖ प्रजातीय लक्षण- अनेक विद्वानों ने प्रजातीय लक्षणों के आधार पर भी आत्महत्या की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। सामान्य निष्कर्ष यह दिया जाता है कि गोरी प्रजाति की तुलना में काली प्रजाति के लोगों में आत्महत्या की दर अधिक होती है। इससे प्रजातीय लक्षणों और आत्महत्या का सहसम्बन्ध स्पष्ट होती है। दुर्खीम ने इसकी आलोचना करते हुए कहा कि कुछ समय पहले तक जिन प्रजातीय समूहों में आत्महत्या की दर अधिक थी, उनकी सांस्कृतिक दशाओं में परिवर्तन हो जाने अब उनमें आत्महत्या की दर कम होती जा रही है। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि आत्महत्या का कारण जैविकीय दशाओं में नहीं बल्कि सामाजिक दशाओं में ही ढूँढ़ा जा सकता है।

3. भौगोलिक दशाएँ-: भौगोलिकवादी यह मानते हैं कि आत्महत्या तथा भौगोलिक दशाओं के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भौगोलिक दशाओं का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की जलवायु, ऋतु-परिवर्तन तथा मौसमी तापमान में होने वाले उतार-चढ़ाव से है। डी0 गूरे, वैगनर, माण्टेस्क्यू, डेक्सटर तथा फेरी आदि वे प्रमुख भौगोलिकवादी हैं जो अनेक दूसरे मानव व्यवहारों की तरह आत्महत्या को भी भौगोलिक दशाओं का परिणाम मानते हैं। दुर्खीम के विचारों के सन्दर्भ में

आत्महत्या तथा भौगोलिक कारकों के सम्बन्ध को जानने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि भौगोलिकवादियों के कथन को उपयुक्त नहीं कहा जा सकता।

4. जलवायु तथा आत्महत्या- कुछ भौगोलिकवादी यह मानते हैं कि जलवायु तथा आत्महत्या के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यही कारण है कि जलवायु में परिवर्तन होने के साथ आत्महत्या की दर में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। उनके अनुसार समशीतोष्ण जलवायु में आत्महत्याएँ अधिक होती हैं। इसके विपरीत, अधिक गर्म या अधिक ठण्डी जलवायु में आत्महत्या की घटनाएँ तुलनात्मक रूप से कम होती है। इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने लिखा है, आत्महत्या की दर में पायी जाने वाली भिन्नता की खोज जलवायु के रहस्यात्मक प्रभाव में नहीं बल्कि विभिन्न देशों में पायी जाने वाली सभ्यता की प्रकृति में करना आवश्यक है। इसका तात्पर्य है कि भौगोलिकवादियों ने जिस समशीतोष्ण जलवायु को अधिक आत्महत्याओं का कारण मान लिया है, उसका कारण वास्तव में इस जलवायु में विकसित होने वाली कुछ विशेष प्रकार की सामाजिक-सांस्कृतिक दशाएं है। इटली का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि यहाँ क विभिन्न भागों में समय पर आत्महत्या की दर में काफी परिवर्तन होता रहा, जबकि वहाँ की जलवायु में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह प्रमाणित होता है कि आत्महत्या की घटनाओं की खोज सामाजिक और सांस्कृतिक दशाओं में ही की जा सकती है।

5. ऋतु-परिवर्तन-माण्टेस्क्यू ने ऋतु-परिवर्तन और आत्महत्या के सहसम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा कि यूरोप में गर्मी में आत्महत्या की दर सबसे अधिक होती है और इसमें भी मई व जून का समय सबसे अधिक घातक होता है। बसन्तु ऋतु में आत्महत्या की दर साधारण होती है तथा सर्दियों में इसमें बहुत कमी हो जाती है। इस प्रकार आत्महत्या की दर में होने वाला परिवर्तन ऋतु-परिवर्तन के साथ बहुत कुछ नियमित रूप में देखने को मिलता है। दुर्खीम ने ऐसे निष्कर्षों को अस्वीकार करते हुए यह तर्क दिया कि आत्महत्या की दर की भिन्नता ऋतु-परिवर्तन से सम्बन्धित नहीं है बल्कि व्यक्ति उस समय अपने जीवन को त्यागना अधिक पसन्द करते हें जब मौसम उनके जीवन को सबसे कम प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर रहा होता है। यह ऋतु-परिवर्तन का सामाजिक सन्दर्भ है तथा यही सन्दर्भ कुछ सीमा तक आत्महत्या की दर से सम्बन्धित है।

6. तापमान-फेरी जैसे एक प्रमुख भौगोलिकवादी ने यह निष्कर्ष दिया कि तापमान तथा आत्महत्या के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया कि गर्मियों में जब तापमान अधिक होता है, तब आत्महत्या की घटनाओं में भी वृद्धि हो जाती है। दुर्खीम ने ऐसे निष्कर्षों की आलोचना करते हुए लिखा कि तापमान के थर्मामीटर का आत्महत्या में कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सच है कि जब तापमान अधिक होता है तो आत्महत्याएँ अधिक होती है लेकिन इसका कारण यह

है गर्मियों के मौसम में व्यक्ति स्वयं को अधिक अकेला महसूस करता है जिसके फलस्वरूप आत्महत्या की दर में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार दुर्खीम ने मनोवैज्ञानिक, जैविकीय तथा भौगोलिक दशाओं के आधार पर आत्महत्या की विवेचना को भ्रामक बताते हुए सामाजिक दशाओं को ही आत्महत्या की घटनाओं के लिए उत्तरदायी माना।

12.2.3 आत्म हत्या के प्रकार

दूर्खीम के अनुसार आत्म हत्या तीन प्रकार की होती है जो अग्रलिखित है -परार्थवादी आत्म हत्या- इस प्रकार की आत्म हत्या तब होती है जबकि व्यक्ति पूर्णतया समूह द्वारा नियंत्रित होता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व का कोई स्थान नहीं होता है। सच तो यह है कि यह उस स्थिति को व्यक्त करती है, जबकि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अत्यधिक घनिष्ठ होता है और समाज या समूह व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से निगल जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति जो कुछ भी करता है समाज या समूह की दृष्टि से करता है। इतना ही नहीं, समूह का अत्यधिक नियंत्रण व घनिष्ठ बन्धन उसे आत्म बलिदान के लिये भी बाध्य कर सकता है। परार्थवादी आत्म हत्या को स्पष्ट करते हुए 'पारसन्स' महोदय लिखते हैं ''यह उस सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है जो सामूहिक दबाव के अर्थ में व्यक्तित्व के दोषों को ठुकरा देती है।'' वास्तव में परार्थवादी आत्म हत्या समूह के अत्यधिक नियंत्रण व घनिष्ठता के कारण होती है और उस स्थिति में व्यक्ति सामूहिक हित के लिये अपने जीवन को बलिदान करने के लिये भी तैयार हो जाता है। आदिम समाजों में इस प्रकार की आत्म हत्यायें देखने को मिलती है। भारत में पायी जाने वाली सती प्रथा और जापान की हारा-कीरी प्रथा इसी प्रकार के आत्म हत्या के उदाहरण कहे जा सकते हैं। अहम् वादी आत्म हत्या - इस प्रकार की आत्म हत्या तब होती है जबकि व्यक्ति अपने आपको सामूहिक जीवन से अत्यधिक अलग अनुभव करने लगता है। यह परिस्थिति व्यक्तिगत विघटन के कारण होती है अथवा उस समय उत्पन्न होती है जबकि व्यक्ति के सम्बन्ध अपने समूह से पर्याप्त सीमा तक विघटित हो जाते हैं। इस स्थिति में व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से गहरी निराशा का अनुभव करता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थों में अत्यधिक लिप्त हो जाता है और कोई किसी की परवाह नहीं करता है। ऐसे वातावरण में कुछ व्यक्तियों को अपने को एकाकी व उपेक्षित अनुभव करना स्वभाविक हो जाता है, क्योंकि यह सब कुछ सामाजिक जीवन से उत्पन्न गहरी निराशा के कारण होता है। सम्भवतया यही कारण है कि अविवाहित व परित्यक्त व्यक्ति पारिवारिक जीवन के मधुर सम्बन्धों का आनन्द नहीं ले पाते, अकेलेपन का अनुभव करते हैं और विवाहित व्यक्तियों की तुलना में कहीं अधिक संख्या में आत्म हत्या कर बैठते हैं। आधुनिक समाज में अधिकतर आत्म हत्या समाज द्वारा उत्पन्न अति अहमवाद या अति व्यक्तित्व वाद के कारण होती है। अस्वाभाविक या अप्राकृतिक आत्म हत्या - इस प्रकार के आत्म हत्यायें सामाजिक परिस्थितियों में एकाएक या आकस्मिक परिवर्तन होने के कारण होती है। इन आकस्मिक परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति गहरी निराशा या अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं। व्यापार में एकाएक मन्दी आना,

दिवालिया हो जाना, लाटरी का जीतना, भीषण आर्थिक संकट आदि इसी प्रकार की आकस्मिक परिस्थितियां है। सच तो यह है कि इन नवीन परिथतियों में अनेक व्यक्ति सामान्य जीवन की भांति अनुकूलन नहीं कर पाते हैं। इसी स्थिति को अस्वाभाविकता कहा जाता है। इसको स्पष्ट करते हुये 'कोजर' और 'रोजनवर्ग' लिखते हैं ''इसका अभिप्राय यही है कि अस्वाभाविक या अप्राकृतिक आत्म हत्यायें सामान्य सामूहिक जीवन में एकाएक परिवर्तन होने से उत्पन्न सामाजिक असन्तुलन होने के कारण होती है।'' औद्योगिक समाज व्यवस्था में इस प्रकार की आत्म हत्यायें होती रहती है।

12.3 सार संक्षेप (Summery)

प्रस्तुत इकाई में आत्म हत्या की अर्थ एवं विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें बताया गया है कि आत्म हत्या क्या है ? तथा इनकी विशेषतायें कौन-कौन सी होती है ? दुर्खीम ने लिखा है कि आत्म हत्या शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसी मृत्यु के लिये किया जाता है जो मृत व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है। प्रस्तुत इकाई में ही आत्म हत्याओं के कारणों पर वृहद प्रकाश डाला गया है एवं मनोवैज्ञानिक दशायें, जैवकीय दशायें, तथा भौगोलिक दशाओं के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इकाई के अन्त में आत्म हत्या के प्रकारों का भी वर्णन किया गया है।

12.4 शब्दाबली (Vocabulary)

- ❖ आत्म हत्या- आत्म हत्या शब्द का प्रयोग मृत्यु की उन सभी घटनाओं के लिए किया जाता है जो स्वयं मृतक के किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है तथा जिसके भावी परिणाम को वह स्वयं भी जानता है। मनोवैज्ञानिक दषायें - इसमें स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं, मानसिक बीमारियों संवेगात्मक और स्थिरता, उन्माद तथा पातक आदि की दशायें सम्मिलित है।

- ❖ जैविकीय दषायें- जैवकीय दशाओं में वे दोषपूर्ण आनुवांशिक विशेषतायें, असामान्य शारीरिक रचना तथा प्रजातीय लक्षण सम्मिलित है जिनका आत्म हत्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

अभ्यास प्रश्न (Questions for Practice)

लघु

- ❖ आत्म हत्या की अवधारणा लिखियें।

- ❖ आत्म हत्या की विशेषतायें लिखियें।

- ❖ आत्म हत्या के कारणों पर प्रकाश डालिये।
- ❖ सम्वेगात्मक अस्थिरता पर टिप्पणी लिखिये।

विस्तृत

- ❖ आत्म हत्या का अर्थ समझाते हुये आत्म हत्या के कारणों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
- ❖ आत्म हत्या की अवधारणा को लिखते हुये आत्म हत्या की विशेषताओं को समझाइयें।

12.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

- सिंह, जीतकृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 205-211.
- Arnold M. Rose, Sociology, Boston : Houghton Mifflin, 1962.
- Bottomore, T. B., Sociology : A Guide to Problems and Literature, London : Allen and Unwin, 1969.

इकाई 13: तनाव: कारण एवं प्रभाव , खराब स्वास्थ्य के कारण , व्यक्ति चरित्रण तथा स्वास्थ्य,स्वस्थ जीवन शैली को प्रोत्साहित करना (Stress: causes and effects, causes of ill health, personality and health, promotion of healthy lifestyle)

इकाई संरचना-

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 तनाव- अर्थ एवं विशेषताएं/ स्वरूप

13.3.1 कारण या स्त्रोत

13.3.2 प्रभाव

13.4 खराब स्वास्थ्य के कारण

13.4.1 स्वास्थ्य का आशय

13.4.2 खराब स्वास्थ्य का कारण /कारक

13.5 व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य

13.5.1 व्यक्तित्व की परिभाषा एवं विशेषता

13.5.2 व्यक्तिगत विशेषताऐं तथा स्वास्थ्य

13.6 स्वास्थ्य जीवनशैली को प्रोत्साहित करना

13.6.1 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत

13.6.2 जीवनशैली अर्थ प्रकार एवं निर्माण

13.6.3 स्वस्थ जीवन शैली का निर्माण एवं प्रोत्साहन

13.7 सारांश

13.8 शब्दावली

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज व्यक्ति की भौतिक सुखों में अभिरूचि बढ़ रही है। इससे समाज में नई समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। ये समस्याएं व्यक्ति के व्यवहार को जटिलता की ओर ले जा रही हैं। अपने लक्ष्य तक पहुँचने में व्यक्ति को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इससे यह तनावग्रस्त हो जाता है। अपने इस प्रयास में यदि वह अपने लक्ष्य को पाने में असमर्थ रहता है तो तनाव और भी बढ़ जाता है। परिणाम स्वरूप आज व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ साथ मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित हो रहा है। व्यक्ति के जीवन में प्रभावपूर्ण सामायोजन के लिए शारीरिक स्वास्थ्य के साथ -साथ मानसिक स्वास्थ्य की विशेष आवश्यकता होती है। अतः स्वास्थ्य एक ऐसा आयाम है जिस पर आज मनोवैज्ञानिकों का ध्यान गम्भीरता के साथ केन्द्रित हुआ है। लोगों में स्वास्थ्य के प्रति सतर्कता में काफी वृद्धि हुई है। विदेशों में स्वास्थ्य मनोविज्ञान एक अत्यधिक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। इसका कारण यह है कि स्वास्थ्य के प्रत्येक पक्ष पर मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य के संबंध में एक कहावत है कि निवारण से रोकथाम अधिक अच्छी होती है। अतः स्वास्थ्य अनुरक्षण के लिए सभी लोगों को जागरूक रहने की विशेष आवश्यकता है।

13.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे किः

1. तनाव के कारण एवं प्रभाव को जान सकें ।
2. खराब स्वास्थ्य कारणों से अवगत हो सकें तथा उससे बचने के उपाय कर सकें।
3. व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य के विषय में समझ विकसित कर सकें।
4. स्वस्थ जीवन शैली को जान सकें तथा स्वास्थ्य अनुरक्षण में स्वस्थ जीवन शैली को अपना सकें।
5. लोगों में स्वस्थ रहने के लिए जागरूकता उत्पन्न कर सकें।

13.3 तनाव अर्थ एवं विशेषताएं /स्वरूप (Meaning and Characteristics of Stress)

तनाव या प्रतिबल आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। लगभग 75 प्रतिशत रोगों का कारण यही तनाव होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (Stimulus) कारकों के रूप में समझाने की कोशिश की है। कोई भी घटना या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है, तनाव कहलाता है। घटनायें जैसे भूकम्प, आगजनी, नौकरी छूटना, व्यवसाय का खत्म हो जाना, प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएं हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। ऐसे भौतिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों को, जो तनाव उत्पन्न करते हैं, आसेधक (Stressor) कहा जाता है। कुछ मनोवैज्ञनिकों ने तनाव को अनुक्रिया के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। जब व्यक्ति, इस विशेष तरह की मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएं जैसे चिंता, क्रोध, आक्रामकता आदि एवं दैहिक अनुक्रियाएं जैसे पेट की गड़बड़ी, नींद न आना, रक्तचाप में वृद्धि आदि दिखलाता है, तो हम कहते हैं कि व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो गया है। According to Hans Selye(1979) "तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकता अनुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है"।

इस परिभाषा में तनाव को एक अविशिष्ट अनुक्रिया कहा गया है, जिससे सेली का तात्पर्य यह था कि ऐसी अनुक्रियाएं किसी खास तरह के आसेधक या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक से संबंधित नहीं होती हैं। बल्कि एक ही तरह की अनुक्रियाएं तनाव उत्पन्न करने वाले कोई भी उद्दीपक द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं। मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के सम्बंध के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएं निश्चित रूप से ऐसी होती हैं जो सभी व्यक्तियों के लिऐ तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएं या परिस्थितियां होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में ही तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। अतः तनाव के उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता हैं। उसी तरह से तनावपूर्ण घटनाओं के प्रति की जाने वाली अनुक्रियाओं यहा तक कि दैहिक अनुक्रियाओं को भी मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता हैं। अतः मात्र अनुक्रिया के रूप में भी तनाव को ठीक ढंग से समझा नहीं जा सकता। संबंधात्मक उपागम के अनुसार तनाव व्यक्ति तथा वातावरण, जिससे व्यक्ति को खतरा महसूस होता है तथा जो उनके साधनों को चुनौती देता है , के बीच एक खास संबन्ध को प्रतिबिम्बित करता है। इस उपागम के प्रमुख समर्थक लेजारस एवं फोल्कमैन (1984) एवं टेलर (1991) रहे हैं। "हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के दैहिक मागों (बीमारी की अवस्था, व्यायाम,अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियां, जिसे सचमुच में हानिकारक, अनियन्त्रण योग्य तथा निपटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाले के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होती हैं"। Morgan, king, Weisz & schopler Introduction to Psychology (1986)

बैरोन (Baron 1992) ने भी तनाव को कुछ इसी अर्थ में परिभाषित किया है- "तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है, जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है , या विघटित करने की धमकी देता है"। उपरोक्त दोनों परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर तनाव के स्वरूप के बारे में निम्नलिखित विशेषताऐं प्रकाश में आयेंगी।

i. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो आसेधकों के मूल्यांकन के बाद उसके प्रति की गयी एक तरह की अनुक्रिया है।
ii. सामान्यतःयह समझा जाता है कि तनाव जीवन के नकारात्मक घटनाओं या दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से होता है परन्तु तनाव स्वीकारात्मक घटनाओं से भी होता है जैसे उच्च कुल में शादी होना, अच्छे पद पर पदोन्नत होना, बहुत बड़ा पुरस्कार पाना आदि ।
iii. मशहूर कैनेडियन शरीरशास्त्री हंस सेली ने तनाव को दो श्रेणियों में बांटा है-स्वीकारात्मक तथा नकारात्मक तनाव, स्वीकारात्मक तनाव को यूस्ट्रेस (Eustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिस्ट्रेस (Distress) कहा जाता है।
iv. तनाव में जो घटनाएं , परिस्थितियां अदि होती हैं (जिनसे तनाव उत्पन्न होता है) वे व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर होती हैं। परिस्थिति के नियंत्रण में आने पर तनाव कम हो जाता है।
v. तनाव में मनोवैज्ञानिक तथा दैहिक दोनों प्रकार की अनुक्रियाएं होती हैं। तनाव थोड़े समय के बाद समाप्त हो सकता है या लम्बे समय तक चल सकता है। यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न हेाने वाली घटनाओं या परिस्थितियों के स्वरूप पर निर्भर होता है।
vi. अतः यह कहा जा सकता है कि तनाव, परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनूक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यो को विघटित होते पाता है।

13.3.1 तनाव के कारण या स्रोत (Causes or the sources of Stress)

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के आधार पर तनाव के कई कारकों की सूची भी तैयार की गई हैं। प्रमुख कारकों को निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है-

i. तनावपूर्ण जीवन की घटनाएं-मानव जीवन में सुखद एवं दुखद दोनों प्रकार की घटनाऐं होती है। व्यक्ति को इन दोनों घटनाओं के साथ पुनर्समायोजन करना पड़ता है। ऐसी घटनाओं के प्रति जब व्यक्ति ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है तो वे तनाव उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति में दैहिक एवं सांवेगिक विकृतियां उत्पन्न कर देती हैं। कोई भी जीवन घटना तनावपूर्ण होगी या नहीं यह

बहुत कुछ व्यक्ति के व्यक्तिगत इतिहास एवं वर्तमान जीवन परिस्थिति पर निर्भर करता है। ऐसा देखा गया है कि कोई घटना एक व्यक्ति में अधिक तनाव उत्पन्न करती है , परंतु वही घटना दूसरे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न नहीं करती।

ii. प्रेरकों का संघर्ष - जब अभिप्रेरकों के बीच संघर्ष होता है तो इससे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। जिस अभिप्रेरक की तुष्टि नहीं होती है तो इससे उत्पन्न कुंठा तनाव का कारण बन जाती है। उदाहरण-जैसे एक छात्र कक्षा में उत्तम अंक पाने में असफल रहता है परंतु खेल में उसका प्रदर्शन सबसे अच्छा रहता है। शिक्षा के क्षेत्र में असफलता उसमें तनाव उत्पन्न करती है। व्यक्ति के जीवन में कई ऐसे मानसिक संघर्ष होते हैं जो तनाव उत्पन्न करते हैं। इनमें सहयोग बनाम प्रतियोगिता, स्वतंत्रता बनाम निर्भरता, घनिष्टता बनाम पृथकता तथा आवेग भी अभिव्यक्ति बनाम नैतिक मानक प्रमुख हैं। यौन एवं आक्रामकता के सामाजिक मानक व्यक्ति की इच्छा से टकराते हैं। इससे भी तनाव उत्पन्न होते हैं। यदि नैतिक मानकों की अवहेलना की जाती है तो दोष भाव के कारण तनाव उत्पन्न होता है। अतः विरोधी अभिप्रेरकों के बीच समझौते का प्रयास अपने आप में तनाव की उत्पत्ति करता है।

iii. दिन प्रतिदिन की उलझन- मानव जीवन में प्रतिदिन छोटी बड़ी, महत्वपूर्ण घटनाएं तना पैदा करती हैं। इस तथ्य की पुष्टि, लेजारस तथा उनके सहयोगी (Lazarus et al 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगी (Kanner et al 1981) द्वारा किये गये अध्ययनों से होती है। यह उलझन निम्न प्रकार की हो सकती हैं –

a. पर्यावरणीय उलझन- इसमें शोरगुल, आवाज, अपराध, पास पड़ोस से होने वाली बकझक आदि रखे गये हैं।
b. घरेलू उलझनें-इसमें भोजन बनाना, बर्तन धोना, घर की सफाई कपड़ा या अन्य समान को खरीदना आदि से संबद्ध कारकों को रखा गया है।
c. आन्तरिक भाव से सम्बद्ध उलझन-इसमें अकेले होने का भाव, किसी से मन मुटाव व झगड़ा हो जाने का भाव आदि कारकों को रखा गया हैं।
d. समयाभाव से उत्पन्न उलझन-इसमें बहुत सारी चीजों को एक दिये गये समय के भीतर पूरा कर लेने तथा एक ही साथ बहुत सारे उत्तरदायित्वों को निभाने आदि कारकों को रखा गया है।
e. आर्थिक उत्तरदायित्वों से उत्पन्न उलझन-इसमें धन बचाने तथा कमाने से सम्बंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिनका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच में उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।
f. कार्य उलझन-कार्य से असंतुष्टि, पदोन्नति के अवसर का न होना तथा किसी समय कार्य से हटाए जाने की संभावना आदि को रखा गया है।

iv. कार्य से उत्पन्न तनाव-व्यक्ति जो कार्य करता है ,उससे संबंधी कुछ कारक हैं जो उसमें तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे किसी कर्मचारी को कम समय में बहुत काम करने को कहा जाता है तो तनाव उत्पन्न होता है। यदि कार्य स्थल का वातावरण, जैसे रोशनी, हवा,शोरगुल, नियंत्रण आदि का ठीक प्रबंध नहीं हैं तो इससे भी उसमें कार्य असंतुष्टि होती है जिससे तनाव उत्पन्न होता हैं। भूमिका संघर्ष की स्थिति में किसी कार्यपालक या प्रबंधक से कर्मचारियों कि विभिन्न समूहों द्वारा भिन्न भिन्न प्रत्याशा विकसित होती हैं, जिसे पूरा करना व्यवस्थापक के लिए संम्भव नहीं हो पाता जिसके परिणाम स्वरूप उसमें तनाव उत्पन्न होता है।

v. पर्यावरणी स्रोत -भूकम्प, आगजनी,तीव्र आँधी, तूफान आदि कुछ ऐसे ही कारक हैं जो व्यक्ति में तनाव पैदा करते हैं। (Kasl 1990) के अनुसार इन घटनाओं की प्रबलता खत्म होने के बाद अनुभूति के द्वारा काफी तनाव उत्पन्न होता है। मानव द्वारा निर्मित पर्यावरणीय कारक जैसे शोर गुल , प्रदूषण , अणु परीक्षण (nuclear test) से उत्पन्न स्थिति कुछ ऐसे कारकों के उदाहरण हैं , जिनसे व्यक्ति को तनाव उत्पन्न होता है। (Cohen et al 1986 & Baurn et al 1983)

13.3.2 प्रभाव

इसे तनाव की अनुक्रिया या प्रतिक्रिया भी कहते हैं। यह दो प्रकार की होती हैं

- मनोवैज्ञानिक प्रभाव /प्रतिक्रियाएं
- दैहिक प्रभाव/प्रतिकियाएं

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं/प्रभाव- तनाव में व्यक्ति की मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन हो जाता है

i. संज्ञानात्मक विघटन:- तनाव में व्यक्ति के संज्ञानात्मक कार्य में एक तरह की असामान्यता आ जाती हैं। एकाग्रता की क्षमता कम हो जाती है। जिन व्यक्तियों में सतर्क एवं चौकन्ना रहने की प्रवृत्ति पहले से रहती है वे तनाव की स्थिति में और अधिक सतर्क और चौकन्ना हो जाते हैं। याद्दाश्त कम हो जाती है। आक्रमकता बढ़ जाती है।

ii. सांवेगिक अनुक्रियाऐं- तनाव की स्थिति में व्यक्ति में निम्नलिखित सांवेगिक क्रियाएं उत्पन्न हो जाती हैं-

   a. चिंता:- सामान्य चिंता में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के साथ समायोजन करने का प्रयास करता है। इस प्रकार की चिन्ता ;स्नायुविकृति चिन्ताद्ध में व्यक्ति इतना डर जाता है कि उसमें ऐसी परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता

लगभग समाप्त हो जाती है। वह अपने आपको बेसहारा महसूस करता है। फ्रायड के अनुसार , चिंता का कारण अचेतन का संघर्ष होता है।

b. क्रोध एवं आक्रामकता:-यह दूसरी सांवेदिक अवस्था है। अध्ययनों से पता चला है कि तनाव उत्पन्न करने वाला उद्दीपक या परिस्थिति के प्रति प्राणी में पहले क्रोध उत्पन्न होता है और ऐसे उद्दीपक प्राणी के सामने अधिक समय तक बने रहें तो उनके प्रति आक्रामकतापूर्ण व्यवहार भी करने लगता है। यदि लक्ष्य दिखाई नहीं देते हैं तो आक्रामकता किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति की ओर विस्थापित हो जाती है।

c. भाव शून्यता तथा विषाद:-सामान्यतः यह देखा गया है कि अगर तनावपूर्ण परिस्थिति व्यक्ति के सामने बनी होती है और व्यक्ति उससे निपटने में सफल नहीं होता है तो वह उसके प्रति भावशून्यता या उदासीनता विकसित कर लेता है जो बाद में व्यक्ति में विषादी प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है।

दैहिक प्रतिक्रियाएं/प्रभाव-तनाव की स्थिति उत्पन्न होने पर प्रायः व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी ,हृदय गति का असामान्य होना, श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। इन क्रियाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

- ❖ आपात कालीन अनुक्रियाएं- ऐसी अनुक्रियाओं के माध्यम से शरीर में लीवर अत्यधिक मात्रा में चीनी का उत्सर्जन करता है ताकि शरीर की मांसपेशियों को अधिक शक्ति मिल सके। शरीर में कुछ ऐसे हारमोन्स निकलते हैं जो चर्बी तथा प्रोटीन को चीनी में बदल देते हैं ,जिससे शारीरिक कार्य के लिए पर्याप्त उर्जा मिलने लगती हैं। लार तथा श्लेष्मा की मात्रा में काफी कमी आ जाती हैं ,ताकि फेफड़े को अधिक वायु मिलने में कोई रूकावट न हो। शरीर का प्लीहा अधिक मात्रा में रक्त लाल कर्णिकाओं का उत्सर्जन करते हैं ताकि अधिक से अधिक आक्सीजन शरीर के अंगों को मिल सके। उक्त सभी तरह के आपातकालीन क्रियाओं का उद्देश्य मात्र एक ही होता है, तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के साथ ठीक ढंग से निपटना तथा उसके साथ उपयुक्त समायोजन करना। ये सभी दैहिक अनुक्रियाऐं स्वायत्त तंत्रिका तंत्र, अन्तस्त्रावी ग्रन्थि तथा पियूष ग्रन्थि की मदद से नियमित एवं नियंत्रित होती हैं। यह दैहिक क्रियाएं जटिल होने के साथ - साथ जन्मजात होती हैं। कैनन (Canon 1920) ने इन क्रियाओं को भिड़ो या भागो अनुक्रिया कहा है। सेली (Selye 1979) ने इसे चेतावनी प्रतिक्रिया कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएं व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ने या भाग जाने के लिऐ प्रेरित करती हैं।
- ❖ सामान्य अनुकूल संरक्षण- (General Adaptation Syndrome GAS)सेली (1979) द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि यदि आसेधक (Stress) या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से

लगातार लम्बे अरसे तक घिरा रहना पड़े उसमें अनुकूलन की स्थिति आ जाती हैं ये क्रियाएं तीन अवस्थाओं में होती हैं:-

a. चेतावनी प्रक्रिया की अवस्था- जब व्यक्ति आसेधक (Stressor) से घिर जाता है और उससे प्रभावित हो जाता हैं तो उस प्रारम्भिक अवस्था में जो शारीरिक परिवर्तन होता है उसे चेतावनी प्रतिक्रिया अवस्था कहते हैं। चेतावनी अवस्था के अन्तर्गत, आघात अवस्था , में शारीरिक तापक्रम तथा रक्त चाप गिर जाता है। हृदय गति कम हो जाती हैं तथा मांसपेशियां सुस्त हो जाती हैं। इसके तुरंत बाद प्रतिघात अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर अपने रक्षा प्रक्रमों को बढा देता है और सभी तरह की आपात कालीन अनुक्रियाएं जैसे हृदय गति , रक्तचाप एवं श्वसन आदि में तीव्रता आ जाती है। परिणाम स्वरूप आसेधक से निपटने के लिए प्रतिरोध क्षमता बढ़ने लगती है।

b. प्रतिरोध की अवस्था- जब शरीर आसेधक की निरंतर मौजूदगी से उत्पन्न प्रभाव को अवरूद्ध करता है तब प्रतिरोध की अवस्था उत्पन्न होती है। इस अवस्था में शरीर में कुछ हारमोन्स निकलते हैं जिनसे प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो जाती है। इन हारमोंन्स की सहायता से शरीर अपनी मुख्य प्रकिया को मजबूत कर आसेधक प्रभाव से अपने आपको बचाता हैं।

c. समापन की अवस्था-इस अवस्था में मौलिक आसेधक तथा नये आसेधक दोनों की ही प्रतिअनुक्रिया करने की क्षमता काफी कम हो जाती है , प्राणी शिथिल पड़ जाता है। वह निष्क्रिय सा हो जाता है तथा बीमार पड़ जाता है। यह भी देखा गया है कि आसेधक उत्पन्न हारमोन का स्तर अधिक समय तक बना रहने से व्यक्ति में आंत का घाव , दमा, उच्च रक्त चाप , कैंसर के होने की संभावना एवं मधुमेह आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं और व्यक्ति की मृत्यु की संभावना काफी बढ़ जाती है।

13.4 खराब स्वास्थ्य के कारण (Causes of Poor Health)

13.4.1 स्वास्थ्य का आशय- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार "स्वास्थ्य का आशय, शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ होने से है न कि केवल शारीरिक बीमारियों की अनुपस्थिति से" । आजकल स्वास्थ्य के अन्तर्गत आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी सम्मलित किया जा चुका है। स्वास्थ्य का यह नवीन क्षेत्र है। इस प्रकार स्वास्थ्य के निम्नलिखित आयाम हैं।

a. शारीरिक स्वास्थ्य-शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति सतर्क क्रियाशील, उर्जायुक्त ,ओजस्वी प्रतीत होता है। जैसे चमकदार बाल, चिकनी त्वचा , चमकीली आँखें , मजबूत जबड़े , स्वस्थ दांत, चौरस उदर , सामान्य वजन , सीधा शरीर ,विकसित मांसपेशियां , पर्याप्त स्नायुक , नियंत्रण ,

भूख का समय से लगना , सामान्य पाचन , एवं गहरी निद्रा का आना अच्छे स्वास्थ्य के लक्षण हैं।

b. मानसिक स्वास्थ्य- शारीरिक रूप से स्वस्थ होने के साथ साथ व्यक्ति को मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहना चाहिए ताकि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन कर सके। जहोदा (1950) के अनुसार उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के 5 मापदण्ड हैं:-मानसिक बिमारी की अनुपस्थिति, व्यवहार में सामान्यता, वातावरण के साथ समायोजन, संगठित व्यक्तित्व एवं वास्तविकता का सही प्रत्यक्षीकरण। सारसन एवं सारसन (2002) के अनुसार मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का चिंतन तर्कपूर्ण होता हैं, चुनौतियों का समुचित सामना करता है और संवेगात्मक स्थिरता पाई जाती है।

c. सामाजिक स्वास्थ्य- इसका आशय है व्यक्ति का अपने परिवार या परिवेश के लोगों के साथ समायोजन एवं सामंजस्य। परिवार एवं परिवेश से सामंजस्य जितना अधिक होगा सामाजिक स्वास्थ्य उतना ही अधिक अच्छा होगा। उत्तम सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य काफी अच्छा होना आवश्यक हैं।

d. आध्यात्मिक स्वास्थ्य- दूसरों की सहायता करना किसी को कष्ट न पहुँचाना, मान्यताओं को मानना आदि आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ लक्षण हैं। धार्मिक कट्टरता तथा पारस्परिक असहिष्णुता आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लक्षण नहीं हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाने के योग्य है जो शारीरिक मानसिक , सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ हो। ऐसे किसी एक या एक से अधिक क्षेत्रों में अस्वस्थ व्यक्ति को अस्वस्थ्य ही कहा जायेगा।

13.4.2 खराब स्वास्थ्य का कारण या कारक (Factors of Poor health)

i. शारीरिक दशा जोखिम कारक के रूप में (मोटापा)- मोटापे का निर्धारण व्यक्ति की आयु एवं वजन में अनुपात के आधार पर किया जाता है। यदि शरीर का वजन मानक से 25 प्रतिशत अधिक हो तो इसे मोटापा की समस्या कहा जायेगा। इससे स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। चिकित्सा विज्ञान में इसे एक जोखिम माना जाता है। जोखिम कारक ,शरीर संबन्धी वह दशा या व्यवहार का प्रकार है जो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के रोगों की संभावना को बढ़ाता है (Fernald and Fornalt 1999) । मोटापा के कारण हृदय रोग, मधुमेह, फेफड़े की समस्या, शल्य चिकित्सा में समस्यायें, बुढ़ापे में दुर्घटना एवं हड्डी का टूटना एवं अन्य प्रकार की समस्याएं बढ़ती हैं।

ii. व्यवहार जोखिम कारक के रूप में- आज की भाग- दौड़ , औद्योगीकीकरण आदि हृदय संबन्धी रोगों को बहुत अधिक बढ़ावा दे रहे हैं। सर्वेक्षणों एवं शोधों से स्पष्ट होता है कि हृदय रोग के लिए कार्य संबन्धी कारण विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक इसी प्रकार की समस्याओं का अध्ययन कर रोगों की रोक थाम एवं उपचार का प्रयास करते हैं। उदाहरण टाइप ए- व्यवहार:-इस व्यवहार के अन्तर्गत प्रबल आकाक्षाएं पायी जाती हैं व्यक्ति तीव्र गति सेकार्य करना चाहता है। व्यक्ति की आगे बढ़ने की उत्कंट इच्छा होती है, कार्य में जल्दी रहती है। उसमें अत्यधिक सर्तकता पायी जाती है। इससे स्वास्थ्य संबन्धी जोखिम की संभावना बढ़ती है। टाइप बी- व्यवहार वाले व्यक्तियों में आकांक्षा स्तर कम होता है। वे कार्य दबाव कम अनुभव करते हैं अधिक भाग दौड़ पसंद नहीं करते हैं। कार्य सहज भाव से करते हैं। एक समय में एक ही काम करते हैं। वे आसपास के पर्यावरण में रूचि लेते हैं। टाइप सी-ऐसे लोगों में टाइप बी की विशेषता के साथ साथ असुरक्षा की भावना या चिंता भी काफी अधिक पायी जाती है। टाइप बी की तुलना में टाइप ए वाले व्यक्तियों में हृदय गति रूकने की समस्या लगभग दो गुना और हृदय संबंधी अन्य समस्यायें लगभग पाँच गुना अधिक पायी जाती हैं।

iii. संबन्धित अन्य बीमारियां- हृदय रोग में रक्तचाप,भोजन की आदतें, हृदय रोग की दृष्टि से परिवार का इतिहास आदि अन्य कारकों की भी भूमिका होती हैं। सतत तनाव से रक्त चाप उच्च हो सकता है। इसी प्रकार खराब शारीरिक स्वास्थ्य भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है जैसे एक विकलांग बच्चे या व्यक्ति में हीनता की भावना विकसित हो सकती है।

iv. कुपोषणीय कारक- गरीबी के कारण और उपयुक्त शिक्षा के अभाव में भारत सहित अन्य अविकसित एवं विकासशील देशों में लोग कुपोषण के कारण अस्वस्थ हो रहे हैं। अधिकांश स्त्रियों व बच्चों में प्रोटीन न्यूनता की समस्या अधिक है। रक्तक्षीणता या खून की कमी हो रही है। विटामिन ए के कारण आँखों की बीमारी बहुत अधिक हो रही है। आयोडीन की कमी से ष्शारीरिक एवं मानसिक विकास बाधित हो रहा है। अतः कुपोषण खराब स्वास्थ्य का एक प्रमुख्य कारण बन चुका है। पोषक तत्वों की कमी या अधिकता दोनों ही स्वास्थ्य के लिये अहितकर हैं।

v. फास्ट फूड का प्रचलन- मुख्यतः शहरी संस्कृति के लोग फास्ट फूड अधिक खाते हैं। पिज्जा, चाउमीन, बर्गर, कोल्डड्रिंक्स आदि लम्बे समय तक लेने से लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। अध्ययनों से प्रमाणित हो चुका है कि कोल्ड ड्रिंक्स स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। यह स्वास्थ्य पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं।

vi. स्वास्थ्य अनुरक्षण का अभ्यास न होना-स्त्रियाँ एवं बच्चे स्वास्थ्य के प्रति अपेक्षाकृत कम जागरूक होते हैं। उन्हें स्वास्थ्य संबन्धी समस्याएं रोगों व उपचारों आदि का ज्ञान बहुत कम होता है। अध्ययनों में पाया गया हैं कि यदि स्त्रियां एवं बच्चे रोग से ग्रस्त होना शुरू होते हैं तो

वे शुरूआत में दवा इसलिए नहीं लेते कि वह अक्सर सोचते हैं कि बीमारी दो चार दिन में स्वतः ठीक हो जायेगी। इस प्रकार की शिथिलता शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के प्रतिकूल होती है।

vii. मादक पदार्थों का सेवन- अधिक मदपान करना, गांजा, भाँग, तम्बाकू, सिगरेट का अधिक सेवन स्वास्थ्य पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं। अधिक मदपान से गुर्दा प्रभावित हो सकता हैं, लीवर खराब हो सकता है। धूम्रपान से फेफड़े पर कुप्रभाव पड़ता है। तम्बाकू सेवन से कैंसर होने की संभावना बनी रहती हैं।

viii. अनियमित जीवन शैली- यदि किसी व्यक्ति की जीवनचर्या व्यस्त एवं अनियमित होती हैं तो इससे स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। किसी व्यक्ति के खाने, पीने, सोने, जागने आदि का एक निर्धारित समय नहीं है, तो उसका जीवन अनियमित माना जायेगा। सुबह शाम टहलना, व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। इनके न करने पर स्वास्थ्य संबन्धी विषमता आ सकती है। नकारात्मक विचारों का होना, व्यसन आदि स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं। एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है। सामाजिक, पर्यावरणी एवं सर्जनात्मक अभिरूचि के अभाव में मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। यदि इनकी स्थिति नकारात्मक है तो स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है।

13.5 व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य (Personal Characteristics and Health)

13.5.1 व्यक्तित्व की परिभाषा एवं विशेषता- आलपोर्ट ने सर्वप्रथम व्यक्तित्व की परिभाषा दी "व्यक्तित्व वह है जो व्यक्ति वास्तव में है"। बाद में उनकी लोक प्रिय परिभाषा निम्नवत प्रस्तुत की गई-"व्यक्तित्व व्यक्ति के अंदर उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है, जो उसके परिवेश के साथ उसके अनोखे समायोजन का निर्धारण करता है"।

विशेषताएं-

- ❖ गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य है कि व्यक्तित्व सतत रूप से विकासशील तथा परिवर्तनशील है।
- ❖ संगठन या व्यवस्था से तात्पर्य है कि व्यक्तित्व के कई घटक हैं।
- ❖ मनोदैहिक व्यक्त करता है कि व्यक्तित्व मानसिक तथा स्नायविक पक्ष है। मानसिक तथा शारीरिक दोनों का संगठन है।
- ❖ निर्धारण पद व्यक्त करता है कि सक्रिय रूप से व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित कैसे करते हैं

आलपोर्ट (1961) के अनुसार "चरित्र का तात्पर्य व्यवहार की संहिता से है, जिससे व्यक्ति की प्रशंसा होती है। व्यक्ति के चरित्र से वह अच्छा या बुरा समझा जाता है। चरित्र नैतिक संबंधी एक संप्रत्यय है।"

आलपोर्ट के सामान्य शीलगुण व व्यक्तिगत शीलगुण में अंतर:-

सामान्य शीलगुण समाज के अधिकतर व्यक्तियों में पाया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति समाज के कुछ व्यक्ति विशेष में ही पायी जाती है। सामान्य शीलगुण के आधार पर कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति के आधार पर एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुणों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुण की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रवृत्ति को अधिक महत्व दिया है।

i. **कार्डिनल प्रवृत्ति-**यह व्यक्तित्व का इतना प्रबल गुण होता है कि उसे छिपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह के कार्डिनल प्रवृत्ति के रूप में आसानी से की जा सकती है। सभी व्यक्तियों में काडिर्नल प्रवृत्ति नहीं होती हैं परन्तु जिसमें होती है वह व्यक्ति पूर्णरूपेण उस प्रवृत्ति से चर्चित होता है। उदाहरण- महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व की कार्डिनल प्रवृत्ति शांति व अहिंसा में अटूट विश्वास था और इस गुण से पूरे संसार में वे चर्चित हैं। अतः शांति व अहिंसा में विश्वास महात्मा गाँधी के कार्डिनल प्रवृत्ति का एक उदाहरण हैं।
ii. **केन्द्रीय प्रवृत्ति**-केन्द्रीय प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 ऐसी प्रवृत्तियाँ या गुण पाये जाते है जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। इनको केन्द्रीय प्रवृत्ति या गुण कहा जाता है। सामाजिकता, आत्मविश्वास, उदासी आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्तियों के उदाहरण हैं।
iii. **गौण प्रवृत्ति-** व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट प्रवृत्तियों या गुणों को गौण प्रवृत्ति कहते हैं। जैसे खाने की आदत, हेयर स्टाइल, पहनावा आदि। इनके आधार पर व्यक्तित्व को समझना निरर्थक हेाता है।

कैटल ने शीलगुणों को कई ढंग से विभाजित कर अध्ययन किया है। प्रमुख विभाजन निम्न प्रकार है:-

i. **सतही-शीलगुण-** इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के ऊपरी सतह या परिधि पर होता है। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती हैं कि इस शीलगुण के विषय में कोई दूसरा मत हो ही नहीं सकता। जैसे प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा ये शीलगुण व्यक्ति के दिन प्रतिदिन की अन्तःक्रियाओं में स्पष्ट रूप से होते हैं।
ii. **स्रोत या मूल शीलगुण-** कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तित्व की अधिक महत्वपूर्ण संरचना है। इनकी संख्या सतही शीलगुण से कम होती है। कैटेल के अनुसार मूलशील गुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना है जिसके बारे में हमें तब ज्ञान होता है जब हम इसे और संबन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे सामुदायिकता, निःस्वाथर्ता

तथा हास्य ऐसे सतही शीलगुण हैं। जिनके एक साथ मिलने से एक नया मूल शीलगुण बनता है, जिसे मित्रता कहते हैं।

कोस्टा एवं मैकेक्रे (1994), होगन (1983) आदि शोधकर्ताओं के बीच निम्नलिखित 5 विमाओं पर सहमति हुई है जो द्विध्रुवीय हैं।

- बहिर्मुखता-व्यक्तित्व की यह एक ऐसी विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति सामाजिक, मजाकिया, स्नेहपूर्ण, बातूनी, आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी तरफ संयमी, गंभीर, रूखापन, शान्त, सचेत रहने का शीलगुण दिखाता है। इस तरह इस बहिमुर्खता को एक द्विध्रुवीय विमा माना गया है।
- सहमति जन्यता-इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी दूसरे पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा, सादा उत्तम प्रकृति आदि से संबन्धी व्यवहार करता है। दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा ,जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता है।
- कर्तव्यनिष्ठता- इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच विचार कर व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोचे समझे, असावधानी पूर्वक कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है।
- स्नायुविकृति-इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत, संतुलित, रोगभ्रमी विचारों से अपने आपको मुक्त पाता है तो दूसरी ओर वह कभी कभी अपने आपको सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से धिरा हुआ पाता है।
- अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति- इस विमा में कभी कभी व्यक्ति एक तरह काफी संवेदनशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर वह काफी असंवेदनशील, रूखा, संकीर्ण, असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहारों से संबद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपरोक्त पाँच शीलगुणों को नारमन (1963) ने "दि विग फाइव" की संज्ञा दिया है जो आलपोर्ट कैटल आदि द्वारा किए गये शोधों पर आधारित है।

13.5.2 व्यक्तिगत विशेषता एवं स्वास्थ्य: स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य से है।

जैविक कारक

i. शारीरिक संरचना तथा शारीरिक स्वास्थ्य- शारीरिक संरचना का अर्थ कद, रंग, गठन आदि से है। जिस व्यक्ति की संरचना सुडौल होती है उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होता है। शारीरिक रचना से संबन्धित शीलगुण वंशानुगत होते हैं। शारीरिक रचना तथा स्वास्थ्य से बच्चों के मानसिक गुणों का निर्धारण होता है। प्रायः यह देखा गया है कि जिन बच्चों या व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य तथा संरचना आकर्षक एवं सुन्दर होती है ऐसे लोगों के प्रति माता पिता, पास पड़ोस के लोग , शिक्षक, मित्र, एवं अन्य लोगों का व्यवहार काफी अनुकूल होता है। फलस्वरूप ऐसें बच्चों में अच्छे सामाजिक शीलगुणों जैसे श्रेष्ठता-भाव, आत्मविश्वास, उत्तरदायित्व सामाजिकता तथा समय निष्ठा आदि का तेजी से विकास होता है। इसके विपरीत अस्वस्थ होने पर लोग उसकी उपेक्षा करते हैं। फलतः व्यक्तियों में हीनता संवेगात्मक अस्थिरता, संकोचशीलता के भाव उत्पन्न होते हैं।

ii. अन्तःस्रावी ग्रन्थियां-इन ग्रथियों से हारमोन्स निकलते हैं जो सीधे रक्त में मिलकर शरीर के विभिन्न भागों को प्रभावित करते हैं इन ग्रन्थियों का विवरण निम्नवत हैं:-

a. पियूष ग्रन्थि- इस ग्रन्थि के अग्रवर्ती भाग से निकलने वाला हारमोन्स सोमैटोट्रोपीन कहलाता है। बचपन में इस हारमोन्स के अधिक निकलने पर शरीर की लम्बाई बढती हैं, कमी होने पर आदमी बौना हो जाता है। ट्रोफिक हारमोन्स अन्य ग्रन्थि जैसे एड्रिनल ग्रन्थि, कण्ठ ग्रन्थि तथा यौन ग्रन्थि के कार्यों पर नियंत्रण रखता है।

b. एड्रिनल ग्रन्थि- यह ग्रन्थि गुर्दे के ऊपर होती है। इसके बाहरी भाग एड्रिनल वल्कुट से निकलने वाले हारमोन्स ष्कार्टिनष् से कार्बाहाइड्रेट, नमक एवं, चयापचय का नियंत्रण होता है। इस ग्रन्थि के ठीक से कार्य न करने पर शरीर में निष्क्रियता, थकान ,अनिद्रा आती है। कार्टिन की बहुत कमी की स्थिति में बेहोशी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। केटकोल हारमोन्स की कमी से व्यक्ति में भय, क्रोध जैसी आपात स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उपयुक्त मात्रा में खून से मिलने पर सक्रियता बढ जाती है , पाचन क्रिया स्थगित हो जाती है, खून में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। सांवेगिक रूप से सजग होकर व्यक्ति परिस्थिति का सामना करता है।

c. कण्ठ ग्रन्थि- कंठ के पास स्थित इस ग्रन्थि से निकलने वाले थायराक्सीन की कमी से शरीर में चयापचय प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है, शरीर का विकास बाधित हो जाता है। व्यक्ति बौना हो सकता है, माइएक्सडेमा की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। चयापचय की गति मंद पड़ने पर व्यक्ति के हृदय की गति, श्वसनगति, रक्तचाप, शरीर का ताप क्रम सामान्य अवस्था से कम हो जाता है। थायराक्सिन की अधिक मात्रा होने पर व्यक्ति अधिक जोशीला तथा सक्रिय नजर आता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। शरीर का वजन धीरे धीरे कम नजर आता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा वह काफी चिंतित नजर आता है।

d. उपकण्ठ ग्रन्थि- उपकण्ठ ग्रन्थि से निकलने वाला पैराथार्मोन खून में कैल्शियम तथा फास्फेट का नियंत्रण करता है। कैल्सियम स्तर से तंत्रिका ऊतक में होने वाली उत्तेजनशीलता का नियंत्रण होता है। खून में पैराथार्मोन की कमी होने के फलस्वरूप कैल्शियम की मात्रा में कमी हो जाती है। इससे व्यक्ति में शिथिलता बढ़ जाती है और उसके तंत्रिका ऊतक संतोषजनक रूप से कार्य नहीं कर पाते हैं।

e. पैक्रियाज़- यह ग्रन्थि आमाशय के नीचे स्थित होती है। इस ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोन्स इन्सुलिन से रक्त में चीनी की मात्रा नियंत्रित होती है। यदि इन्सुलिन की मात्रा कम निकलती है तो रक्त में चीनी की मात्रा का स्तर अधिक हो जाता है और पेशाब के सहारे चीनी की बढी हुई मात्रा बाहर आने लगती है जिसे हम मधुमेह रोग कहते हैं। इन्सुलिन के बढ़ने पर कभी कभी चीनी का स्तर जरूरत से कम हो जाता है ऐसी अवस्था में व्यक्ति चिंतित नजर आता है। व्यक्ति कभी कभी बेहोशी की दशा में चला जाता है।

f. यौन ग्रन्थि-महिलाओं की यौन ग्रंथि डिम्ब ग्रंथि तथा पुरूषों की डिम्ब ग्रंथि को अंडग्रंथि कहा जाता है। पुरूष की अण्ड ग्रन्थि से एण्ड्रोजन तथा महिलाओं की डिम्ब ग्रंथि से निकलने वाले एस्ट्रोजन से यौन गुणों को ठीक ढंग से कार्य करने में मदद मिलती है। इस प्रकार अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तित्व के शारीरिक शीलगुणों के विकास पर काफी पड़ता है। यद्यपि ये ग्रन्थियां स्वतत्रं रूप से कार्य करती हैं फिर भी आपस में इन ग्रंथियों की अन्तःक्रिया होती है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि किसी एक ग्रन्थि का कार्य कुछ मन्द पड़ जाता है तो उस कार्य को अंशतः दूसरी ग्रन्थि द्वारा पूरा किया जाता है।

iii. स्नायु मण्डल-मनोवैज्ञानिकों का सामान्य विचार यह है कि जिन व्यक्तियों का स्नायुमण्डल अधिक विकसित तथा जटिल होता है, उसकी बुद्धि अधिक होती है, उसमें समायोजन की क्षमता भी अधिक होती है।ऐसे व्यक्तियों में उत्तरदायित्व, समय निष्ठा, सांवेगिक स्थिरता, आत्मविश्वास, अहम शक्ति आदि का विकास तेजी से होता है। स्नायु मण्डल कम विकसित होने पर व्यक्ति कम बुद्धि का होता है तथा उसकी अभियोजन क्षमता भी काफी कम होती हैं। फलस्वरूप लोग उसे घृणा एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं । जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्तियों में असामाजिक शीलगुण तथा चारित्रिक विकृति विकसित हो जाती है।

पर्यावरणीय कारक

i. सामाजिक स्वास्थ्य- सामाजिक समूह, सामाजिक संस्थानों, परिवार,पास पड़ोस आदि का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर काफी पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों के प्रयोग से स्पष्ट हो गया है कि अधिक दुलार प्यार देने वाले माता पिता के बच्चों में बड़ा होकर असुरक्षा की भावना, घबराहट का

शीलगुण तथा समायोजन से संबन्धित समस्याएं अधिक होती हैं। सख्ती से पेश आने वाले माता पिता के बच्चों में अधीनस्थता का गुण अधिक विकसित हो जाता है। माता पिता से उचित मात्रा में प्यार न मिलने पर बच्चे लज्जालु तथा सांवेगिक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। परिवारिक स्नेह एवं अनुराग में पलने वाले बच्चों में श्रेष्ठता का भाव आत्मविश्वास तथा विश्वसनीयता का गुण विकसित होता है। झगड़ालू परिवार के बच्चों में हीनता का भाव अन्तर्मुखता सांवेगिक अस्थिरता आदि का शीलगुण अधिक विकसित हाते पाया जाता हैं। व्यक्तित्व के विकास पर जन्मक्रम का भी प्रभाव देखा गया है। प्रथम जन्मक्रम के बच्चे एकान्तप्रिय एवं अन्तर्मुखी होते हैं। सबसे अधिक अंतिम जन्मक्रम वाले बच्चों में हीनता का भाव अधिक होता है, आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास की कमी देखी गई है। इकलौते बच्चों में दूसरे पर निर्भरता तथा आत्मकेद्रिता आदि शीलगुण विकसित होते हैं। एडलर के अनुसार मध्य जन्मक्रम वाले बच्चों में आत्मविश्वास तथा अहमशक्ति अधिक होती हैं। इसी प्रकार स्कूल के शिक्षकों के पास पड़ोस में निवास करने वाले सभ्य पढ़े लिखे व्यक्तियों तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा प्रशंसा तथा अनुमोदन का भी प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। यदि पास पड़ोस में चोर डकैत , अपराधी व्यक्ति अधिक होते हैं तो बच्चे भी उन व्यवहारों का अनुकरण करने लगते हैं। दूसरी तरफ जिन व्यक्तियों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्ति नहीं होती, उनमें अन्तर्मुखता आत्महीनता, सामाजिक अभियोजन की कमी आदि शीलगुण विकसित हो जाते हैं।

ii. सांस्कृतिक स्वास्थ्य- मानवशास्त्री महिला मींड के अध्ययन के अनुसार ऐरापेश जनजाति के स्त्री तथा पुरूष दोनों में ही नारित्व के शीलगुण की प्रशंसा की जाती है। फलस्वरूप ऐरापेश जाति के व्यक्तियों में आत्मविश्वास सहयेाग की भावना शान्तिप्रियता आदि शीलगुण होते हैं। मुण्डुगुमोर और जनजाति की संस्कृति में पुरूषत्व संबंधी गुणों पर अधिक जोर दिया जाता है। स्त्री या पुरूष दोनों को ही आक्रामणशीलता तथा विद्रोही निश्चित रूप से बनना अच्छा समझा जाता है। फलतः इनका कार्डियल शीलगुण आक्रमणशीलता तथा झगड़ालूपन होता है। "शाम्बुली'' की संस्कृति में पुरूष वही काम करते हैं जो हमारे समाज में नारियां करती हैं और नारियां वही काम करती हैं जो हमारे समाज मे पुरूष करते हैं। फलतः पुरूषों मे विनम्रता, लज्जालुपन, सहयोगिता आदि अधिक होता है तथा नारियों में पुरूषत्व का गुण जैसे आक्रामकता, प्रभुत्व आदि गुण पाये जाते हैं। प्रयोगात्मक तथा मानवशास्त्रीय सबूतों के आधार पर यह निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर संस्कृति के रीति रिवाजों, प्रथाओं का काफी प्रभाव पड़ता है।

iii. आध्यात्मिक स्वास्थ्य-आध्यात्मिक स्वास्थ्य को पारिभाषित करना अपेक्षाकृत कठिन है। प्रत्येक सामाज में कुछ धार्मिक एवं नैतिक मान्यताएं होती हैं। स्वस्थ व्यक्ति ऐसी मान्यताओं को स्वीकार करता है तथा तदनुसार व्यवहार भी करता है। दूसरों की सहायता करना, किसी को कष्ट न

पहुँचाना, परमार्थ करना, मान्यताओं को मानना आदि आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ लक्षण हैं।

iv. आर्थिक स्वास्थ्य-स्टेंगनर (Stanger 1935) के अनुसार गरीब परिवार के छात्रों में हीनता का भाव, सांवेगिक अस्थिरता, शर्मीलापन तथा सामजिक अगुवाई की कमी आदि औसत परिवार के छात्रों की अपेक्षा अधिक देखी गई है, परंतु कभी कभी ऐसा नहीं दिखाई देता है। स्व. लाल बहादुर शास्त्री, भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन दोनों ही प्रकार के कारकों का संयुक्त प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।

13.6 स्वस्थ जीवन शैली को प्रोत्साहित करना (Promotion of Health Lifestyle)

13.6.1 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत

एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति के अनोखेपन पर बल डालता है। जैविक अभिप्रेरण तथा लक्ष्य की सर्वव्यापकता को स्वीकार नहीं किया गया है। एडलर का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्राणी होता है, वह जैविक प्राणी नहीं है। अतःव्यक्तित्व का निर्धारण वैयक्तिक, सामाजिक वातावरण तथा उनके अन्तःक्रियाओं द्वारा होता है। जैविक आवश्यकताओं द्वारा व्यक्तित्व का निर्धारण नहीं होता है। सभी मनोवैज्ञानिक घटनाएं व्यक्ति के भीतर आत्मसंगत ढंग से स्वीकृत होती हैं। व्यक्ति का आत्मनिष्ठ विचार या मत से उसके व्यवहार तथा व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। कल्पित लक्ष्य हमारे वर्तमान व्यवहार को निर्देशित करते हैं। एडलर का मत हैं कि व्यक्ति का मुख्य लक्ष्य एक कल्पित लक्ष्य होता हैं जिसकी सत्यता की जाँच नहीं की जा सकती है। उनका व्यवहार इसी कल्पित लक्ष्य द्वारा निर्देशित होता हैं। जैसे- कुछ लोगों का मानना है कि यदि वे पृथ्वी पर ईमानदारी से जीवन व्यतीत करेगें तो स्वर्ग मिलेगा। यहाँ स्वर्ग एक कल्पित लक्ष्य है जिसकी जाँच संभव नहीं है। एडलर ने स्पष्ट किया कि अंगहीनता से अधिक महत्वपूर्ण अंगहीनता से उत्पन्न हीन भावना है , क्योंकि इसी हीनभावना से प्रेरित होकर वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए प्रयास करता है एवं अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। जैसे भारत में सूरदास ने नेत्र हीन होकर भी एक महान कवि बनकर दिखाया।

एडलर ने व्यक्तित्व विकास पर बच्चों के जन्मक्रम के पड़ने वाले प्रभावों का भी वर्णन किया है। सफलता व पूर्णता की कोशिश से एडलर का तात्पर्य पूर्णता की प्राप्ति की ओर बढ़ने की मौलिक प्रेरणा से होता है। इसे एडलर ने जीवन का एक ऐसा मौलिक अभिप्रेरण या तथ्य माना है जिसके अभाव में जीवन के अस्तित्व कें बारे में सोचा ही नहीं जा सकता। सामाजिक अभिरूचि भी प्रत्येक व्यक्ति में अन्तःशक्ति के रूप मे विदित होती है। इसे एडलर ने जन्मजात प्रक्रिया कहा है। इसका विकास बाद में एक सामाजिक वातावरण में माता पिता के साथ अन्तःक्रियाओं द्वारा तथा पति पत्नी के बीच की अन्तःक्रियाओं को देख कर होता

है। जिन व्यक्तियों की सामाजिक अभिरूचि जितनी ही विस्तृत परिपक्व विकसित होती हैं, उसका मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होता हैं। यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है। एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग जीवन शैली है। जीवन शैली से तात्पर्य शील गुणों व्यवहारों, आदतों के एक ऐसे पैटर्न से है जिसे एक साथ मिला देने पर एक ऐसे पैटर्न का पता चलता है जिसका उपयोग करके व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य पर पहुँचने की कोशिश करता है। एडलर की पूर्व कल्पना है कि व्यक्ति की जीवन शैली व्यक्ति के सर्जनात्मक शक्ति द्वारा विकसित होती है। प्रत्येक व्यक्ति में , जीवन शैली के निर्माण एवं विकसित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है ।

13.6.2 जीवन शैली-अर्थ प्रकार एवं निर्माण

एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग जीवन जीवन शैली से तात्पर्य शीलगुणों व्यवहारों, आदतों के एक ऐसे अपूर्व पैटर्न से होता है जिसे एक साथ मिला देने पर, एक ऐसे पैटर्न का पता चलता है जिसका उपयोग करके व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य पर पहुँचने की कोशिश करता है। जीवन शैली में सिर्फ व्यक्ति का जीवन लक्ष्य ही नहीं बल्कि उसके आत्म संप्रत्यय, दूसरों के प्रति भाव तथा पर्यावरण के अन्य वस्तुओं के प्रति मनोवृत्ति आदि भी सम्मलित होते हैं। व्यक्ति की जीवन शैली पर्यावरण अनुवांशिकता, सफलता के लक्ष्य, सामाजिक अभिसन्धि तथा सर्जनात्मक शक्ति आदि का प्रतिफल होता है। एडलर ने जीवनशैली को एक प्रमुख नियंत्रक बल माना है। अतः यह फ्रायड द्वारा सम्पादित संम्प्रत्यय अहं के तुल्य संप्रत्यय हैं, इसमें अहं तथा पराहं जैसे कारक सम्मिलित नहीं होते हैं। एडलर के अनुसार जीवन शैली के प्रकार:-

- अधिकार दिखाने वाले- ऐसे व्यक्ति दूसरां पर अधिकार दिखाने वाले तथा आक्रामक व्यवहार करने वाले होते हैं। ऐसे लोग अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए असामाजिक तरीके से पेश आने में हिचकिचाते नहीं हैं। उनमें सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है। अतः इनकी सक्रियता में असामाजिकता की दुर्गन्ध आती है।

  - प्राप्त करने वाले अधिकार- ऐसे लोग दूसरों से अधिक प्राप्त करना चाहते है। इनमें दूसरों पर निर्भरता अधिक होती है। इनमें सामाजिक अभिरूचि की कमी होती है। परिस्थिति तनावपूर्ण होने पर ऐसे व्यक्ति स्नायु रोगी हो जाते हैं।

  - दूर हट जाने वाले प्रकार- ऐसे लोगों में सामान्य वातावरण तथा परिस्थिति का सामना न करके हट जाने की प्रवृत्ति तीव्र होती है। ऐसे लोग जीवन की समस्याओं को ठीक ढंग से समाधान नहीं

कर पाते हैं और उनके संभावित असफलता का अनुमान करके पहले ही उससे दूर हट जाते हैं। ऐसे लोगों में भी सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है।

- ❖ सामाजिक रूप से उपयोगी प्रकार-ऐसे लोग समाजोपयोगी व्यवहार अधिक करते है इनमें सामाजिक अभिरूचि अधिक पायी जाती है। ऐसे लोग सामाजिक समस्या के समाधान में आम लोगों की सहायता को अति आवश्यक मानते हैं।

- ❖ तुच्छ प्रकार- इनमें आंगिक हीनता की भावना होती है। अंगिक हीनता की क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों से पलायन करना चाहते हैं। इसी में संतुष्ट रहते हैं।

- ❖ अतिस्नेह प्रकार- अतिस्नेही प्रकार के व्यक्ति अधिक स्वार्थी एवं आत्मकेंद्रित होते हैं। सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है ।

- ❖ तिरिस्कृत शैली-ऐसे व्यक्ति को चेतन रूप से अपने आपको बर्बाद करने में आनन्द मिलता है।

- ❖ जीवन शैली का निर्माण- जीवन शैली का निर्माण चार या पाँच साल की आयु तक हो जाता है जीवन शैली के निर्माण के बाद उसमें परिवर्तन साधारणतया संभव नहीं होता है। बाद में इसका विस्तारण एवं वर्धन ही होता है।

13.6.3 स्वस्थ जीवन शैली का निर्माण एवं प्रोत्साहन

एडलर के व्यक्तित्व सिद्धांत से स्पष्ट हैं कि जीवन शैली धनात्मक भी हो सकती है, ऋणात्मक भी हो सकती है। अर्थात स्वस्थ जीवन शैली, स्वास्थ्य पर्यावरण स्वस्थ अनुवांशिकता, धनात्मक सफलता के अनुरूप लक्ष्य स्वस्थ सामाजिक अभिरूचि एवं सर्जनात्मक शक्ति का प्रतिफल हेाती हैं। इस प्रकार एडलर के द्वारा निर्धारित प्रकारों में से जीवन शैली जो समाजोपयोगी हो वही स्वस्थ्य जीवन शैली कही जा सकती हैं। अन्य जीवन शैली दोषपूर्ण जीवन शैली के अन्तर्गत कही जा सकती हैं। स्वस्थ जीवनशैली प्रारम्भिक जीवन में निर्मित होती है इसके बाद जीवनशैली के अनुसार अनुभव एकत्र किये जाते है तथा उपयोग में लाये जाते हैं। अभिवृत्ति, भाव, संप्रत्यक्षण आदि प्रारंभिक जीवन में निश्चित हो जाते है। इसके बाद जीवन शैली में परिवर्तन नहीं हेाता है। व्यक्ति अपने जीवनशैली को व्यक्त करने का नया रूप अर्जित कर सकता है। व्यक्ति जो भी करता है उसका निर्धारण जीवनशैली द्वारा होता है इसके द्वारा इस तथ्य का भी निर्धारण होता हैं कि व्यक्ति पर्यावरण के किस पहलू पर ध्यान देगा तथा किसकी उपेक्षा करेगा। यदि वह धनात्मक पहलू पर ध्यान देता है तो उसकी जीवनशैली स्वस्थ जीवनशैली होती है। स्पष्ट है कि स्वस्थ जीवनशैली वाल्य काल से ही प्रोत्साहित की जा सकती हैं, इसके बाद की आयु में जीवनशैली में मात्र विस्तरण एवं विवर्धन ही हो सकता है। अतः स्वस्थ जीवनशैली उत्पन्न करने हेतु बाल्यावस्था में ही बालकों को स्वस्थ

पर्यावरण प्रदान करना आवश्यक हैं। अतः यह माँ बाप , परिवार तथा निकटस्थ सामाजिक परिवेश के पूर्णव्यवहार बालक को स्वस्थ जीवन शैली प्रदान करने में सहायक होते हैं।

स्वस्थ जीवन शैली के प्रमुख कारक-

i. कल्पित लक्ष्य- एडलर के अनुसार व्यक्ति के जीवन का मुख्य लक्ष्य कल्पित लक्ष्य होता है, जिसकी सत्यता की जांच नहीं की जा सकती है। जैसे कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि यदि हम पृथ्वी पर इमानदारी से जीवन व्यतीत करेगें तो उन्हें स्वर्ग मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि इन लोगो का लक्ष्य स्वर्ग प्राप्ति है , इसी विश्वास पर वे ईमानदारी से काम करते हैं। इमानदारी स्वस्थ जीवनशैली का एक अंग है।

ii. हीनता भाव एवं क्षतिपूर्ति- एडलर (1907) के अनुसार जिन व्यक्तियों में आंगिक हीनता जैसे दृष्टि दोष, सुनने का दोष, बोलने का दोष होता है वे अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठता स्थापित करके इस कमी की क्षतिपूर्ति करने की कोशिश करते हैं। अपनी हीनता भाव दूर करके धनात्मक व्यक्तित्व विकास का प्रयास की शुरूआत बाल्यावस्था से ही होता हैं। बच्चा अपने को वयस्क की तुलना में छोटा समझता है। इसे बच्चा अपनी निःसहायता, निर्भयता के वातावरण के कारण विकसित करता है। इस तरह की हीनता का भाव बच्चों को श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा जगाता हैं। बच्चे इस हीनता के भाव को दूर करने के लिऐ अथक परिश्रम एवं अभ्यास करते हैं, और कुछ श्रेष्ठ उपलब्धि प्राप्त करके हीनता की भावना से उत्पन्न क्षति की प्रतिपूर्ति करते हैं।डेमस्थनीज, जो बचपन में हकलाता था बाद में विश्व का एक महान वक्ता बना। इसी प्रकार रूज़वेल्ट जो बचपन में दुर्बल था, अभ्यास से वह हट्टा कट्टा हो गया।

iii. जन्मक्रम- व्यक्तित्व के सामाजिक निर्धारको में जन्मक्रम का प्रभाव महत्वपूर्ण हैं। एडलर के प्रेक्षण में प्रथम संताने प्रायःअपराधी, पियकक्ड़ तथा विकृत पायी गयी हैं। द्वितीय संतानें महत्वाकांक्षी पायी गयी हैं। कनिष्ठतम तथा एकल संतानें बिगड़ी हुई पायी गयी हैं। अतः द्वितीय क्रम के बच्चे की जीवनशैली स्वस्थ जीवनशैली मानी जाती है।

iv. सफलता में पूर्णता का प्रयास- सफलता या पूर्णता की कोशिश से एडलर का तात्पर्य, पूर्णता की ओर बढने की मौलिक प्रेरणा है इसे एडलर ने जीवन का एक ऐसा मौलिक अभिप्रेरण या तथ्य माना है , जिसके अभाव में जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। यह एक जन्मजात प्रक्रिया होती है। फिर भी इसका विकास पर्यावरणीय कारकों द्वारा भी होता है।यह अकेला अभिप्रेरक है जो अन्य कई प्रणोदों को निर्धारित करता है। स्नायुरोगियों द्वारा वैयक्तिक श्रेष्ठता का ऋणात्मक मार्ग अपनाया जाता है जबकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति सामाजिक अभिरूचि का मार्ग अपना कर श्रेष्ठता पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। सफलता या पूर्णता की कोशिश में व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुचने में काफी संघर्ष करना पड़ता हैं। इससे तनाव स्तर घटने के बजाय बढ़ जाता हैं।

एडलर की व्याख्या के अनुसार यह प्रक्रिया समाज तथा व्यक्ति के परस्पर सामंजस्य से पूर्ण होती है।

v. सामाजिक अभिरूचि- एडलर के अनुसार मूलत- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह व्यक्तिगत लक्ष्य के साथ साथ सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। सामाजिक अभिरूचि एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे दोनों लक्ष्य प्राप्त करने हेतु व्यक्ति दूसरे व्यक्तियें के साथ सहयोग करता है। सामाजिक अभिरूचि की मात्रा सभी व्यक्तियों में कुछ न कुछ पायी जाती है। वह अपराधी भी हो सकता है मनोविकृत या मानसिक रूप से स्वस्थ भी हो सकता है। यह एक अंतःशक्ति हैं। एडलर ने इसे एक जन्मजात प्रकिया कहा है। बाद में इसका विकास सामाजिक वातावरण जैसे माता पिता के साथ अन्तःक्रियाओं द्वारा तथा पति पत्नी के बीच की अन्तःक्रियाओं को देखकर होता है। जिन व्यक्तियों की सामाजिक अभिरूचि जितनी ही विस्तृत, परिपक्व एवं विकसित होती है, उसका मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होता है। यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है। सामान्य या मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वास्तविक ढंग से दूसरे के साथ सहयोग करने के लिये चिंतित रहता है, और उनकी श्रेष्ठता का लक्ष्य सामाजिक होता है, जिसमें अन्य लोगों की भलाई की उन्मुखता होती है। कुसमायोजित व्यक्तियों में सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है। ऐसे व्यक्तियों की जिन्दगी का अर्थ लगभग सम्पूर्ण व्यक्तिगत होता है।

vi. सृजनात्मक शक्ति- एडलर की एक पूर्वकल्पना है कि व्यक्ति की जीवन शैली उसके सर्जनात्मक शक्ति द्वारा विकसित होती है। प्रत्येक व्यक्ति में अपने व्यक्तित्व को खास ढंग से विकसित करने की स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार के लिए स्वयं उत्तरदायी है। इसी सर्जनात्मक शक्ति के द्वारा उसके जीवन का लक्ष्य निर्धारित होता है। इसी से यह भी तय होता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुचने के लिए कौन कौन सी विधियां अपनाएगा तथा व्यक्ति के सामाजिक अभिरूचि का भी विकास होता है। सर्जनात्मक शक्ति द्वारा व्यक्ति का प्रत्यक्षण,स्मृति, कल्पना, स्वप्न, दिवास्वप्न आदि का भी निर्धारण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सर्जनात्मक शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को एक स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की दिशा में उत्तम योगदान करता है। इस प्रकार स्वस्थ जीवनशैली निर्वहन करने वाले व्यक्तियों में सामाजिकता अधिक पायी जाती है। ये लोग समाजोपयोगी व्यवहार अधिक करते हैं। इनमें सामाजिक अभिरूचि अधिक पायी जाती हैं। ऐसे व्यक्ति अधिक सक्रीय होते हैं उनकी सामाजिक क्रियाओं में जिन्दादिली अधिक पायी जाती है। ऐसे लोग दोस्ती पेशा तथा स्नेह को प्रमुख सामाजिक समंस्या के रूप में देखते हैं। ऐसे लोग सामाजिक समस्या के समाधान के लिए आगे बढ कर लोगों की सहायता करना आवश्यक समझते हैं। इनके दृष्टिकोण सदैव धनात्मक तथा सर्जनात्मक होते हैं।

13.7 सारांश (Summary)

- तनाव,परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गई एक विशेष अनुक्रिया होती है, जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यों को विघटित होते पाया है।
- स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य।
- व्यक्तित्व व्यक्ति के अंदर उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है जो उसके परिवेश के साथ उसके अनोखे समायोजन का निर्धारण करता है।
- शरीर में रासायनिक परिवर्तन के कारण हम कभी सक्रिय, कभी निष्क्रिय, तथा कभी विषादी हो जाते हैं।
- सक्रियता या निष्क्रियता या विषाद का कारण अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोन्स हो सकते हैं।
- पियूष ग्रन्थि, शरीर की लम्बाई , एड्रीनल ग्रंथि, कण्ठ ग्रन्थि तथा यौन ग्रन्थि के कार्यों पर नियंत्रण करती है।
- पैनक्रियाज ग्रन्थि से निकलने वाले इन्सुलिन से रक्त मे चीनी की मात्रा का नियंत्रण होता है।
- विकसित स्नायुमण्डल वुद्धि विकास की सूचक है।
- सख्ती से पेश आने पर माता पिता के बच्चों में अधीनस्थता का गुण अधिक विकसित हो जाता हैं।
- सामाजिक अभिरूचि में मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मानसिक स्वास्थ्य का बैरोमीटर कहा है।

13.8 शब्दावली (Vocablary)

1. अनुरक्षण - रोकथाम , रखरखाव
2. दैहिक - शारीरिक
3. विघटन - क्षरण , खराब
4. भावशून्यता - उदासीनता
5. आसेधक - तनाव के कारक
6. स्वायत्त - स्वशासित

13.9 निबंधात्मक प्रश्न (Essay type of Questions)

1. सामाजिक तनाव किसे कहते हैं? मनोवैज्ञानिक तनाव के प्रभाव का वर्णन करें।
2. सामाजिक तनाव के प्रमुख कारणों एवं प्रभावों पर प्रकाश डालें।
3. खराब स्वास्थ्य के कारणों का वर्णन करें।
4. शारीरिक रचना एवं पियूष ग्रन्थि, थायरायड ग्रन्थि के प्रभावों का वर्णन करें।
5. स्वस्थ जीवन शैली की व्याख्या करें ।

13.10 संन्दर्भ ग्रंथ सूची (Refernce)

1. सिंह आर. एन.,(2005-2008)आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान , अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा-
2. सिंह आर. एन.,(2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के., (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य, (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच . पी . भार्गव बुक हाउस आगरा।
5. भटनागर ए.बी.एवं अन्य -डेवलपमेन्ट आफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपाट मेरठ।
6. रोबर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एम. आइ् दृई दृपटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
7. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान सुमित भार्गव , गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी।
8. मुहम्मद सुलेमान(2006)सामान्य मनोविज्ञान , मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।

इकाई 14: समाज मनोविज्ञान एवं न्याय तंत्र (Social Psychology and Justice System)

इकाई संरचना-

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की कानूनी प्रविधि से संबंधित सामाजिक मनोविज्ञान

14.3.1 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की मुख्य प्रक्रियाएं

14.3.2 पुलिस कार्यवाही का विस्तृत प्रभाव

14.3.3 निरपराध के द्वारा की गई गलत स्वीकारोक्ति

14.3.4 सूचना तंत्रों का पब्लिक प्रभाव

14.4 प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य

14.4.1 साक्ष्यों के गलत होने के कारण

14.4.2 प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य में सच्चाई की वृद्धि

14.4.3 एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष

14.5 सारांश

14.6 शब्दावली

14.7 अभ्यास प्रश्न

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव प्रवृत्ति में अनेक प्रकार की विभिन्नताएं होती हैं। प्रवृत्ति के अनुसार उनके व्यवहार भी अलग होते हैं। सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक या मनोवैज्ञानिक कारण से कोई अपराधी भी हो सकता है। अपराधी को दण्ड देने में न्यायालय की निष्पक्षता महत्वपूर्ण होती है। अपराधी को सजा तो मिलनी चाहिए परन्तु ऐसा न हो कि कोई निरपराधी व्यक्ति को दण्ड मिल जाये। अपराध से जुड़ी इच्छाओं अपराधिक उत्प्रेरण, अपराध से संबंधित मिले प्रमाणों की यथार्थता की जाँच आदि का अध्ययन, न्यायकर्ता की निष्पक्षता के लिए आवश्यक होती है। वकीलों, जूरियो न्यायाधीशों तथा गवाहों के मानसिक लक्षणों का भी अध्ययन आवश्यक होता है। वर्णित समस्त विषय मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय-वस्तु है। मनोविज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों द्वारा पता लगाया है कि अधिकांश अपराधी असंतुलित मनःस्थिति या किंन्हीं अन्य मनोवैज्ञानिक कारणों से अपराध करते हैं। अपराध के इन कारणों का निदान करके अपराधी को सुधारा जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों की इसी अवधारणा के कारण आज दण्ड का लक्ष्य अपराधी को दण्डित करना नहीं बल्कि उसका सुधार करना है। इस प्रकार अपराध एवं सुधारात्मक दण्ड की प्रक्रिया में जहां कानून एवं न्याय की अहम् भूमिका है वहीं पर इस क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता भी बहुत अधिक है।

14.2 उद्देश्य (Objective)

1. इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप न्यायिक क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
2. अभियुक्त के आपराधिक इतिहास एवं इसके अपराधी होने के पीछे पाये जाने वाले मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाकर अपराधी में सुधार लाने का प्रयास कर सकेंगे।
3. अपराध से संबंधित मनोवैज्ञानिक प्रमाणों की याथार्थता की जाँच का अध्ययन कर न्यायालय की निष्पक्षता बनाए रखने में मदद कर सकेंगे। किसी निरपराधी व्यक्ति को दण्डित होने से बचा सकेंगे।

वकीलों, जूरियो, न्यायाधीशों तथा गवाहों के मानसिक लक्षणों का अध्ययन कर निष्पक्ष न्याय को दिशा प्रदान करने में मदद कर सकेंगे।

14.3 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की कानूनी प्रविधि से संबंधित सामाजिक मनोविज्ञान (social psychology related to pre-trial legal procedure)

यद्यपि अपराधी कानूनी प्रक्रिया से संबंधित पुलिस,वकील, प्रतिवादी, न्यायाधीश आदि सभी वही करने का प्रयास करते है जिसे वे सही समझते है, परंतु प्रत्यक्षण, संज्ञानात्मक तथ्य, भावनाएं व्यवहार एवं व्यक्तियों के निर्णय अन्य कारकों से प्रभावित होकर सच्चाई एवं न्याय को प्रभावित करते हैं। फलतः कानूनी सामाजिक मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है जो विधिक प्रक्रिया पर वैज्ञानिक कारकों के प्रभाव का पता लगाने में सहायता करते हैं। यही प्रभावी कारक न्यायालय में उसी प्रकार कार्य करते हैं जैसे मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाऐं। इसका परिणाम यह होता है कि न्यायिक निर्णय कुछ सीमा तक अशुद्ध हो जाते हैं।

14.3.1 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की मुख्य प्रक्रियाएं: किसी भी अपराधिक घटना में प्रभावित व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी, संभावित अपराधी (अभियुक्त) अथवा घटना स्थल की परिस्थिति मुख्य साक्ष्य होते हैं। उक्त व्यक्तियों से घटना से संबंधित प्रश्न करने पर जो उत्तर मिलता है एवं घटना स्थल की परिस्थितियों को मिलाकर घटना कहानी का निर्माण कर संभावित अपराधिक कानून जिसका उलंघन हुआ है का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक की कार्यवाही ट्रायल के पूर्व की कार्यवाही होती है। प्रकरण को न्यायालय में जाने से पूर्व घटना की जाँच पुलिस द्वारा की जाती है तथा घटना की पूरी सूचना, सूचना तंत्रों द्वारा भी एकत्रित की जाती है। अतः स्पष्ट है कि ट्रायल से पूर्व गवाहों, संभावित अभियुक्त एवं प्रभावित व्यक्तियों से पुलिस द्वारा किये गये प्रश्नों के प्रभावों एवं मामले से संबंधित सूचना तंत्रों द्वारा प्रचारित सूचना ही ट्रायल की दिशा तय करते हैं। पुलिस द्वारा गवाहों से लिये गये प्रभावी साक्षात्कार इस बात पर निर्भर करते हैं कि पुलिस द्वारा सूचना प्राप्त करने हेतु किस तरह का रास्ता अपनाया गया है। गवाहों का बयान पुलिस के किसी दबाव में नहीं लिया गया है।

14.3.2 पुलिस कार्यवाही का विस्तृत प्रभाव: अनेक कानूनविदों का मानना है कि सामान्यतः लोग स्वयं की अभिरूचि से प्रेरित होकर न्यायिक निर्णयों को मानते हैं। (Misconception 1997) सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों के अनुसार संभवतः अधिकांश लोक कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणाम को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें यह विश्वास रहता है कि कानून एवं प्रक्रिया साफ सुथरी है। न्यायिक निर्णय भेदभाव पूर्ण नहीं है (Miller & Ratner 1996, Tyler et al 1997) प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास विधिक प्रक्रिया पर उसके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित होता है। इस प्रकार का व्यक्तिगत अनुभव पुलिस से ही प्रारम्भ होता है। साक्ष्यों के इन्टरव्यू के प्रायः दो उद्देश्य होते हैं। पहला उद्देश्य तो यह होता है कि संभावित अपराधी (अभियुक्त) किसी भी प्रकार अपना अपराध स्वीकार कर लें। दूसरा उद्देश्य यह होता है कि सच्चाई जानने के लिए अन्य साक्ष्यों को एकत्रित कर एक दूसरे से सह संबंधित करना

होता है। दूसरे तरीके से लक्ष्य प्राप्त करने हेतु मित्रवत एवं सहकारी व्यवहार से साक्ष्यों के बयान लेना उचित होता है। इसके विपरीत गुस्से से डरा धमका कर लिये गये बयान से न्यायिक प्रक्रिया प्रदूषित होती है। इसी प्रकार अभियुक्त, साक्षी या प्रभावित व्यक्ति यदि मानसिक रूप से अस्वस्थ है, अति उत्साही है तो बीमारी के प्रभाव में गलत बयान दे सकता है। (पियर्स 1995) प्रश्न करने का चाहे जो भी स्टाइल हो परंतु स्थान का भी साक्ष्यों पर प्रभाव पड़ता है। जैसे पुलिस यदि पुलिस स्टेशन पर बुलाकर प्रश्न करती है तो पुलिस स्टेशन का भय उसे हो सकता है। अतः इसी दृष्टिकोण से यह उचित है कि वह साक्ष्य/अभियुक्त के घर या उसके कार्यस्थल पर ही प्रश्न कर उसका बयान ले। साक्षात्कार के समय अभियुक्त से कोई बहस नहीं की जा सकती। वह कोई अवरोध भी नहीं उत्पन्न कर सकता। संभावित अपराधी के ऊपर समाज के प्रभाव का भी दबाव रहता है। उक्त सभी परिस्थितियों में निम्नलिखित तीन कारक साक्ष्य/संभावित अभियुक्त को उत्तर देने के लिए कार्य करते हैं।

i. ठीक उत्तर के प्रति अनिश्चितता बनी रहती है।
ii. प्रश्न पूछने वाले अधिकारी के प्रति कुछ अंशों तक विश्वास
iii. एक मूक प्रत्याशी ही वह उत्तर जानता है।

इन कारणों से साक्षी, अभियुक्त यह नहीं कह पाता कि मैं नहीं जानता हूँ। 'मुझे याद नहीं है'। ''मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। अधिकतर लोग कम से कम प्रस्तावित रूप से कोई उत्तर दे देते हैं।

14.3.3 निरपराध के द्वारा की गयी गलत स्वीकारोक्ति: सजा की धमकी से की गयी स्वीकारोक्ति को न्यायाधीश द्वारा अमान्य किया जा सकता है परंतु साक्षी/अभियुक्तों को सहयोग देने एवं दण्ड की प्रक्रिया को साधारण बता कर प्राप्त की गई स्वीकारोक्ति जज द्वारा ग्राहय हो सकती है। साक्ष्य/अभियुक्तों के समक्ष अंगुलियों के फर्जी निशान, पालीग्राफ मशीन के फर्जी परिणाम, प्रत्यक्ष साक्षी की गलत पहचान कराकर एवं गलत सूचना देकर पुलिस एक निरपराध व्यक्ति से स्वीकारोक्ति प्राप्त कर सकती है। धोखाधड़ी से प्राप्त स्वीकृति की शक्ति की जाँच करने के लिए जाँचकर्ता पुलिस द्वारा एक प्रयोग आयोजित किया गया। इस प्रयोग में सभी पुरूष छात्र थे, जो प्रयोगशाला में एक रासायनिक प्रयोग कर रहे थे, जिसमें प्रतिक्रिया का समय निर्धारित था। प्रयोग के दौरान दुर्घटना घट गई और प्रत्येक छात्र को इस समस्या के लिए दोषी मानते हुए उन्हें अभियुक्त मान लिया गया। इस प्रकरण में पुलिस द्वारा निरपराध स्कूल से फर्जी स्वीकारोक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया गया (Kassin & McNall 1991)एक शोधकर्ता अपने एक दूसरे महिला शोधकर्ता के साथ प्रयोगशाला में कार्य कर रहा था। प्रयोग में महिला शोधकर्ता द्वारा अक्षरों की एक सूची से अक्षर बोलना था। इसे पुरूष शोधकर्ता द्वारा इन अक्षरों को कम्प्यूटर के की बोर्ड पर टाइप करना था। इसमें एक विशेष निर्देश यह था कि किसी भी तरह आल्ट की नही दबनी चाहिए। अन्यथा पूरा प्रोग्राम एवं

डाटा समाप्त हो जायेगा। प्रयोग के दौरान एकाएक कम्प्यूटर कार्य करना बन्द कर दिया। प्रोग्राम आंकड़े समाप्त हो गये। इसमें शोधकर्ता द्वारा निम्न कथन किए जा सकते हैं-

i. वह गलत स्वीकारोक्ति कर ले।
ii. वह कह सकता है कि दूसरे शोधकर्ता ने 'आल्ट की' को दबाया है जिसे मैंने दबाते हुए देखा है।
iii. शोधकर्ता दूसरे शोधकर्ता से बातचीत कर स्मरण कराना चाहता है कि किस भूल से आल्ट की दब गयी है।

उपरोक्त प्रकरणों के आधार पर कैसिन (1997) ने यह निष्कर्ष दिया कि वर्तमान में आपराधिक न्याय पद्धति ऐसे निरपराध व्यक्ति, जो अभियुक्त की श्रेणी में आते हैं को पर्याप्त सुरक्षा नहीं प्रदान करती एवं तोड़-मरोड़ गलत तरीके से प्राप्त स्वीकारोक्ति पर विश्वास नहीं करती है।

14.3.4 सूचनातंत्रों का पब्लिक पर प्रभाव: अपराध प्रत्यक्षण पर पब्लिक में सूचना तंत्रों का प्रभाव- प्रत्येक दिन अखबारों, टेलीविजन, रेडियो आदि पर अपराध एवं अपराधियों से संबंधित सूचनाएं बढ़ा-चढ़ा कर दिखायी जाती है। इसका कारण यह है कि जनता ऐसी आपराधिक सूचनाएं देखना, सुनना अधिक पसंद करती है। अच्छे परोपकारी कार्यों पर उनका ध्यान कम जाता है। इससे पब्लिक में यह संदेश जाता है कि आपराधिक घटनाएं बढ़ रही है। कानून एवं व्यवस्था चरमरा गयी है। शासन की अक्षमता बताकर उसे और चुस्त दुरूस्त करने का संदेश जाता है। अपराध का डर अपराध का शिकार होने पर आधारित नहीं है, बल्कि यह एक संज्ञानात्मक कारक है। (Winkel 1998) हम जब भी अपराध की बढ़ती दर एवं इसके खतरे पर सोचते हैं तो हमारा ध्यान मीडिया द्वारा उपलब्ध करायी गयी सूचनाओं पर जाता है। आजकल बलात्कार, अपहरण, कत्ल, डकैती आदि आपराधिक घटनाएं बहुत ही सामान्य हो गई है। ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं थी। मीडिया द्वारा प्रदर्शित सघन आपराधिक समाचार द्वारा हमें अपराध के विषय में जानकारी होती है। क्योंकि धनात्मक सूचनाओं की अपेक्षा ऋणात्मक घटनाएं व्यक्ति पर अधिक संज्ञानात्मक छाप छोड़ती है। (Skowronski & carlston 1989) उदाहरण के लिए यदि हमें सूचना मिलती है कि अमुक व्यक्ति अच्छा कार्य कर रहा है। वह अपने परिवार के लिए समर्पित है तो इस पर लोगों का कम ध्यान जाता है। यदि उसी व्यक्ति के विषय में यह सूचना मिले कि वह बहुत बड़ा अपराधी हो गया है। उस पर एक संगठित अपराधिक समूह से संबंध रखने का दोषारोपण हुआ है। उसका एक विदेशी नृत्यांगना से नाजायज शारीरिक संबंध है। इस प्रकार की नकारात्मक सूचना का जनता में अधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की घटनाएं लोगों को अधिक दिन तक याद रहती हैं। बुरी खबर प्रायः अच्छी खबर की तुलना में अधिक रूचिकर होती है। अच्छी खबरें जैसे अपराधों में कमी स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था, लम्बी जीवन अवधि, बजट की अधिकता, नागरिक उपद्रव की कमी इन धनात्मक समाचारों से बुरे समाचारों की इच्छा पूर्ण नहीं होती है। (Pooley 1997) सम्भवतः हमें संतुष्ट करने के लिए नकारात्मक

घटनाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की हमारी इच्छा विभिन्न प्रकार के सूचना तंत्रों के द्वारा कहानी सहित प्रस्तुत करने पर पूर्ण हो जाती है जैसे कि टीवी में बाहरी आकाश से खतरा प्राकृतिक आपदा एवं एक डूबता हुआ जहाज आदि जैसे प्रसारण हमारी उत्सुकता और बढ़ा देते हैं।

- आरोपी अपराधियों (अभियुक्त) के प्रत्यक्षण पर, पब्लिक में सूचना तंत्रों की रिपोटिंग का प्रभाव- किसी संभावित अपराधी के गिरफ्तार होने की जैसे ही खबर मिलती है, वैसे ही मानव मस्तिष्क में एक चित्र उभर कर आ जाता है कि अपराधी हथकड़ियों में बंधा हुआ, पुलिस अधिकारियों से घिरा हुआ जा रहा है और मीडिया कर्मी उस अपराधी एवं अपराध से संबंधित घटनाओं की रिपोर्टिंग करते रहते हैं उनकी रिपोर्टिंग बहुत रोचक ढंग से होती है। बीच-बीच में मीडिया कर्मी, पब्लिक, पुलिस आफिसर एवं अपराधी से लिए गये साक्षात्कार को दिखाते रहते हैं। ऐसी घटनाओं पर मीडिया कर्मी अपनी प्रतिक्रिया भी देने से नहीं चूकते हैं। चूँकि ऐसी वीडियो रिकार्डिंग प्रायः सभी आपराधिक मामलों में की जाती है और इनका व्यापक रूप से टी. वी. पर प्रसारण भी होता है। अतः ऐसी घटनाओं का चित्र मानव मस्तिष्क में आसानी से आ जाता है तथा आगे भी स्मरण रहता है। यद्यपि इस स्टेज तक अपराधी का अपराध सिद्ध नहीं हुआ रहता है। अतः अपराध सिद्ध होने से पूर्व वह मात्र प्रत्याशित अपराधी है। ट्रायल पूर्ण हो जाने के बाद न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा यदि उसका अपराध सिद्ध हो जात है तो वह अपराधी है। अपराध सिद्ध न होने की दशा ने उसे अपराधी नहीं माना जा सकता है। पब्लिक केवल मीडिया के प्रसारण देखकर प्रथम दृष्टया आरोपी को अपराधी मान लेती है। पब्लिक को ऐसे कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराये जा सकते जिससे उसके निरपराध होने का प्रमाण मिलता हो। इसके अतिरिक्त मीडिया की स्वीकारोक्ति पर पब्लिक के विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है। (Gilbert, Tafarodi & Malone 1993) अपराध हमेशा भयानक होता है। अतः लोग मामले का शीघ्र निस्तारण कर आरोपी के अपराध को सुनिश्चित कराना चाहते हैं अथवा असली अपराधी का पता लगाने में शीघ्रता चाहते हैं। अतः पब्लिक में गिरफ्तार व्यक्ति का प्रत्यक्षण एक अपराधी के रूप में होता है। मुख्य विचारणीय बिंदु यह है कि किसी अपराधी के आरोपी होने या न होने से संबंधित साक्ष्य पुलिस की जाँच के उपरान्त न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैं। साक्ष्य संबंधी न्यायालय की इस प्रक्रिया के बहुत पहले पब्लिक संभावित अपराधी को अपराधी मान लेती है। परीक्षण के पूर्व के प्रचार एवं इससे उत्पन्न पब्लिक अवधारणा से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है। इनका प्रभाव न्यायिक निर्णय को भी प्रभावित कर सकता है। अतः किसी अपराधिक घटना के विषय में विस्तृत रूप से सुनने एवं टी.बी. या अखबारों में देखने व पढ़ने से यह नहीं समझना चाहिए कि अपराधिक मामला सुलझ गया है या आरोपी का अपराध सिद्ध हो गया है। अपराध सिद्ध या निरपराधी सुनिश्चित करने से पहले एक आरोपण, एक परीक्षण प्रतिवादी के पक्ष में अथवा विपक्ष में साक्ष्य प्रस्तुतीकरण कानूनी विषय का सूक्ष्म निरीक्षण एवं

न्यायिक सदस्यों में सहमति उत्पन्न करना आवश्यक होता है। अतः स्मरण रहे कि एक आरोपी के मात्र गिरफ्तार हो जाने वे स्वतः अपराधी नहीं हो जाता है। न्यायिक परीक्षण से पूर्व वह मात्र आरोपी/प्रत्याशित अभियुक्त (accused) होता है। यह अवश्य है कि मीडिया के प्रचार-प्रसार से न्यायिक प्रक्रिया में कुछ सीमा तक सहायता मिल सकती है। इस आधार पर पब्लिक को सरकार का ध्यान आकृष्ट करने में भी मदद मिलती है।

14.4 प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य (Eyewitness Testimony)

साक्ष्य ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को स्वयं अपनी आँखों से देखा है या कानों से सुना है या मामले से संबंधित कुछ विश्वसनीय प्रेक्षण किया है को न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत शपथ लेकर बयान देने हेतु बुलाया जा सकता है। इन्हें साक्षी कहा जाता है। प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य (Eye witness) -उपरोक्त साक्षियों में से ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा है वे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अन्तर्गत आते हैं। अपराधिक मामलों में इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। अच्छे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की विशेषताएं-

- ❖ सभी साक्ष्य अभियोजन अथवा बचाव पक्ष या विपक्ष में हो सकते हैं।
- ❖ प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के शपथ लेकर दिये गये बयान न्यायधीशों द्वारा दिये जाने वाले निर्णय की दिशा में मुख्य भूमिका निभाते हैं। (Wolf &Bugaj 1990)
- ❖ विशेष रूप से ऐसे साक्ष्य स्वयं में दृढ़ एवं आस्वस्त दिखाई देते हैं। वे नर्वस नहीं होते हैं और अपनी स्वेच्छा से अनेक तथ्यों को बताने में हिचकिचाते नहीं हैं। (Bell & Loftus 1998)
- ❖ इससे स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति जो साक्ष्य के रूप में गवाही देने के लिए शपथ लेते हैं उनका सही होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

14.4.1 साक्ष्यों के गलत होने के कारण

- ❖ भावनात्मक अवरोध-वास्तव में साक्ष्यों द्वारा प्रायः गलतियां की जाती है। इसका मुख्य कारण तीव्र भावनात्मक हस्तक्षेप होता है। यह भावनात्मक हस्तक्षेप उस समय और समस्या बन जाता है जब साक्ष्य ही अपराधिक घटना का शिकार हुआ हो। एक घटना में बलात्कार की शिकार महिला द्वारा बलात्कारी के रूप में एक व्यक्ति की गलत पहचान की गयी। वह व्यक्ति बलात्कार में सम्मिलित नहीं था। भुक्त भोगी महिला की पहचान पर न्यायालय द्वारा उसे दण्डित करने के फलस्वरूप वह तब तक जेल में रहा जब तक वास्तविक बलात्कारी ने अपना अपराध कबूल

नहीं कर लिया। वास्तविक बलात्कारी के अपराध स्वीकार कर लेने के बाद ही निरपराध व्यक्ति को जेल से छोड़ा जा सका। (Loftus 1992a) इस प्रकार की गलत पहचान की घटना प्रायः होती रहती है। इससे स्पष्ट है कि निरपराधी व्यक्ति को गलत ढंग से अपराधी बनाने में गलत प्रत्यक्षदर्शी गवाह की अकेले ही अहं भूमिका होती है। (Wells 1993 Wells, Luus & Windschitl 1994)

- ❖ विलंबित न्यायिक प्रक्रिया-न्यायिक प्रक्रिया पूर्ण होने में काफी समय लगता है। न्यायालय में साक्ष्यों की जाँच के समय तक इतना अधिक समय बीत जाता है कि गवाह बहुत सारी बातें भूल जाता है। जैसे पुलिस द्वारा किए गये प्रश्न, समाचार कहानियां, एवं दूसरे व्यक्तियों के दिए गये बयान से संबंधित सूचनाएं उसे याद नहीं रहती हैं। जब कि घटना के घटित होने के समय उसे स्मरण रहता है। वास्तव में गवाह को क्या याद है तथा बाद में उसने और क्या जाना, इसमें अन्तर कर पाने में कठिनाई होती है। फलतः गवाह गलती कर बैठता है, जबकि गवाही देते समय उसका विश्वास रहता है कि उसकी स्मृति ठीक है। (Lindsay 1993)
- ❖ असम्यक प्रभाव-न्यायालय में साक्ष्य के त्रुटिपूर्ण होने का एक महत्वपूर्ण कारण असम्यक प्रभाव है। किसी व्यक्ति किसी घटना लालच या भय के गलत दबाव में आकर गवाह का गलत हो जाना असम्यक प्रभाव के अन्तर्गत जाता है। इस प्रकार का दबाव, गवाह के किसी संबंधी, प्रभावशाली व्यक्ति या उस जाति/समूह जिससे वह संबंधित है द्वारा डाला जा सकता है। (Platz & Hosch 1988) कभी-कभी ऐसा होता है कि जाँच पुलिस अधिकारी द्वारा भी गवाह पर दबाव डालकर साक्ष्य को प्रदूषित कराने का प्रयास किया जाता है। (Luus & Wells 1994) जैसे पुलिस दबाव में एक गवाह द्वारा एक व्यक्ति की गलत पहचान की गई है। दूसरे गवाह द्वारा भी उसी व्यक्ति की पहचान करने से पहले गवाह का मनोबल बढ़ जाता है। जबकि उसके द्वारा पहचान गलत की गई है। घटना से संबंधित अभियुक्त यदि हथियार सहित पकड़ा गया है तो ऐसे मामलों में साक्ष्य त्रुटियां अधिक होती है। (Tooley et al 1987)
- ❖ अवयस्क साक्षी-बाल अपराधिक मामलों में, जब किसी अवयस्क व्यक्ति को गवाही के लिए बुलाया जाता है तो एक विशेष समस्या उत्पन्न होती है। (Lamb 1998) समझदारी की दृष्टि से एक अवयस्क की गवाही पर वयस्क की अपेक्षा कम विश्वास किया जा सकता है। (Leippe & Roman 1987) अवयस्क बच्चे को कोर्ट रूम की संभावित भावनात्मक भय से मुक्त रखने के लिए उसकी गवाही भयमुक्त वातावरण में किसी वकील द्वारा लेकर उसे न्यायाधीश को प्रस्तुत की जाती है। फिर भी जब बच्चे को अपने शब्दों में गवाही करते हुए प्रेक्षक देखता है तो किसी द्वितीयक साक्ष्य से बच्चा अत्यधिक विश्वसनीय दिखायी देता है। (Luus Wells & Turtle 1995) यदि अन्य गवाहियां/परिस्थितियां बच्चे द्वारा बतायी गयी घटना की कहानी से मेल खाती

हैं, अभियुक्त का चरित्र संदिग्ध हो और न्यायिक अधिकारी पुरूष के स्थान पर महिला हो (Bottoms & Goodman 1994) तो शोध बताते हैं कि बड़े लोगों की अपेक्षा छोटे बच्चों की गवाही को न्यायिक अधिकारी अधिक मान्यता देते हैं। इसके बावजूद भी जहां एक युवक की गवाही किसी सुझाव से प्रभावित हो सकती है वहां साक्षात्कार की प्रश्नावली पद्धति से बच्चों पर और अधिक प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। (Burke 7 Ceci 1997 Ceci & Hembroke 1998) किसी अपराध में किसी बच्चे की गवाही एवं किसी युवक के बचपन के अनुभव के सत्यापन की समस्या, मनोवैज्ञानिकों एवं विधिवेत्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है।

14.4.2 प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य में सच्चाई की वृद्धि

गवाहों द्वारा दी गई गवाही में त्रुटि की संभावना के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यक्षदर्शी हमेशा गलत ही होते हैं। प्रायः वे पूर्णतः सत्य भी होते हैं। (Yuille & Cutshall 1986) इसके अतिरिक्त समस्त साक्षियों में सत्यता बढ़ाने के लिए अनेकों प्रयास किये गए हैं। अपने शोध में Munsterberg (1907) ने वशीकरण को इसका एक संभव हल बताया। पुनः इस विचार का परित्याग कर उन्होंने इससे आसान हल बताया जिससे गलत स्मृतियों को इंगित किया जा सकता है। पुलिस द्वारा की जाने वाली जाँच में कड़ी से कड़ी मिलाकर असली अपराधी की पहचान करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया में वह संभावित अपराधी (अभियुक्त) के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों से भी पूछताछ करता है। पुलिस की इस प्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य गवाहों में सच्चाई की तलाश करना होता है। अभियुक्त की पहचान करने के लिए सच्चे गवाहों में दृढ़ता बढ़ाने का प्रयास करता है। वेल एण्ड लस (1990) ने पुलिस की कड़ी से कड़ी मिलाने की प्रक्रिया (line up) को एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोग के समान बताया है। इस प्रयोग में जाँच करने वाला पुलिस अधिकारी प्रयोगकर्ता प्रत्यक्षदर्शी प्रयोज्य संभावित अपराधी (अभियुक्त)- प्राथमिक उद्दीपक गवाहों की धनात्मक पहचान, व्यवहारिक आंकड़े तथा संभावित अभियुक्त के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति कड़ी से कड़ी मिलाने का प्रबंध ''रिसर्च डिजाइन'' निर्माण करते हैं। पुलिस के पास अभियुक्त एक अपराधी है। यह परिकल्पना होती है। प्रयोग और कड़ी से कड़ी मिलाने की प्रक्रिया में पूर्ण निश्चितता नहीं होती है। इसलिए प्रयोग या परीक्षण के लिए प्राप्त आंकड़े संभावना पर निर्भर करते हैं। जिस प्रकार एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग में प्रयोगकर्ता का भेदभाव (Bias) एक नियंत्रण समूह का अभाव मांग विशिष्टता आदि त्रुटियां हो सकती हैं। पुलिस की जाँच में यही कारक गवाहों को भी प्रभावित करते हैं। नियंत्रित समूह की व्यवस्था करके जैसे प्रयोग की त्रुटि को ठीक किया जाता है वैसे ही पुलिस की जाँच के समय साक्षियों की त्रुटियों को ब्लैंक लाइन अप कन्ट्रोल (Blank lineup control) प्रविधि द्वारा सुधारा जा सकता है। इस प्रविधि के अन्तर्गत पुलिस के ऐसे लाइन अप को सर्वप्रथम साक्षी को दिखाया जाता है जिसमें केवल ऐसे व्यक्ति हो जो घटना से बिल्कुल अनभिज्ञ एवं प्रत्याशित अभियुक्त में न हो

(Wells 1984) यदि साक्षी उनमें से किसी की पहचान नहीं करता है तो उनकी गवाही के सत्य होने में दृढ़ता बढ़ती है। यदि लाइन अप में पाये जाने वाले किसी निरपराध व्यक्ति की पहचान साक्षी द्वारा की जाती है तो साक्षी को गलत पहचान करने के खतरे को बताते हुए सचेत किया जाता है। इसके बाद उचित लाइनअप गवाह के समक्ष प्रस्तुत करने पर साक्षी के सही गवाही करने की संभावना काफी बढ़ जाती है। गवाहों की गवाही में शुद्धता लाने के लिए दूसरा तरीका यह है कि अभियुक्त की पहचान से पूर्व जाँच अधिकारी साक्षी के सामने अपराधिक घटना एवं घटना से प्रभावित व्यक्ति से संबंधित दृश्य प्रस्तुत करें (Cutler Penrod & Martens 1987) लाइन अप को देखते ही यदि साक्षी समूह की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति की पहचान करता है (Leary 1988) तो इस प्रकार प्रोत्साहित साक्षियों का अपने को सही साबित करने का प्रथम प्रयास हो सकता है। (Dunning & stern 1994)

14.4.3 एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष

एक न्यायिक परीक्षण में अधिवक्ता न्यायाधीश एवं प्रतिपक्षी ही मुख्य पक्ष होता है। यू.एस.ए.एव ब्रिटेन में जूरी सदस्य भी होते हैं जो न्यायिक निर्णय में न्यायाधीश की मदद करते है। यहां पर भारतीय पद्धति के अनुसार अधिवक्ता न्यायधीश एवं प्रतिपक्षी आदि को ही पक्षवार मानते हुए उनका ही वर्णन किया जा रहा है।

- ❖ अधिवक्ता-कोई परीक्षण केवल उद्देश्यपूर्ण साक्ष्यों एवं तर्कों पर ही निर्भर नहीं करता है। न्यायपक्ष में अधिवक्ताओं की मुख्य भूमिका होती है। इसका प्रभाव केवल साक्ष्य संबंधी विषयों एवं कानूनी तकनीकियों तक ही सीमित नहीं रहता है। अभियोजन पक्ष का वकील अभियुक्त से संबंधित गलतियों को इंगित करता है। जबकि बचाव पक्ष का वकील अभियुक्त का बचाव करता है। ऐसा करते समय दोनों पक्ष के वकीलों का नाटकीय व्यवहार न्यायधीशों को अपने पक्ष में प्रभावित करना होता है। दोनों पक्ष के वकील न्यायाधीश की निगाह में विद्वान ईमानदार एवं उनकी पसंद बनना चाहते हैं। वे आपराधिक घटना से संबंधित ऐसी कहानी गढ़कर सुनाते हैं जिससे अभियुक्त अपराधी साबित हो जाये या निरपराध साबित हो जाये। अनेक दृष्टिकोण से एक आदर्श परीक्षण वकील कानूनविद एवं कुशल पात्र दिखाई देता है।

- ❖ न्यायाधीश-न्यायिक परीक्षण में न्यायाधीश की मुख्य भूमिका नियमों का अनुपालन कराना एवं भेदभाव (Bias) पर नियंत्रण करना होता है। यद्यपि न्यायाधीशों को पूर्णतः निष्पक्ष एवं न्यायप्रिय समझा जाता है फिर भी वह एक मनुष्य है जिससे गलतियां हो सकती है। उनकी गल्तियों का सीधा प्रभाव परीक्षण के परिणाम पर पड़ता है। न्यायधीशों को साक्ष्यों में औपचारिक रूप से स्वीकार किये गये तथ्यों के आधार पर निर्णय देना होता है। निर्णयों में विधिक नियमों का पालन भी निष्पक्षता से करना होता है। कभी-कभी संज्ञानात्मक प्रविधियाँ ऐसी पायी जा सकती हैं जिससे न्यायाधीश के कथन किसी भी

पक्ष को प्रभावित कर सकते हैं। कभी साक्षियों की कोई सूचना लीक हो जाती है, जिस पर विरोधी पक्ष अपनी आपत्ति दर्ज कर देता है। जज द्वारा साक्ष्य के उस भाग को अस्वीकार कर दिया जाता है। कैसिन एवं सोमर्स (Kassin Sommers,1997) के अनुसार गवाही के किसी भाग को न्यायाधीश द्वारा अस्वीकृत करने का कारण महत्वपूर्ण है। किसी गवाही के किसी भाग को अस्वीकृत करते समय न्यायाधीश को उचित कारण का उल्लेख करना आवश्यक है। जब अस्वीकार्य साक्ष्य पूर्णतः भावनात्मक हो तो न्यायाधीश की निष्पक्षता प्रभावित होती है। जैसे ग्रेफिक सूचना प्राप्त होने पर कि अभियुक्त ने एक महिला को काट डाला है। नियमतः ऐसी सूचना को अस्वीकार करने की अपेक्षा नियमतः स्वीकृत कर ली जाती है। (Edwards & Bayani 1997) इसी प्रकार एक प्रकरण में टेलीफोन पर अभियुक्त द्वारा अपने मित्र से एक महिला को जान से मार देने की बात कही गई। इस टेलीफोन वार्ता को टेप करके न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने पर बचाव पक्ष द्वारा आपत्ति की गई। इसमें निम्नलिखित तथ्य सामने आये-

- ❖ पुलिस द्वारा बिना वारंट के टेलीफोन वार्ता टैप की गई। अतः यह प्रक्रिया दोषपूर्ण थी। अतः इसे अस्वीकृत किया जा सकता है।
- ❖ टेप की हुई टेलीफोन वार्ता सुसंगत नहीं हो सकती है।

इस प्रकरण में अभियुक्त को अपराधी माना गया। रूलिंग को बिल्कुल नजरंदाज कर दिया गया। रंग भेद, जाति भेद, लिंग भेद सूचना विधा की भिन्नता, जज की मनोवृत्ति आदि से न्यायिक निर्णय प्रभावित होते हैं। यदि आपराधिक कार्य का दोष प्राथमिक रूप से समाज पर होता है तो अभियुक्त को भी भुक्तभोगी मानते हुए उसे दोषमुक्त किया जा सकता है। कानूनी तानाशाही प्रभाव में प्रायः उनकी प्रवृत्ति अभियुक्त को सदैव दोषी मानने की ही रहती है। न्यायाधीशों द्वारा निर्णय देने के लिए स्वविवेक से अनेक स्वनिर्मित नियम लागू किए जाते हैं। ऐसे निर्णयों का कोई कानूनी आधार नहीं होता है। जैसे बलात्कार में महिला की शारीरिक चोट एवं पुलिस में शीध्रता से रिपोर्ट को ही आधार मानकर बलात्कारी को दोषी मान लिया जाता है। इस तथ्य की बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाती है कि प्रकरण बलात्कार से भिन्न पारस्परिक सहमति का भी हो सकता है। कानूनी पद्धति पर अनेक शोध बताते हैं कि बिल्कुल सामान्य मानव प्रतिक्रियाओं के कारण प्रायः न्यायिक प्रक्रिया निष्पक्ष नहीं रह पाती है। न्यायालय से भी भेदभाव की संभावना बनी रहती है।

- ❖ प्रतिपक्षी की भूमिका एवं विशेषता-न्यायालय में प्रतिपक्षी न्यायाधीशों के लिए अजनबी रहता है। न्यायाधीश द्वारा इस अजनबी प्रतिपक्षी के कथनों की काट करते हुए उसका मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रतिक्रिया में अनेक सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारक आते हैं। इनमें मूक सूचना संप्रेक्षण, व्यक्तिगत, शीलगुण, प्रभाव डालना, प्रभाव प्रबंधन, पूर्वाग्रह तथा भेदभाव

अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण आदि का प्रभाव सैद्धांतिक रूप से न्यायिक अधिकारियों पर अभियुक्त के परीक्षण में नहीं पड़ता है। फिर भी प्रतिपक्षी के उपरोक्त मनोवैज्ञानिक गुण न्यायालय को प्रभावित करने में कुछ सीमा तक अवश्य कार्य करते हैं।

- ❖ सामाजिक भिन्नता अभियुक्त के आकर्षण व्यक्तित्व, लिंग, सामाजिक स्तर एवं व्यवहार का सीधा प्रभाव न्यायिक निर्णय पर पड़ सकता है।

14.5 सारांश (Summary)

अपराध एवं सुधारात्मक दण्ड की प्रक्रिया में जहां कानून एवं न्याय की अहं भूमिका है वहीं इस क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता बहुत अधिक है। किसी भी अपराधिक घटना में प्रभावित व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी संभावित अपराधी (अभियुक्त) अथवा घटना स्थल की परिस्थिति मुख्य साक्ष्य होते हैं। इन साक्ष्यों से घटना के संबंध में प्रश्न करने पर जो उत्तर मिलते हैं एवं घटना स्थल की परिस्थितियों को मिलाकर घटना कहानी का निर्माण कर संभावित अपराधिक कानून जिसका उल्लंघन हुआ है का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक की कार्यवाही ट्रायल से पूर्व की कार्यवाही होती है। लोग कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें यह विश्वास रहता है कि कानून एवं प्रक्रिया साफ सुथरी है। पुलिस धोखा-धड़ी या दबाव में लिये गये बयान से न्यायिक प्रक्रिया प्रदूषित होती है। मीडिया द्वारा प्रदर्शित सघन आपराधिक समाचार द्वारा हमें अपराधों के बारे में जानकारी होती है क्योंकि धनात्मक सूचनाओं की अपेक्षा ऋणात्मक घटनाएं व्यक्ति पर अधिक संज्ञानात्मक छाप छोड़ती हैं। गिरफ्तार व्यक्ति का पब्लिक में प्रत्यक्षण एक अपराधी के रूप में होता है। परीक्षण के पूर्व के प्रचार व इससे उत्पन्न पब्लिक अवधारणा से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है। अतः किसी अपराधिक घटना के विषय में विस्तृत रूप से सुनने एवं टीबी या अखबारों में देखने व पढ़ने से यह नहीं समझना चाहिए कि अपराधिक मामला सुलझ गया है या आरोपी का आरोप सिद्ध हो गया है। न्यायिक परीक्षण से पूर्व वे मात्र आरोपी/प्रत्याशित अभियुक्त होता है। यह अवश्य है कि मीडिया के प्रचार-प्रसार से न्यायिक प्रक्रिया में कुछ सीमा तक सहायता मिल सकती है। शासन को कानून एवं व्यवस्था की स्थिति समझने में मदद मिलती है। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को स्वयं अपनी आँखों से देखा हो या कानों से सुना हो या मामले से संबंधित कुछ विश्वसनीय प्रेक्षण किया है को न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत शपथ लेकर बयान देने हेतु बुलाया जा सकता है। इन्हें साक्षी कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा है वे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अन्तर्गत आते है। ऐसे साक्ष्य न्यायालय के निर्णय की दिशा में मुख्य भूमिका निभाते हैं। भावनात्मक अवरोध, विलम्बित न्यायिक प्रक्रिया, असम्यक प्रभाव, अवयस्कता के कारण इसमें साक्ष्यों के गलत हो जाने की संभावना होती है। अधिवक्ता जूरी न्यायाधीश, अतिपक्षी आदि एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष होते हैं। इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

14.6 शब्दावली (Vocabulary)

1. साक्ष्य - गवाही
2. ट्रायल - परीक्षण
3. प्रथम दृष्टया - पहली दृष्टि
4. अभियुक्त - संभावित अपराधी
5. अवयस्क - नाबालिग
6. समस्या - कठिनाई
7. त्रुटि - गलती
8. स्मृतियां - यादें
9. ब्लैंक - रिक्त
10. लाइनअप - कड़ी से कड़ी मिलाना
11. स्वीकार्य - स्वीकार करने योग्य
12. जूरी- सक्षम नागरिकों का समूह जो न्यायिक निर्णय में न्यायधीश को अपनी राय देते है। इनके बहुमत के आधार पर जज निर्णय लेता है।

14.7 अभ्यास प्रश्न (Questions for Practice)

1. लोग कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें ये विश्वास रहता है कि _____साफ सुथरी है।
2. पुलिस द्वारा गुस्से से डरा धमका कर लिए गये बयान से _____ होती है।
3. सजा की धमकी से की गई _____को न्यायाधीश द्वारा अमान्य किया जा सकता है।
4. बुरी खबर प्रायः अच्छी खबर की तुलना में _____होती है।
5. पब्लिक केवल मीडिया प्रसारण को देखकर _____को अपराधी मान लेती है।
6. मीडिया की _____पर पब्लिक के विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है।
7. एक आरोपी को मात्र गिरफ्तार हो जाने से वह स्वतः _____नहीं हो जाता है।
8. परीक्षण से पूर्व के प्रचार एवं इससे उत्पन्न____से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है।
9. प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के शपथ लेकर दिये गये बयान न्यायधीशों/जूरी के सदस्यों द्वारा दिये जाने वाले _____मुख्य भूमिका निभाते हैं।
10. एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले _____ मुख्य पक्ष होते हैं।
11. गवाही के किसी भाग को जज द्वारा अस्वीकृत करने का _____महत्वपूर्ण है।

14.8 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type of Questions)

1. परीक्षण प्रारम्भ होने पूर्व की प्रक्रिया के अन्तर्गत पुलिस कार्यवाही के विस्तृत प्रभाव की विवेचना कीजिए।
2. एक न्यायिक परीक्षण में सम्मलित होने वाले मुख्य पक्षों का वर्णन कीजिये।

14.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

1. सिंह आर. एन(2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा
2. सिंह आर. एन.(2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2
3. सिंह ए.के.(2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह ए.के. (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी.एन.(दसवां संस्करण) सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी.एन.एवं अन्य(2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान, एच.पी. भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य डेवलेपमेन्ट ऑफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निग प्रोसेस, विनय राखेजा मोती लाल बुक डिपाटमेन्ट मेरठ
8. रोबर्ट ए बैरन एवं डांन बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एजूकेशन, (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एफ आइ ई, पटपडगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन.(2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सुमित भार्गव, गंगा एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी.के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद सुलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान, मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियायें।, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
11. अग्रवाल विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

इकाई 15: कार्य सेटिंग की स्थिति में सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology in the Work Situation)

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 क्रीड़ा का सामाजिक मनोविज्ञान

15.3.1 क्रीड़ा मनोविज्ञान का वर्तमान स्वरूप

15.3.2 क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों की विशेष रूचि

15.3.3 क्रीड़ा मनोविज्ञान में कैरियर की संभावनाएं

15.4 शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान

15.5 राजनीति मनोविज्ञान में समाज मनोविज्ञान

15.6 यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान

15.7 व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका

15.8 अभ्यास प्रश्न

15.9 सारांश

15.10 शब्दावली

15.11 निबंधात्मक प्रश्न

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

कार्य सेटिंग की स्थिति में क्रीड़ा मनोविज्ञान, शिक्षा के सामाजिक मनोवैज्ञानिक, राजनीति का सामाजिक मनेाविज्ञान, यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान तथा व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्रीड़ा, शिक्षा, राजनीति, यातायात एवं परिवहन तथा व्यवसाय में कैरियर

चुनने में सामाजिक मनोविज्ञान की सहायता ली जा सकती है। क्रीड़ा क्षेत्र में अभिरूचि बढ़ायी जा सकती हैं जनमत को आकर्षित किया जा सकता है। यातायात एवं परिवहन के क्षेत्र में नियमों का पालन करते हुऐ व्यवहार को धनात्मक दिशा में मोड़ा जा सकता है। इससे दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है। सुरक्षा की भावना को विकसित किया जा सकता है। व्यवसाय की उन्नति के लिए प्रचार प्रसार माध्यमों के द्वारा जनमत को आकर्षित किया जा सकता है। इस प्रकार कार्य सेटिंग में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है।

15.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढने के बाद आप-

1. क्रीड़ा मनोविज्ञान को समझ सकेंगे तथा क्रीड़ा क्षेत्र मे अभिरूचि बढा़ सकेंगे इस क्षेत्र में कैरियर चयन करने में सहायता मिल सकेगी।
2. शिक्षा मनोविज्ञान का उपयेाग कर शिक्षक के रूप में आप अपने कार्यों का संपादन कुशलता से कर सकते हैं।
3. राजनीति में कैरियर बनाने के लिए , जनता की मनोदशा का अध्ययन कर, अनुकूल जनमत तैयार कर सकते हैं।
4. यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान तथा इसके उपयोग की जानकारी कर सकते हैं। इससे दुर्घटनाओं को रोकते हुए सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी।
5. किसी व्यवसाय की सफलता के लिए श्रमिक कर्मचारियों एवं मालिक के धनात्मक आन्तरिक संबंधों एवं प्रचार का विशेष महत्व होता हैं। इनका समुचित उपयोग कर व्यवसाय के क्षेत्र में अत्यधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

15.3 क्रीड़ा का सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology of Sport)

क्रीड़ा मनेाविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञान में एक नई शाखा है। कार्ल डेम (Carl Diem) ने 1920 में ,डेवटेस्ची स्पोर्टवावस्चूल (Deutsche Sporthochschule) ने वर्लिन जर्मनी में प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की। इसके पश्चात 1925 में ए.जेंड. पुनी द्वारा लेनिनग्रांड में अन्य दो प्रयोगशालाएं स्थापित की गईं। ग्रिफिथ (Griffith) ने 1923 में क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया। उनके द्वारा "दि साइकोलाजी आफ कोचिंग" नाम से पहली पुस्तक 1926 में प्रकाशित की गयी। दुर्भाग्य से धन की कमी के कारण ग्रिफिथ की प्रयोगशाला 1932 में बन्द हो गयी। इसके बाद क्रीड़ा मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम हुयी। वर्ष 1960 में इस क्षेत्र में पुनः कुछ कार्य प्रारम्भ हुआ। फेरोसियो एन्टोनेली (Ferruccio Antonelli) ने वर्ष 1965 में अन्तर्राष्ट्रीय क्रीड़ा मनोविज्ञान की

स्थापना की। 1970 के दशक में "क्रीड़ा मनोविज्ञान को उत्तरी अमेरिका के विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम" शैक्षिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल 1970 में प्रकाशित हुआ तथा यह क्रम 1979 तक चलता रहा।

1980 के दशक में 'क्रीड़ा मनोविज्ञान'की तरफ, शोधकर्ताओ का विशेष ध्यान गया। सामाजिक मनेाविज्ञान शेाधकर्ताओं ने यह सोचना शुरू कर दिया कि "ऐथेलेटिक क्रिया कलापों मे कैसे सुधार लाया जा सकता है। अभ्यास के द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को कैसे बढ़ाया जा सकता है। तनाव स्तर को कैसे कम किया जा सकता है।"

15.3.1 क्रीड़ा मनोविज्ञान का वर्तमान स्वरूप- वर्तमान समय में भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतों का उपयोग किया जा रहा है। मनोविज्ञानी इस क्षेत्र में अनेक विशिष्ट समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं। खेलकूद में अधिक अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति ,खेलकूद संबंधी जोखिम व्यवहार को क्यों करना चाहते हैं। खेल खेलने वाले तथा खेल देखने वाले व्यक्तियों के अभिप्रेरको में क्या अन्तर होता है। ऐसी समस्याओं का अध्ययन क्रीड़ा मनोविज्ञान द्वारा किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों के आलोक में यह पाया गया है कि खेल कूद के व्यवहार से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता मजबूत होती है। इस तरह के व्यवहार अध्ययनों का उपयोग मनोविज्ञानी , नैदानिक परिस्थिति तथा अस्पताल में चिकित्सीय साधन के रूप में अधिक करते हैं।

15.3.2 क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों की विशेष रूचि- क्रीड़ा क्षेत्र में, क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों द्वारा अत्यधिक रूचि दिखायी जा रही है। इस प्रकार वर्तमान में क्रीड़ा मनोविज्ञान का बहुत विस्तार हो रहा है। एथलीटों की सहायता करने के तरीके निश्चित रूप से क्रीड़ा मनोविज्ञान के भाग हैं। नान एथलीट्स के जीवन में सुधार लाने में शारीरिक क्रिया कलापों एवं एक्सरसाइज का विशेष महत्व होता है। इस क्षेत्र में हो रहे विकास एवं अध्ययनों से ज्ञात होता है कि क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्न लिखित क्षेत्रों में विशेष रूचि दिखाई गई है।

- इमैजरी(Imagery) इमैजरी का तात्पर्य छाया चित्रों द्वारा किसी वस्तु को समझाना होता है। इसके अन्तर्गत काल्पनिक दृश्य, कार्य सम्पादन जैसे किसी एथलिटिक कार्यक्रम में भाग लेना ,विशिष्ट कौशल का सफलतापूर्वक संपादन करना, आदि आते हैं। इन क्षेत्रों में सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूचि दिखाई जाती रही हैं।
- प्रेरणा:- क्रीड़ा मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रेरणा एक मुख्य विषय है इसके अर्न्तगत वाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रेरकों का अध्ययन किया जाता है। वाह्य उत्प्रेरक बाह्य पुरस्कार होते हैं। ट्राफी, रूपये, पदक या सामाजिक मान्यता आदि बाह्य पुरस्कार के उदाहरण हैं। आन्तरिक उत्प्रेरक अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं। विजयी होने की इच्छा किसी कौशल के लिए किए गये

प्रयास के सन्दर्भ में स्वाभिमान का भाव उत्पन्न होना आदि आन्तरिक उत्प्रेरक के अन्तर्गत आते हैं।

- ध्यानाकर्षण केन्द्र- इसके अन्तर्गत किसी उलझन के सुलझाने की योग्यता जैसे शोर मचाती हुयी प्रसंशकों की भीड़ को नियंत्रित करना , हाथ में लिए गये किसी कार्य की तरफ ध्यान का केंद्रित होना , आदि आते हैं ।

15.3.3 क्रीड़ा मनोविज्ञान में कैरियर की संभावनाएं- मनोविज्ञान के बहुत से छात्रों के लिए, क्रीड़ा मनोविज्ञान के क्षेत्र में कैरियर चुनना बहुत ही उत्साहजनक हो सकता है। विशेषकर उन लोगों के लिए, जिनकी शारीरिक क्रियाकलापों एवं क्रीड़ा के क्षेत्र में तीव्र रूचि होती है, उनके लिए क्रीड़ा मनोविज्ञान और भी उपयोगी हो सकता है।

15.4 शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान (social psychology of education)

शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों मानव व्यवहारों से संबन्धित हैं। शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया है और मनोविज्ञान प्रक्रिया को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। शिक्षा व्यवहार का परिमार्जन करती है और मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है। दोनों का संबंध मानव व्यक्तित्व के विकास से है। इस दृष्टि से शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों में पारस्परिक संबंध है। तात्पर्य यह है कि मनोविज्ञान का प्रभाव शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर पड़ता है और शिक्षा भी मनोविज्ञान के विषय वस्तु क्षेत्र तथा अन्य बातों को प्रभावित करती है।

i. मनोविज्ञान तथा शिक्षा का उद्देश्य- मनोविज्ञान का संबंध शिक्षा उद्देश्य से नहीं होता हैं क्योकि यह विधायी विज्ञान (Positive Science) है यह उन तथ्यों का विवेचन करता है, जैसे कि उनको होना चाहिए । क्रो और क्रो ने कहा हैं "यद्यपि मनोविज्ञान शिक्षा के लक्ष्य निश्चित नहीं कर सकता, वैज्ञानिक मनोविज्ञान हमें एकदम बतला सकता है कि कोई लक्ष्य निराशाजनक रूप में बादलों में हैं, या उसको पाया जा सकता है। जेम्स ड्रेवर ने यहा तक कह दिया है कि "शिक्षा का उद्देश्य पूरा करने के लिए मनोविज्ञान इतना तय करके समाप्त नहीं हो जाता है कि यह संभव हैं या असंभव, बल्कि मनोविज्ञान यह निश्चित रूप से बता सकता है कि उन्हे किन साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया में शिक्षक के लिए मनोविज्ञान सबसे अधिक सहायक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में भी मनोविज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है।

ii. मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम- पाठ्यक्रम बालकों की रूचियों, रूझान, क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं को ध्यान मे रखकर ही बनाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माताओं को बालमन का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। बाल विकास की प्रत्येक अवस्था की अलग अलग विशेषताएं और

आवश्यकताएं होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उसके अनुरूप पाठ्यक्रमों के द्वारा ही की जा सकती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में भी मनोविज्ञान की सहायता अमूल्य है।

iii. मनोविज्ञान तथा शिक्षण विधि- मनोविज्ञान की सहायता से नीरस विषय भी रूचिकर बनाया जा सकता है इसके लिए बालकों में सीखने के प्रति रूचि जागृत करना आवश्यक है। मनोविज्ञान ने प्राचीन शिक्षण विधियों में परिवर्तन करके ऐसी विधियों को जन्म दिया जिसमें बालक स्वयं रूचिपूर्वक सीख सकता हैं। नवीन शिक्षा प्रणालियों में मांटेसरी प्रणाली, किन्डर गार्टेन प्रणाली, प्रोजेक्ट प्रणाली तथा हयुरिस्टिक प्रणाली हैं। इन प्रणालियों में बालकों के स्वाभाव और रूचि का अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है।

iv. मनोविज्ञान तथा बालक-पहले शिक्षा विषय प्रधान एवं अध्यापक प्रधान थी परंतु शिक्षा का अभिप्राय केवल अध्यापन से नहीं है। पेस्टालॉजी ने कहा है कि "शिक्षा का मुख्य लक्ष्य अध्यापन नहीं बल्कि विकास है, अर्थात बालक की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, प्रगतिशील और व्यवस्थित विकास करना है। अतः शिक्षकों को व्यक्तित्व का विकास संबंधी सब बातों का ज्ञान आवश्यक हैं। रूसों ने कहा हैं कि "बालक एक ऐसी पुस्तक हैं जिसे शिक्षक को भली भाँति पढना हैं'' शिक्षक इसमें तभी सहयोग कर पायेगा जब मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का पूर्ण परिचय होगा। बालकों के लिए शिक्षा योजना उसकी रूचि, मूल प्रवृत्ति सम्मान क्षमता, योग्यता को ध्यान में रखकर बनाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांत सहायता कर सकते है। अतः बाल मनोविकास के लिए मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि आवश्यक है।

v. मनोविज्ञान तथा पाठशाला का सामूहिक जीवन- पाठशाला में शैक्षिक एवं स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करने में भी मनोविज्ञान बहुत सहायता देता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किस प्रकार प्रभावित करता है। समूह जीवन मनुष्य के विकास में किस प्रकार सहायता करता है। इन बातों का ज्ञान समूह मनोविज्ञान द्वारा प्राप्त होता है। बालक की शिक्षा में सामाजीकरण और समूह मनोविज्ञान पर ध्यान देना आवश्यक है। जॉन एडम्स ने कहा था शिक्षा को मनोविज्ञान ने बाँध लिया है, मनोवैज्ञानिक सिधान्तों की उपयोगिता को जाँचने के लिए सबसे अच्छा स्थान पाठशाला है।

vi. व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर वर्गीकरण में सहयोग- मनोविज्ञान ही यह बताता है कि बालकों की रूचियों, रूझान क्षमताओं और योग्यताओं में अन्तर होता हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है अतः सबके लिए एक ही प्रकार की शिक्षा का आयोजन करना लाभप्रद न होगा। बालक की रूचि और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से वैयक्तिक भेदों के आधार पर हम बालको का वर्गीकरण कर सकते हैं। एक ही प्रकार के बालकों को एक ही कक्षा में रखने से शिक्षा कार्य सरल और लाभप्रद हो जाता है।

vii. अनुशासन स्थापित करने में सहयोग- मनोविज्ञान की सहायता से हम अनुशासन संबंधी समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं। प्राचीन समय में अनुशासन स्थापित करने के लिए दण्ड का भय उत्पन्न करके, दमनात्मक नीति का पालन किया जाता था। आज अनुशासन की समस्याओं को स्नेह,प्रेम, प्रशंसा सहानुभूति तथा पुरस्कार द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। मनोविज्ञान अनुशासन के कारणों को खेाजने और दूर करने के लिए संभव उपाय बताता है।

viii. मनोविज्ञान एक शिक्षक- स्किनर ने कहा है-शिक्षक के लिए मनेाविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक,उपयोगी और महत्वपूर्ण है। कक्षा शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नहीं कर सकता है। मनोविज्ञान के ज्ञान से शिक्षक बालक की मानसिक योग्यता रूचि और रूझान के अनुसार पाठ्यवस्तु का चुनाव करता है और ऐसी शिक्षण विधि को अपनाता है जेा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होती है।

ix. मनोविज्ञान तथा निर्देशन- हसबैण्ड ने निर्देशन की परिभाषा करते हुये कहा हैं कि निर्देशन से व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिए तैयार करने, समाज में उसको, उसके स्थान के लिए फिट करने में सहायता देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निर्देशन द्वारा यह पता चलता है कि भविष्य में उसको किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, भविष्य में उसको किस व्यवसाय का चुनाव करना चाहिए, मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से विद्यार्थी का उचित मार्ग निर्देशन किया जा सकता है।

x. शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार-मनोवैज्ञानिक आधार से तात्पर्य शिक्षा, बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और विशेषताओं पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा प्रदान करते समय बालक की प्रगति, रूचि क्षमता, योग्यता, विकास की अवस्थाओं आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। मनेाविज्ञान केवल व्यक्ति पर ही अपना ध्यान नहीं रखता बल्कि समूह में व्यक्ति का आचरण और व्यवहार क्या और कैसे होता है, इसका भी अध्ययन करता है। इसलिए ‘‘समूह मनोविज्ञान’’ का विकास हुआ है। इसमें बालक की अनुवांशिकता, पर्यावरण, उसकी वृद्धि तथा विकास व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार, व्यवहार के विभिन्न रूप तथा विकास की दिशा में उत्पन्न समस्याओं का समाधान तथा समाधान के साधन, इन सबके लिए वैज्ञानिक ढंग की खोज तथा उनको प्रकट करने के लिए सांख्यकीय प्रविधियों का प्रयोग आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। ये विषय ही शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार की रचना करते हैं।

इससे स्पष्ट हैं कि हमें शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन में मनोविज्ञान से पगपग पर सहायता लेना आवश्यक है। स्कूल मनोविज्ञान मुख्यतः प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में कार्य करते हैं तथा वे छात्रों को अन्य विशेषज्ञों के पास विशेष उपचार के लिए भेजते हैं। स्कूलों में वे मुख्यतः व्यवसायिक एवं शैक्षिक परीक्षण कार्य करते हैं तथा परामर्श एव प्रशिक्षण कार्यक्रम को संगठित करके जो शिक्षक को छात्रों एवं अन्य

शिक्षकों के साथ संगठित करने में तथा स्कूल के प्रशासन की समस्याओं से संबंधित प्रश्नों का हल ढूढने में लाभप्रद होता हैं, महत्वपूर्ण सेवा प्रदान करते हैं। इसके अलावा स्कूल मनोविज्ञानी नये प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का भी अध्ययन करते हैं। शिक्षकों व छात्रों के मनोबल का भी अध्ययन करते हैं, गैरकानूनी औशधि उपयोग के कारणों का पता लगाकर उसका निदान ढूढते हैं तथा औषध उपयोग करने के पैटर्न को परिवर्तन करने के शैक्षिक कार्यक्रम की उपयोगिता पर भी अधिक बल डालते हैं।

15.5 राजनीति मनोविज्ञान में समाज मनोविज्ञान (Social Psychology in Political Psychology)

फ्रांसीसी विद्वान पाल जैनेट (Paul Janet) के अनुसार "राजनीति शास्त्र समाज मनोविज्ञान का वह अंग है जो राज्य के आधार पर शासन के सिद्धांतों की विवेचना करता है। इससे स्पष्ट है कि राजनीति शास्त्र में व्यक्तियों के राजनैतिक गतिविधियों का विश्लेषण किया जाता है। ऐसे विश्लेषण में सामाजिक मनोविज्ञान काफी मदद करता है। इसी प्रकार कुछ राजनीतिक घटनाऐं ऐसी होती है जो मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती है। राजनैतिक क्रिया कलापों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका-जनतंत्र में जनमत का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी सरकार की स्थिरता जनमत पर ही निर्भर करती है। प्रभावी शासन के लिए अनुकूल जनमत का होना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए कुशल नेतृत्व व प्रभावशाली प्रचार की आवश्यकता होती है। राजनीतिक तनाव, दंगों जैसी सामाजिक परिस्थितियों में भी मानव व्यवहार प्रभावित होता है। स्थायी तथा लोकप्रिय शासन के लिए जनता की मनोदशाओं के अनुरूप शासन के क्रिया कलापों में जनता की नैतिक भावनाओं मनोवृत्तियों एव अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक दिखाई पड़नी चाहिए। अतः ऐसी राजनीतिक गतिविधियों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। इसकी भूमिका निम्नवत है:-

- ❖ जनता की मनोदशा का अध्ययन- मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। उसके राजनीतिक कार्यों सहित सभी क्रिया कलापों के पीछे एक निश्चित मनोवृत्ति (Attitude) , पूर्वाग्रह (Prejudices), सामाजिक प्रत्यक्षण (Social Perception) आदि जैसे मनोवैज्ञानिक तत्व होते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान अपने क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से प्राप्त तथ्यों के द्वारा व्यक्तियों के इन मनोदशाओं को जानने, समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी राज्य तथा सरकार तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक वह जनता की इन मनोदशाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति को अच्छी तरह से न समझ ले। अतः स्थायी तथा लोकप्रिय शशासन के लिए जनता की मनोदशाओं को समझना अति आवश्यक होता है। इतना ही नहीं जनभावना के अनुरूप, शशासन के कार्यों में जनता की नैतिक भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक भी दिखाई पड़नी चाहिए। एक

समाज मनोविज्ञान अपनी विविध प्रणाली एवं प्रविधियों द्वारा राज्य की जनता की मनोवृत्ति, सामाजिक प्रत्यक्षण, पूर्वाग्रह आदि का अध्ययन कर उनकी वास्तविक अवस्थाओं, स्थितियों को बताता है, कमियों को उजागर करता है।

- ❖ प्रभावशाली शासन के लिए कुशल नेतृत्व का अध्ययन- नेतृत्व एक प्रकार का अन्तर्क्रियात्मक व्यवहार है जो नेता तथा सदस्यों के बीच होता है।दोनों एक दूसरे केा प्रभावित करते है, फिर भी नेता का प्रभाव सदस्यों या अनुयायियों पर अधिक पड़ता है। वह लोगों के व्यवहारों को निर्देशित तथा नियंत्रित करता है चूँकि समूह में नेता की विशिष्ट स्थिति होती है। इस कारण सदस्य उसके प्रति अधीनता का भी अनुभव करते हैं। (House1977, Field 1971, Myers 1988) नेतृत्व सर्वाधिक लोकप्रिय माना जाता हैं क्योकि इसमें सबको आगे बढ़ने के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं। जोखिम की संभावना एवं परिस्थितियाँ स्पष्ट या भ्रामक होने पर सदस्य निरंकुश नेतृत्व को पसंद करने लगते हैं। तनाव या संकट की दशा में नेतृत्व निरंकुश भी हो जाता है। उस समय समस्या का समाधान ही मुख्य लक्ष्य होता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर यह बतलाते हैं कि एक सफल नेता के क्या लक्षण होते हैं। उनमें कौन कौन से शीलगुण है। नेतृत्व को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वर्तमान राजनीतिक परिवेश में कैसे नेतृत्व की आवश्यकता है। नेतृत्व में क्या अपेक्षित है। उसमें क्या कमियां है। उन कमियों को कैसे दूर किया जाये।
- ❖ अनुकूल जनमत का अध्ययन- राज्य व सरकार की सफलता के लिए अनुकूल जनमत की आवश्यकता, सदैव बनी रहती है। जनमत की उपेक्षा करके कोई सरकार लम्बे समय तक शासन नहीं कर सकती। जन का अर्थ है आम जनता। मत का अर्थ साधारण रूप से इच्छा हो सकती है। अतः जनमत का अर्थ जनता की इच्छा हुई। स्पष्ट है कि जनमत एक ऐसा मत है जिसके पक्ष में अधिकांश लोग होते हैं। यह जनता के हित तथा कल्याण से संबंधित होता है। जनमत का अर्थ सम्पूर्ण जनता का मत नहीं हो सकता है। जनमत समय एवं परिथिति के अनुसार बदलता रहता है। लोकतंत्र में जनता का आदेश सर्वोपरि होता है और उसी के मत के आधार पर संगठनों, संस्थाओं एवं सरकारों का गठन होता है। यदि सरकारें जनता की भावना का ध्यान नहीं रखती है तो उनका हश्र्र बहुत खराब होता है। इसलिए सरकार में बैठे लोग जनमत का सम्मान करते है। सरकार को सही रास्ते पर चलाने का कार्य जनमत से ही संभव है। ऐसे व्यक्ति जो कम जानकार हैं वे बहुसंख्यक निर्णय के पक्ष में शीघ्रता से मुड़ जाते हैं। परंतु जानकार व्यक्ति जल्दी प्रभावित नहीं होता है। नेता के व्यक्तित्व से भी जनमत प्रभावित होता है। चुनाव के समय विभिन्न राजनैतिक दल जनमत अपने पक्ष में करने के लिए अनेक प्रकार के अतिरंजित एवं लुभावने वादे करते हैं ताकि लोग उनके पक्ष में प्रेरित हो जाये। सुखद घटनाओं से अनुकूल और दुखद घटनाओं से प्रतिकूल धारणा बनती है। जैसे यदि वस्तुओं का मूल्य बढ़ता है तो सरकार के खिलाफ जनमत

बनने लगता है। भले ही सरकार उसके लिए प्रत्यक्ष दोषी न हो। जैसा जनमत तैयार होगा उसी के अनुरूप लोग व्यवहार करेंगे। समाज मनोवैज्ञानिक जनता की अभिवृत्तियों, पूर्वाग्रहों सामाजिक प्रत्यक्षण आदि का अध्ययन करके जनता की इच्छा को जानने में मदद करते हैं। इसके अनुकूल जनमत बनाए रखने में सफलता प्राप्त होती हैं। जनमत सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का कार्य क्षेत्र रहा है। जनमत ऐसे व्यक्तियों के मत को कहा जाता हैं, जिसमें एक समान अभिरूचि होती है। आधुनिक युग में जनमत का महत्व इसलिए बढ़ गया है क्योंकि इसके सहारे किसी सार्वजनिक समस्या के प्रति व्यक्तियों के विचार एवं मतों का पता चलता है। आधुनिक युग में सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, अखबार आदि कुछ प्रमुख साधन हैं जिनके माध्यम से जनमत का निर्माण होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा जनमत को मापने की कुछ विधियां विकसित की गई हैं। इनमें प्रतिदर्श विधि, पैनल विधि आदि प्रमुख हैं।

❖ प्रभावशाली प्रचार की आवश्यकता का अध्ययन- समाज मनोवैज्ञानिकों को लिए प्रचार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा व्यक्तियों के विचारों एवं मतों को नियंत्रित किया जाता है। उनको एक निश्चित दिशा प्रदान की जाती है। यह सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। इस विधि का प्रयोग जानबूझ कर किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसमें सुझाव एवं संवेगात्मक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रचार प्रविधि का प्रयोग व्यक्ति या समूह के कल्याण के लिए भी होता है और उसके पथभ्रष्ट करने के लिए भी होता है। मानव को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में प्रचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। युद्ध के हथियार के रूप में यह अणुबम से भी घातक होता है। और शान्ति के साधन के रूप मे संयुक्त राष्ट्र संघ से भी अधिक प्रभावी है (Kretch and crutch field)। जब कोई व्यक्ति किसी प्रचार को स्वीकार कर लेता है तो उसका उस व्यक्ति के विचार, भाव, मूल्य, आदर्श एवं अभिवृत्तियों पर प्रभाव पड़ता है। प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया प्रचार अधिक प्रभावशाली होता है। एनिस एवं मायर (1938) का विचार हैं कि यदि प्रचार सामग्री समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर मोटे अक्षर में छापी जाती हैं तो वह पाठकों का ध्यान शीघ्रता एवं सरलता से आकर्षित कर लेती है। नोवर 1935 के अनुसार आमने सामने का प्रचार अच्छा परिणाम देता है। प्रचारक यदि पूरी योजना के साथ निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रचार करता है तो सफलता अधिक मिलती है। प्रचार की विषय वस्तु का किस रूप में प्रत्यक्षीकरण करते हैं। धनात्मक रूप में प्रत्यक्षीकरण करने पर प्रभाव अच्छा पड़ता है। नकारात्मक प्रत्यक्षीकरण होने पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। जब प्रचार, व्यक्तियों के विचारों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप होते हैं तो उनका प्रभाव अधिक पड़ता हैं। अभिवृत्तियों के विपरीत प्रचार प्रभावहीन हो जाते हैं। चुनाव में ऐसा प्रायः देखने को मिलता है कि राजनीतिक पार्टियों अपनी बात कहने के साथ साथ विरोधी पार्टियों की आलोचना भी करती हैं। इससे प्रचार का प्रभाव बढ़ जाता है।यदि परिस्थितियां अस्पष्ट तनावपूर्ण, चिन्तापूर्ण या अनिश्चिततायुक्त हो तो प्रचार का प्रभाव अधिक

पड़ता है। यदि लोगों को विश्वास हो जाये कि अधिकांश लोग प्रचार की बातों से सहमत है तो अन्य लोग भी प्रचार को स्वीकार कर लेते हैं। स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल पहनावा एवं बोली का प्रयोग करने पर प्रचार प्रभावशाली हो जाता है। यही कारण है कि नेता लोग जिस समुदाय या प्रान्त के लोगों के समक्ष भाषण देते हैं उन्हीं के अनुरूप बोली व पहनावा का भी प्रयोग करते हैं। प्रेस एवं समाचार पत्रों सिनेमा एवं दूरदर्शन, रेडियो, मंच, लाउडस्पीकर दूरदर्शन आदि सर्वाधिक प्रचलित प्रचार के साधन हैं। इस प्रकार सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर यह बताते हैं कि प्रचार किन किन प्राविधियों द्वारा किया जाना चाहिए। प्रचार को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इसकी जानकारी होने पर राज्य तथा सरकार दोनों को ही व्यक्तियों के राजनैतिक क्रियाकलापों के बारे में समझने में काफी मदद मिलती है।

- राजनीतिक तनाव, दंगों तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के कारणों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन- राजनीतिक दंगो, तनावों तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध आदि से उन सामाजिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार प्रभावित होता है। अतः इनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामाजिक मनोविज्ञान की निर्भरता राजनीतिशास्त्र पर निर्भर करती है। मनोविज्ञान समाज में विभिन्न समुदायों के बीच एकता एवं सौहार्द्र वृद्धि करने के तरीकों पर विचार करता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करके राजनीतिज्ञ, जनता में सांम्प्रदायिकता सद्भाव एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को उत्पन्न करने में सफल होता है। दंगों को शांत कराने में भी मनोविज्ञान की अहम भूमिका होती है। सांप्रदायिकता एक ऐसी संकीर्ण मनोवृत्ति है जो किसी विशेष धर्म अथवा संप्रदाय के लोगों में अपने स्वार्थांकी पूर्ति करने के लिए की जाती है। तथा उसके परिणाम स्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों एवं जातियों के सामाजिक तनाव एवं संघर्ष पैदा हो जाते हैं। भारत के विभाजन के फलस्वरूप वर्ष 1947 के दंगों में भारी संख्या में हिन्दुओं एवं मुसलमानों का रक्तपात हुआ। हिन्दू -मूस्लिम स्वार्थ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रीति रिवाज भी ऐसे कारक थे जिनसे इन दोनों के बीच आपसी मन मुटाव में वृद्धि हुई। गुप्ता (Gupta 1956) के अनुसार हिन्दू एवं मुस्लिम की मनोवृत्ति एवं प्रत्यक्षण में काफी अंतर हैं जो इन दोनों के आपसी संबंधों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। साम्प्रदायिक दंगो को शांत कराने एवं जनता के विश्वास एवं सांप्रदायिक सद्भाव एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को उत्पन्न करने में सामाजिक मनोविज्ञान की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तनाव एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा करने में मनोविज्ञान विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस दिशा में मनोविज्ञान ने मनोविश्लेषण विधि को अपनाया है। राजनीति के क्षेत्र में भी सफलता/असफलता मिलती रहती है। असफलता की दशा में तनाव की संभावना बराबर बनी रहती है। राजनीतिक प्रतिद्वंदिता के कारण भी सामूहिक तनाव उत्पन्न होने की प्रबल संभावना होती है। सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा इन तनावों से मुक्त होने में काफी मदद मिलती है। विश्व के अधिकांश देश आज शीत युद्ध के कगार पर खड़े हैं। शीत युद्ध का आधार विरोधी प्रचार, ईर्ष्या भ्रामक प्रचार

आदि हैं। मनोविज्ञान परीक्षण करके इनके निदानात्मक उपाय राष्ट्र को सुझाता है। इसके अतिरिक्त युद्ध प्रारम्भ होने पर किसी राष्ट्र की सफलता राष्ट्र एवं सेना के मनोबल पर निर्भर करती है। यदि युद्ध के समय राष्ट्र या सेना का मनोबल टूट जाता है तब युद्ध में विजय की आशा भी समाप्त हो जाती है। इसलिए युद्ध में रत दोनों देश अपना और अपनी सेना का मनोबल ऊँचा बनाने तथा दूसरे देश का मनोबल गिराने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। इसके लिए जो देश मनोवैज्ञानिक ढंग अपनाता हैं वही अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल होता है। युद्ध काल के दौरान सैनिकों के मनोबल को ऊँचा उठाये रखने में यह मनोविज्ञान अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

राजनीतिशास्त्र एवं समाज मनोविज्ञान में अंतर-

i. राजनीतिशास्त्र राज्य तथा सरकार के भिन्न भिन्न रूपों आदि का अध्ययन करता है। जबकि समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्तियों द्वारा की गई अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करता है। सामाजिक मनोविज्ञान में चेतन तथा अचेतन दोनों तरह की अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जबकि राजनीतिशास्त्र में नागरिकों एवं सरकार की चेतन क्रियाओं का ही विश्लेषण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र राजनीतिशास्त्र के कार्यक्षेत्र से अधिक बड़ा है।

ii. राजनीतिशास्त्र व्यक्ति के राजनीतिक क्रियाओं के बाहरी पक्ष पर अधिक बल डालता है , मनोवैज्ञानिक पक्ष पर कम बल डालता है। सामाजिक मनेाविज्ञान, सामाजिक परिस्थिति में किया जाने वाला व्यवहार किस हद तक अन्य कारणों के अलावा मनोवैज्ञानिक कारणों एवं नियमों द्वारा निर्देशित होता है , पर बल देता है।

iii. समाज मनोविज्ञान एक वस्तुपरक विज्ञान। दूसरे शब्दों में, इसमें व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन यथार्थ रूप में यानी '' जैसा वह होता है '' उसी रूप में किया जाता है। जबकि राजनीतिशास्त्र आदर्शात्मक विज्ञान होने के नाते राजनीति के उन पहलुओं पर भी विचार करता है, जिनमें आदर्श एवं मूल्यों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज मनोविज्ञान एवं राजनीतिशास्त्र में संबंध होते हुए भी कुछ भिन्नताएं हैं। जो समानता है वही राजनीति मनोविज्ञान का सामाजिक मनोविज्ञान है।

15.6 यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान (Traffic and Transportation Psychology)

किसी व्यक्ति या वस्तु के, अपेक्षाकृत दूरस्थ भौगोलिक स्थानों के बीच परिचालन को यात्रा कहते हैं। विश्व में यातायात एवं परिवहन के अनेक साधन हैं। सड़क, रेल, जल, एवं वायु आदि परिवहन के प्रमुख स्रोत हैं। बस ,रेलगाड़ी ,जलयान तथा वायुयान यात्रा एवं परिवहन के प्रमुख्य साधन हैं। स्थानीय स्तर पर, थ्री व्हीलर, बाइक, रिक्शा, तांगा एवं नाव आदि भी उपलब्ध हैं। यात्रा करने के लिए, यात्री इन साधनों का

चयन, साधन की उपलब्धता गन्तव्य स्थान की दूरी, प्रचलित यात्रा प्रवृत्ति, किराय, सम, रूचि एवं सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए करते हैं। यह सभी कारक ऐसे हैं जो यात्रियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन्हीं कारकों से प्रभावित होकर वह उपलब्ध परिवहन सुविधाओं को बनाये रखने की अपेक्षा भी करते हैं। यात्रियों को अपने यात्रा व्यवहार में बदलाव लाने के लिए, प्रेरित करने हेतु यह जानना आवश्यक हैं कि इस व्यवहार के पीछे मनोविज्ञान क्या है। इस मनोविज्ञान को जानना आवश्यक है। हमारे स्रोत ऐसे व्यक्तिगत एवं सांस्कृतिक कारकों पर ध्यान देते हैं जो चालकों को इस पेशे में लगे रहने हेतु प्रेरित करते हैं। यातायात संबन्धी समस्यायें एवं समाधान:-यात्रा का साधन जो भी हो लगभग सभी में दुर्घटना की संभावना रहती है। सड़कों पर वाहनों की टक्कर एक आम बात हो गयी है। बढ़ती हुई जनसंख्या का पूर्ण दबाब सड़क एवं रेल यात्रा पर प्रत्यक्ष रूप् दिखयी पड़ता है। इस भौतिक जगत में सभी लोगों को बड़ी जल्दी रहती है। व्यस्तता के कारण सबके पास समय का अभाव रहता है। अत्यधिक शीघ्रता दुर्घटना का कारण बनती हैं। इसमें धन जन दोनों की हानि होने की संभावना बनी रहती है। सड़क, रेल यात्राओं में अपेक्षाकृत अधिक दुर्घटनाऐं होती हैं। वायुयान के दुर्घटनाग्रस्त होने की प्रवृत्ति जलयान की अपेक्षा अधिक होती है। इन साधनों से यात्रा करने वालों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम रहती है। विकासशील भारत में नागरिको की खराब आर्थिक स्थिति के कारण वायुयान अथवा जलयानों से यात्रा करना संभव नही हो पाता है। सड़क एवं रेल से यात्रा करने वाले यात्रियों के व्यवहारों को प्रभावित करने वाली अन्य समस्यायें भी हैं। भीड़- भाड़ के कारण यात्रा में काफी समय लगता है। इस विलम्ब के कारण , क्रोध, तनाव, थकान, जैसे नकारात्मक संवेग उत्पन्न होते हैं। प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन प्रयोग किये जा रहे परिवहन की स्थिरता जैसी पर्यावरणीय समस्याएं भी मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं। विश्व में सड़क हादसों में मरने वालों की संख्या प्रतिवर्ष लगभग 1.3 लाख है। जबकि प्रतिवर्ष घायलों की संख्या लगभग 23-24 लाख व्यक्ति पायी जाती है। इस प्रकार सड़क दुर्घटनाएं यात्रियों के लिए एक प्रमुख समस्या है। परिवहन से संबंधित उपरोक्त सभी शारीरिक तथा मानसिक क्षति का समाधान ढूढ़ने के लिए यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञानी सदैव तैयार रहते हैं। इनसे संबधित मानवीय कारकों , संज्ञानात्मक तथ्यों एवं व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार विश्व की होने वाली सड़क हादसों एवं हानियों को कम करने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का यह क्षेत्र लगातार विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इसके 13 डिवीजन अन्तर्राष्ट्रीय फोरम के रूप में कार्य कर रहे हैं। ऐसी विचारधाराओं के अनेक शोधकर्ता एवं अन्य लोग इस नये एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र में लगे हुऐ हैं। परिवहन मनोवैज्ञानिक शोधकर्ता दूसरे परिवहन साधनों जैसे रेल , वायु , एवं जल परिवहनों से संबंधित मनौवज्ञानिक पक्षों का भी अध्ययन कर रहे हैं । यातायात मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक बिल्कुल नई शाखा है। इसका विस्तार हो रहा है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इसका काफी महत्व है। प्रथमतः इसका कार्य सड़क परिवहन का उपयोग करने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों एवं इस व्यवहार में प्रयोग की जाने वाली मनोवैज्ञानिक प्रविधियों के अध्ययन से संबंधित है। इसके अन्तर्गत व्यवहार एवं दुर्घटनाओं तथा परिवहन

मनोविज्ञान के बीच संबंधों का अध्ययन किया जाता है। यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान कोई एक सैद्धांतिक फ्रेमवर्क नही है। इसके स्थान पर इसमें बहुत से विशिष्ट मॉडल है। यह विशिष्ट मॉडल प्रत्यक्षण, सावधानीपरक, संज्ञानात्मक , सामाजिक प्रेरणादायक एवं संवेगात्मक, मूविलिटी एवं ट्रैफिक व्यवहारों के कारकों की व्याख्या करते हैं। उनमें से एक व्यवहार मॉडल प्रमुख है। यह मॉडल यातायात से संबंधित अनेक कार्यों को अधिकाधिक स्तर पर ,तीन स्तरों में विभाजित करता हैं।

i. रणनीतिक स्तर (Strategic level)
ii. चतुराई स्तर (Tactical level)
iii. क्रियान्वयन स्तर (Operation level)

यह मॉडल वाहन चलाते समय, चालक के निर्णय विविधता, कार्य नियंत्रण एवं कुशलता का प्रदर्शन करता है इसके बावजूद भी कोई अंतिम मॉडल नहीं है। इन सभी अंतिम मॉडलों में से अधिकांश मनोवैज्ञानिक मॉडल्स आगे के अनुसंधान में सहायक ही पाये जाते हैं। दूसरी तरफ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति/ व्यवहार मॉडल्स मोविलिटी निर्णयों के कारकों की पहचान करने में सहायक होते हैं। वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक विधियों को एक साथ रखने पर यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान के अलग अलग 6 क्षेत्र निर्धारित किए जा सकते हैं। (Schlag 1999)

परिवहन एवं यातायात मनोविज्ञान के क्षेत्र- सड़क का उपयोग करने वाले विभिन्न समूहों, रोड की डिजाइन एवं गुणवत्ता तथा मोटर व्हीकल आदि के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान के क्षेत्र भी बदलते रहते हैं। जैसे यातायात का आयु समूह मॉडल, सड़कों का उपयोग करने वालों के व्यवहारों की व्याख्या एवं भविष्यवाणी, वैद्य एवं विश्वसनीय मॉडल्स के विकास पर निर्भर करता है। ये मॉडल्स यात्रा व्यवहार में मानव की भूमिका से संबंधित होते हैं। विशेष रूप से मानव भूमिका के अर्न्तगत वाहन चालक आते हैं। अतः यात्रा व्यवहार में वाहन चालक के कार्य निष्पादन से संबंधित उक्त मॉडल्स बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक यातायात दुर्घटनाएं एवं शोध निम्नलिखित तथ्यों से संबंधित होते हैं-

i. चालक कार्य का विश्लेषण करना। परम्परागत क्रियाकलापों की अपेक्षा नई सोच को अपनाना , सेन्सरी मोटर टास्क को उच्च समीक्षात्मक प्रभाव टास्क का रूप देना।
ii. गाड़ी चलाने वाले चालक को प्रत्यक्षण, संज्ञान एवं सावधानी तथा सूचना प्राविधि की जानकारी होनी चाहिए।
iii. चालक की दशा, कार्यभार, सदा चौकन्ना रहना, थकान, व्यक्तित्व, उसके जोखिम उठाने की मनोवृत्ति, गाड़ी चलाने की प्रेरणा, उत्साह एवं संवेग।
iv. अन्तर्सम्बन्ध एव चालन का सामाजिक मनोविज्ञान।

v. व्यवहार के व्यक्तित्व एवं पर्यावरणीय बैकग्राउण्ड के बीच संबंध खुला व्यवहार , खुला संघर्ष एवं दुर्घटनाएं। जेखिम क्षतिपूर्ति सिद्धान्त पर कार्य।

vi. दुर्घटनाए रोकना एवं यातायात सुरक्षा में सुधार के अन्तर्गत प्रभावशाली क्रियान्वयन, शिक्षा,इंजीनियरिंग, साहस बढाना, आर्थिक बचत आदि से संबधित सूचना रखना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कानूनी एवं शैक्षिक नियमों का पालन करते हुए व्यवहार में बदलाव लाना आवश्यक होता है। वाहन एवं सड़क नियमों का पालन, चालक प्रशिक्षण, चालन प्रशिक्षण शिक्षा यातायात संबंधी मुद्दों की सूचना, डिजाइन एवं विपणन अभियान प्रभावशाली क्रियान्वयन आदि पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

15.7 व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका (Role of social psychology in Business)

किसी औद्योगिक/व्यावसायिक प्रतिष्ठान में मालिक ,श्रमिक कर्मचारी होते हैं । पहले इनका संबंध बहुत कटुतापूर्ण होता था। पूँजीपति श्रमिकों से केवल मशीन की तरह कार्य करवाते थे। श्रमिकों के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं रहती थी। फलतः कर्मचारी एवं श्रमिकों में कार्य के लिए कोई समर्पण नहीं रहता था। इससे वांछित उत्पादन या व्यवसायिक लाभ नहीं हो पाता था। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक अध्ययनों के उपरांन्त मालिकों एवं श्रमिकों के बीच मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई । आज ओद्यौगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है।

❖ समस्या निदान में मनोविज्ञान- वर्तमान में औद्योगिक व्यवसायिक क्षेत्रों में कर्मचारियों या श्रमिकों की हड़ताल , तालाबन्दी दुर्घटनाएं अनेक जटिल समस्याएं उत्पन्न हो रही है। मनोविज्ञान इन सब समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके समाधान प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय में अधिक उन्नति के साधन जैसे शारीरिक श्रम की बचत उत्पादन/लाभ बढाना, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर कर्मचारियों/श्रमिकों की भर्ती करना, कर्मचारियों की अभिरूचि बढाने के लिए उपयुक्त सुझाव देना, कारखाने ,व्यवसायिक कार्यस्थल के पर्यावरण को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानि रहित बनाने संम्बन्धी सुझाव देना आदि ऐसे कार्य हैं जिनके उपयोग से उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में अत्यअधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। उक्त समस्यायें सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय वस्तु हैं।

❖ जनमत तथा प्रचार-जनमत तथा प्रचार सामाजिक मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र रहा है। जनमत ऐसे व्यक्तियों के मत को कहा जाता है, जिनमें एक सामान्य अभिरूचि होती है। आधुनिक युग में जनमत का महत्व इस लिए बढ़ गया हैं क्योंकि इसके सहारे किसी सार्वजनिक समस्या के प्रति

व्यक्तियों के विचारों एवं मतों का पता चलता है, आधुनिक युग में सिनेमा, टेलीविजन , रेडियो अखबार आदि प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से जनमत का निर्माण होता है। समाज मनोविज्ञान के लिए प्रचार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा व्यक्तियों के विचारों एवं मतों को नियंत्रित किया जाता हैं तथा उनको एक निश्चित दिशा प्रदान की जाती है। यह सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। औद्योगिक उत्पादनों एवं व्यवसाय के विपणन में प्रचार का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस विधि का प्रयोग जानबूझ कर किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसमें सुझावों एवं संवेदनात्मक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रचार प्रविधि का प्रयोग व्यक्ति या समूह के कल्याण के लिए होता है और उनको पथभ्रष्ट करने के लिए भी होता है। किसी उत्पाद व्यवसाय की अच्छाइयों का प्रचार करके लोगों को आकृष्ट किया जाता है। प्रचार जनमत कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं जिनमें किये गये अध्ययनों के आधार पर यह साबित हो चुका है कि यदि कोई मालिक अपने माल / व्यवसाय का प्रचार कुछ खास सिद्धांतों एवं नियमों के आधार पर करता है तो उसके माल के प्रति एक अच्छा जनमत तैयार होता है। इससे उसकी मांग बढ़ जाती है। विज्ञापन की सफलता, इस बात पर निर्भर करती है कि वह जनता की अभिरूचि , उपयोगिता और मनोवृत्ति को कितना प्रभावित कर पाता है? यदि विज्ञापन जनता की अभिरूचि , उपयोगिता और मनोवृत्ति के अनुकूल होता है तो वह सफल विज्ञापन माना जाता है, अन्यथा असफल होता है। मनोविज्ञान विज्ञापन को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावशाली बनाने के तरीकों पर विचार करता है। अतः उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्रों में भी मनोविज्ञान का विशेष महत्व है।

15.8 सारांश (Summary)

- क्रीड़ा मनोविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञानों में एक नई शाखा है । कार्ल डेम (Carl Diem) द्वारा 1920 में बर्लिन में प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना हुई । क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम '' शैक्षिक अंर्तराष्ट्रीय जरनल 1970 मे प्रकाशित हुआ। 1980 के दशक में शोधकर्ताओं का ध्यान क्रीड़ा मनोविज्ञान की तरफ आकृष्ट हुआ। वर्तमान समय में खेलकूद में भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतो का उपयोग किया जा रहा है। इमैगरी , प्रेरणा, ध्यानाकर्षण केन्द्रों तथा क्रीड़ा मनोविज्ञान में कैरियर की संभावनाओं के क्षेत्रों में क्रीड़ा मनोविज्ञानिकों द्वारा विशेष रूचि दिखाई जा रही है।
- शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया हैं और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। दोनों का संबंध मानव व्यक्तित्व विकास से हैं। मनोविज्ञान का संबंध शिक्षा के उद्देश्य से नहीं होता है। यह उन तथ्यों का विवेचन करता है , जैसा कि वे हैं न कि जैसा उनको होना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। बालकों

की रूचियों, रूझान, क्षमताओं एवं मानसिक योग्यताओं के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए। मनोविज्ञान की सहायता से नीरस विषय भी रूचिकर बनाया जा सकता हैं। बालक की शिक्षा में सामाजीकरण और समूह मनोवृत्ति पर ध्यान देना आवश्यक हैं। व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर वर्गीकरण कर शिक्षा देने का प्रबंध किया जाना चाहिए। स्नेह , प्रेम , प्रशंसा सहानुभूति तथा पुरस्कार द्वारा अनुशासन को स्थापित किया जाना चाहिए। शिक्षण के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक है। निर्देशन से व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है।

- राजनीतिशास्त्र समाज मनोविज्ञान का वह अंग है जो राज्य के आधार पर शासन के सिद्धांतों की विवेचना करता है। कुछ राजनीतिक घटनाऐं ऐसी हेाती है जो मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं। प्रभावी शासन के लिए अनुकूल जनमत का होना नितान्त आवश्यक है। स्थाई तथा लोकप्रिय शासन के लिए जनता की मनोदशाओं को समझना आवश्यक होता है। जनभावनाओं के अनुरूप शासन के कार्यों में जनता की नैतिक भावनाओं एवं अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक दिखाई पड़नी चाहिए। नेता लोगों के व्यवहार को निर्देशित तथा नियंत्रित करता है। मानव को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में प्रचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। युद्ध में हथियार के रूप में यह अणुबम से भी घातक है और शांति के साधन के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ से भी अधिक प्रभावशाली है। राजनीतिक तनाव, दंगे तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों आदि से मानव व्यवहार प्रभावित होता है। समाज मनोविज्ञान तथा राजनीतिशास्त्र में संबंध होते हुऐ भी कुछ भिन्नताएं है। जो समानता है वही राजनीतिशास्त्र का सामाजिक मनोविज्ञान है।
- यातायात मनोविज्ञान , मनोविज्ञान की बिल्कुल नई शाखा है । इसका विस्तार हो रहा है। सड़क , रेल, जल तथा वायु समस्त यातायात साधनों में दुर्घटनाओं की संभावना अधिक रहती है। परिवहन से संबंधित सभी शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक क्षति का समाधान ढूढ़ने के लिए यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञानी सदैव तैयार रहते हैं। इनसे संबंधित मानवीय कारकों, संज्ञानात्मक तथ्यों तथा व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का यह क्षेत्र लगातार विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण होता जा रहा है। यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान कोई 'एक सैद्धान्तिक फ्रेमवर्क' नहीं हैं इसके स्थान पर इसमें बहुत से विशिष्ट मॉडल है।
- आज औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में हड़ताल, तालाबन्दी, दुर्घटनाएं आदि आम बात है। सामाजिक मनोविज्ञान इन सब समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर समाधान प्रस्तुत करता है। शारीरिक श्रम की बचत कर लाभ बढ़ाना, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा कर्मचारियों की भर्ती करना। कर्मचारियों की अभिरूचि बढ़ाने हेतु सुझाव देना। व्यावसायिक कार्य स्थल के पर्यावरण को स्वास्थ्य की दृष्टि से

हानिरहित बनाने हेतु सुझाव देना, आदि सभी कार्य मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय हैं। जनमत को आकर्षित करने हेतु उत्पादों एवं व्यवसाय के प्रचार प्रसार में भी मनोविज्ञान की अहम् भूमिका होती है।

15.9 अभ्यास प्रश्न (Practice Question)

- क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम _____1970 में प्रकाशित हुआ।
- कार्ल डेम (Carl Diem) ने _____में वर्लिन प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की।
- शिक्षा_____की प्रक्रिया है।
- मनोविज्ञान _____को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है।
- मनोविज्ञान उन तथ्यों का विवेचन करता है _____न कि जैसा उनको होना चाहिए।
- राजनीतिशास्त्र_____का अंग है।
- राजनीतिशास्त्र राज्य के आधार पर _____की विवेचना करता है।
- युद्ध के हथियार के रूप में_____अणुबम से भी घातक है।
- स्थाई तथा लोकप्रिय शासन के लिए _____को समझना अति आवश्यक होता है।
- जनमत एक ऐसा मत है जिसके पक्ष में _____होते हैं।
- किसी व्यक्ति या वस्तु के अपेक्षाकृत _____के बीच परिचालन को यात्रा कहते हैं।
- यातायात या परिवहन मनोविज्ञान कोई _____नहीं है।
- आज औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में _____को विशेष स्थान प्राप्त होता है।

15.10 शब्दावली (vocabulary)

1. क्रीड़ा - खेल
2. विशिष्ट - विशेष
3. आलोक - संदर्भ

4. इमैजरी - छाया चित्रों द्वारा समझाना
5. मांटेसरी शिक्षा पद्धति - जिसमें विद्यालय को उद्यान माना गया है।
6. प्रोजेक्ट प्रणाली - शिक्षा की योजना पद्धति जिसमें व्यावहारिक समस्या का समाधान बच्चों को स्वयं ढूढ़ना होता है।
7. हायुरिस्टिक प्रणाली - शिक्षा की खोज विधि।
8. जनमत - बहुसंख्यक जनता की इच्छा।
9. क्षति - हानि

15.11 निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. क्रीड़ा मनोविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञानों में एक नई शाखा है। इस पर प्रकाश डालते हुए इसके वर्तमान स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों में पारस्परिक संबंध है , स्पष्ट कीजिए।
3. राजनैतिक क्रिया कलापों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    a. यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान
    b. व्यवसाय एवं सामाजिक मनोविज्ञान
    c. जनमत तथा प्रचार।

15.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

1. सिंह आर. एन. (2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा
2. सिंह आर. एन. (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के - 2002 समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह, ए.के (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी. एन.,दसवां संस्करण समाजिक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच . पी . भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य -डेवलपमेन्ट आफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपाट मेरठ।
8. रोवर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एफ. आइ ईपटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।

9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान सुमित भार्गव , गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद, सूलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान , मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाये। मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
11. अग्रवाल, विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।